जिनत्व
का पथ

नरेन्द्र भंडारी

इस पुस्तक में

आत्मवाद जैन धर्म की आधार शिला है। जैन दर्शन के अन्य चार स्तम्भ हैं: अनेकान्तवाद, कर्मवाद, क्रियावाद और लोकवाद। इनके द्वारा हम ब्रह्माण्ड के स्वरूप और ब्रह्माण्ड (जीव और अजीव) में होने वाली सभी क्रियाओं को समझ सकते हैं। इन सिद्धांतों की प्रत्यक्ष अनुभूति और उनके द्वारा ब्रह्माण्ड को संचालित होने की इन्द्रियातीत दृष्टि ही परम ज्ञान या सर्वज्ञता है।

कर्मवाद (कार्य-कारण सम्बंध) के सिद्धांत के अनुसार कोई क्रिया बिना कारण के नहीं होती है और प्रत्येक कर्म या कारण का कोई न कोई प्रभाव होता ही है। भौतिक और चैतन्य जगत इन दोनों सिद्धांतों से नियंत्रित होते हैं। कर्मवाद, अनेकान्तवाद (पदार्थ का वास्तविक स्वरूप) और लोकवाद (ब्रह्माण्ड विज्ञान) भौतिक विज्ञान की परिधि में आते हैं और इसीलिये विज्ञान को जैन धर्म का आधार माना गया है। यह पुस्तक जैन धर्म और आधुनिक विज्ञान की विभिन्न अवधारणाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने का एक प्रयास है।

जैन दर्शन की यह धारणा है कि सभी प्राणियों का लक्ष्य अपनी चेतना को पूर्ण रूप से विकसित करना है और मानव जीवन की अनन्त सम्भवनाएं हैं। सभी विधियां और सिद्धान्त इन सम्भावनाओं का पूर्ण विकास करने के लिए प्रतिपादित किये गए हैं। जैन साधनाओं से हम इन्द्रियों की सीमा के पार जाकर ब्रह्माण्ड के वास्तविक या सच्चे स्वभाव को अनुभव कर सकते हैं। विज्ञान का लक्ष्य ब्रह्माण्ड के सभी अवयवों और क्रियाओं का विश्लेषण करके कुछ सिद्धान्त सूत्रित करना है । धर्म अनुभवात्मक है और विज्ञान प्रयोगात्मक। अब प्रश्न यह है कि क्या ध्यान से उसी परिणाम तक पहुँचा जा सकता हैं जहाँ विज्ञान आधुनिक उपकरणों द्वारा पहुँचता है, और क्या विज्ञान और ध्यान दोनों का एकीकरण करके एक उत्कृष्ट प्रणाली विकसित की जा सकती है? इस प्रयोजन के लिए विज्ञान और धर्म, दोनों के अन्तर्गत आने वाले समान विषयों का विवेचन करना आवश्यक है। जैन धर्म को समझने और सम्बोधि के पथ पर जाने के लिए यह वांछनीय है कि हम जैन धर्म को आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से परखें और आधुनिक विचारधारा से उसका सामंजस्य स्थापित कर, उसकी पुन: व्याख्या करें।

प्रकृति का वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर अवलोकन करने से पता चलता है कि यह अनादि काल से चेतना विकसित करने के एक सुनिश्चित पथ का अनुसरण कर रही है। इसके लिये प्रकृति जिन नियमों का पालन करती है वे वही हैं जो जैन दर्शन प्रतिपादित करता है। इस पुस्तक में प्रकृति का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करके जो ज्ञान प्राप्त हुआ उसका वर्णन किया गया है और उसकी तुलना जैन शास्त्रों में उल्लेखित ज्ञान से की गई है।

जिनत्व का पथ

नरेन्द्र भंडारी

जिनत्व का पथ

लेखक : नरेन्द्र भंडारी
nnbhandari@yahoo.com
WEB : nbhandari.com; jainscholars.com

सम्पादन : आचार्य विजय नन्दी घोष सूरि

प्रकाशक : भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य शोध संस्था (RISSIOS), अहमदाबाद

मूल्य : Rs. 500/-

टाईप सेटिंग : हरि ओम कम्प्यूटर्स, अहमदाबाद
9725018556, 9376198829

मुद्रक : अजय आफसेट
अहमदाबाद

अनुक्रम

❖ **जिनत्व का पथ** iii

❖ **प्रस्तावना** vi

1. **जैनदर्शन : शाश्वत और सार्वजनिक पथ** 1

पृथ्वी पर जीवाश्म का रिकार्ड
प्रकृति का इष्टपथ
नियमों की सार्वभौमिकता
आत्मा और जैनदर्शन के आधारभूत सिद्धांत

2. **शाश्वत सत्य** 13

शाश्वत सत्य, आत्मा का स्वरूप
आत्मा की शक्तियाँ, जीव और अजीव की परस्पर क्रियाएं
सात तत्त्व
अजीव (आकाश, पदार्थ, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल)

3. **अनेकान्तवाद** 19

ब्रह्माण्ड का स्वरूप
सूक्ष्म और स्थूल जगत
स्यादवाद, सप्तभंगी

4. **कर्मवाद** 25

कर्म के प्रकार
कर्म का उन्मूलन
आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष

5. **सर्वज्ञता की चौदह सीढ़ियां :** 29

आत्मा का आध्यात्मिक स्तर
गुणस्थान, कर्म और ज्ञान का सम्बंध

6. **आत्मा के शुद्धिकरण की क्रियाएं** 37
महाव्रत, आवश्यक, प्रार्थना
योग, तप, ध्यान, अणुव्रत, ज्ञान,
भावना, मोक्ष,
साधना के शारीरिक व मानसिक प्रभाव

7. **जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान** 57
जैन दर्शन का वैज्ञानिक आधार
द्रव्य का स्वरूप, वैज्ञानिक सूत्र,
जैन दर्शन और आधुनिक भौतिकशास्त्र

8. **जैन दर्शन, गणित और ब्रह्माण्ड विज्ञान** 81

9. **गठन और विघटन के सिद्धान्त** 93
वर्गणा

10. **जैन दर्शन और जीव विज्ञान** 99
उत्पत्ति और मृत्यु की क्रियायें
पुनर्जन्म

11. **जैन दर्शन में शान्ति** 107

❖ **परिशिष्ट - 1 : जैन भूगोल, ब्रह्माण्ड और आधुनिक विज्ञान की कुछ असंगतियां** 109

❖ **पुनश्च:** 112

❖ **संदर्भ साहित्य** 115

❖ **आभार** 118

जिनत्व का पथ

जैन दर्शन के पाँच आधार स्तम्भ हैं : आत्मवाद, अनेकान्तवाद, कर्मवाद, क्रियावाद और लोकवाद। अनेकान्तवाद (पदार्थ का वास्तविक स्वरूप) और लोकवाद (ब्रह्माण्ड विज्ञान) भौतिक विज्ञान की परिधि में आते हैं और इसीलिये विज्ञान को जैन धर्म की नींव माना गया है। जैन दर्शन पदार्थ और जगत को यथार्थ मानता है न कि माया - जैसा कि कुछ अन्य धर्मों की मान्यता है। यह पुस्तक जैन धर्म और आधुनिक विज्ञान की विभिन्न अवधारणाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने का एक प्रयास है।

जैन दर्शन ने जिस भौतिक अवधारणा पर अपनी प्रक्रियाएं विकसित की है वह हैं मानव जीवन की कुछ अनन्य और अनूठी क्षमताएं। सब प्राणियों में केवल मानव में ही परम ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता है। ऐसा माना जाता है कि पिछले जन्मों में बहुत से पुण्य और शुभ कर्म करने के कारण ही मानव योनि में जन्म होता है और इस अवसर का मोक्ष की प्राप्ति के लिए उपयोग किया जाना चाहिये। आधुनिक विज्ञान के अनुसार सब जीवों में भौतिक स्तर पर वातावरण से ऊर्जा लेने की क्षमता है और इसी क्षमता के बल पर हम जीवित हैं। सभी भौतिक और रासायनिक क्रियायें जो पूर्णतया पृथक या असम्बंधित व्यवस्था में होती हैं उनकी एनट्रोपी (entropy) में वृद्धि होती है। यह नियम उष्म प्रवैगिकी (Thermodynamics) के दूसरे नियम के रूप में जाना जाता है। जैविक क्रियाओं और उससे जुड़े हुए वातावरण को एक ही तन्त्र के रूप में देखें तो उस पर भी यह नियम लागू होता है। पर हम जैविक प्रक्रियाओं को अलग से देखें तो एनट्रोपी घट जाती है। इसका यह तात्पर्य निकलता है कि जैविक प्रक्रियाएं अपने वातावरण से सतत रूप से ऊर्जा लेती हैं।

पृथ्वी पर जीवाश्मों के रिकार्ड से पता चलता है कि डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धान्त के अनुसार, आदिम काई (algae) से आरंभ होकर पिछले 3.5 खरब वर्षों में जीवन का क्रमबद्ध विकास मानव की उच्चतम चेतना तक हुआ। विकास की इस श्रृंखला में दो बड़ी क्रान्तिकारी घटनाएं अचानक घटी। इसमें प्रथम तो लगभग 60 करोड़ वर्ष पहले घटी जब स्थावर से चलने फिरने वाले जीवों की उत्पत्ति हुई। तब तक जीवन का विकास वातावरण के प्रभाव से होने वाले रूपान्तरण (transmutation) द्वारा हुआ। दूसरा परिवर्तन हाल ही में, लगभग 200000 वर्ष पहले होमोसेपियन्स (Homosapiens) के उद्भव के साथ हुआ। जैन धर्म के अनुसार सभी जीव वातावरण से भौतिक स्तर पर तो ऊर्जा लेते ही हैं, पर मानव मानसिक और चैतन्य रूप से भी ऊर्जा अधिग्रहण कर सकता है। इसके अलावा मानव, कुछ क्रियाओं के अभ्यास द्वारा, इच्छानुसार अपनी चेतना के स्तर को विकसित कर सकता है।

आत्म ज्ञान कई शक्तियों के चरम विकास पर निर्भर है। भगवान महावीर जब परम ज्ञान को उपलब्ध हुए तो उन्होंने चार प्रमुख शक्तियां प्राप्त कीः अनन्त वीर्य, अनन्त चैतन्य, अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख। यद्यपि यह चारों शक्तियां एक साथ अवतरित हुई, पहली दो, अर्थात अनन्त वीर्य और अनन्त चैतन्य कारण रूप हैं, और अनन्त सुख और अनन्त ज्ञान उनके परिणाम। अनन्त वीर्य के लिए अनन्त ऊर्जा की आवश्यकता है और वह ऊर्जा उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से प्राप्त की जो कि ऊर्जा का परम स्रोत है। हमारे इर्द गिर्द ऊर्जा के कई स्रोत हैं जैसे पृथ्वी, सूर्य, आकाशगंगा, ब्रह्माण्डीय किरणें आदि। पृथ्वी में कई वस्तुएं और खाद्यान उत्पन्न करने की क्षमता है और वह वीर्य का पुंज है और उसका जीव क्षेत्र (Biosphere) अपने आपको स्वयं प्रतिपादित करने की क्षमता रखता है। इसी प्रकार सूर्य आदि ऊर्जा के अनन्त भंडार हैं।

भगवान महावीर ने हमें अहिंसा के द्वारा जैविक या वीर्यशक्ति प्राप्त करने की पद्धति और ध्यान और तपस्या के द्वारा अन्य स्रोतों से ऊर्जा को अधिग्रहण करने की क्रियाओं का रहस्य बतलाया। भौतिक विज्ञान का बुनियादी नियम है कि उर्जा उच्च स्तर से निचले स्तर की ओर बहती है और जैन क्रियाओं के द्वारा हम निम्नतम स्तर पर चले जाते हैं जब ऊर्जा के सभी स्रोतों से ऊर्जा हमारी ओर प्रवाहित होती है। एक विचार की ऊर्जा हमारे ऊर्जा स्तर को वातावरण से ऊपर ले जाने में काफी है, अतःएव हमें ध्यान द्वारा कुछ भी उर्जा प्राप्त करने के लिए विचारविहीन स्तर पर जाने की आवश्यकता है। जब हर प्रकार का संशय, मोह, क्रोध, लोभ और गर्व पूर्ण रूप से विलीन हो जाता है तब वातावरण से ऊर्जा स्वतः अपनी ओर प्रवाहित होने लगती है। सम्पूर्ण जगत एक बोधि क्षेत्र या चैतन्य क्षेत्र है जो चेतना और ऊर्जा से ओतप्रोत है। हमारे चारों ओर वातावरण में ऊर्जा के कई केन्द्र हैं जैसे कि पर्वत के शिखर, मंदिर, पेड़ और जलाशय जो ऊर्जा का प्रक्षेपण कर सकते हैं और मनुष्य के शरीर में ऐसे कई केन्द्र हैं जो उस ऊर्जा को ग्रहण कर सकते हैं। हमें अब तक यह पता नहीं है कि यह ऊर्जा किस रूपमें प्रवाहित होती है पर हो सकता है ऐसे कोई सूक्ष्म कण हों जिनका हमें अब तक पता नहीं है। ध्यान के द्वारा भी चेतना का स्तर बढ़ता है। इस प्रकार जैन पद्धति में कुछ क्रियाओं के द्वारा ऊर्जा और चेतना का स्तर बढ़ाया जा सकता है। अन्य प्राणियों की तुलना में मानव ही ऐसा प्राणी है जो स्वतः ही एकान्त में बैठकर इच्छानुसार अपनी चेतना के स्तर में वृद्धि कर सकता हैं।

यदि हम मानव जाति की सभ्यता के इतिहास पर एक दृष्टी डालें और छोटे मोटे चक्करों की और ध्यान न दें तो प्रगति की एक दिशा स्पष्ट हो जाती है और वह यह है कि मानव जाति सब प्रकार की स्वतन्त्रता की ओर बढ़ रही है। मानव इतिहास में सर्व प्रथम क्रान्ति कृषि की हुई जिससे भूख से मुक्ति और प्रकृति पर निर्भरता से मुक्ति मिली। दूसरी क्रान्ति औद्योगिक क्रान्ति थी जिसने स्वचलित

यंत्रों और पद्धतियों द्वारा दैनिक आवश्यकताओं की चिंता से मुक्ति दिलाई। इसके पश्चात संचार क्रान्ति का युग आया जिसने एक दूसरे से आसानी से संवाद करना सम्भव कर दिया और हमें एक दूसरे से सीखने में मदद की। ज्ञान क्रान्ति अभी प्रगति पर है और सब प्रकार की जानकारी आसानी से उपलब्ध हो रही है। फिर हम सामाजिक क्रान्ति की ओर बढ़ेंगे क्योंकि अभी हमारी मनःस्थिति समाज, कुटुम्ब व व्यक्तिगत बंधनों से जकड़ी हुई है। इसके पश्चात विचार और चेतना की क्रान्ति अवश्यम्भावी है और हम उसी दिशा में बढ़ रहे हैं। यह सब परिवर्तन पिछले दस या बीस हजार वर्षों में हुए हैं और क्रमशः तीव्रगति से हो रहे हैं। शुरू के परिवर्तन हजारों वर्षो में हुए, फिर शताब्दियों में और अब दशकों में भारी परिवर्तन हो रहे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रकृति किस दिशा में बढ़ रही है और किस दिशा में हमें विकसित कर रही है। जैन और बुद्ध धर्म जो केवल ज्ञान पर आधारित हैं निश्चित् रूपसे अगली क्रान्ति का प्रकाश स्तभ होंगे। इसका अन्ततः उद्देश्य जन्म मरण के चक्र से मुक्ति है। इस परम स्वतन्त्रता के पहले मन के सभी बंधनों से स्वतन्त्रता और उसके पहले अन्य भौतिक बन्धनों से मुक्ति आवश्यक है। यह इस पुस्तक का आधारभूत दृष्टिकोण है।

यद्यपि इस पुस्तक में जैन पद्धति पर विचार किया गया है। ये क्रियायें सभी व्यक्तिओं को समान रूपसे प्रभावित करती हैं। इस पुस्तक को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहला भाग जैन धर्म की बुनियादी धारणाओं का और दूसरा भाग जैन विचार धारा और आधुनिक विज्ञान के बीच सामंजस्य का विवेचन करता है। इन विचारों की अनुकूलता और सामंजस्य को सिद्ध करने के लिए गहन अध्ययन और अनुसंधान की आवश्यकता है। अन्ततः यदि यह दृष्टिकोण सही सिद्ध हो सके तो मैं इस प्रयास को संतोषप्रद मानूंगा।

प्रस्तावना

विश्व के विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों या दर्शनों के सामान्य अर्थों की दृष्टि से जैन धर्म को एक धर्म कहना उचित नहीं है। वास्तव में यह एक पंथ है और जिनत्व या बुद्धत्व को प्राप्त हुए परम ज्ञानियों और अरिहंतो द्वारा प्रतिपादित एक पद्धति है जिसका पालन करने से सामान्य जन भी बुद्धत्व प्राप्त कर सकते हैं। ये व्यक्ति किसी भी राष्ट्र, धर्म, पंथ, जाति, वर्ग या समाज से जुड़े हो सकते हैं। अतःएव जैन धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष तक ही सीमित नहीं है। इस दृष्टि से जैन धर्म सार्वभौमिक और सार्वजनिक है। यह माना जाता है कि ब्रह्माण्ड में किसी भी युग में लाखों प्रबुद्ध आत्माएं होती हैं और उन्होंने विभिन्न पथों पर चल कर प्रबुद्धता प्राप्त की। इसलिये विश्व में कई पद्धतियां विकसित की गई हैं जिनसे बुद्धत्व प्राप्त किया जा सकता है । जैन धर्म का उनसे कोई विरोधाभास नहीं है पर जैन पद्धति यकीनन एक ऐसी पद्धति है जो परम ज्ञानियों ने ऐसे लोगों के लिए प्रतिपादित की है जो परमज्ञान को प्राप्त करने में उत्सुक हों और इस पद्धति से निश्चय ही ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है। यह लक्ष्य 14 चरणों में प्राप्त किया जा सकता है और ये चरण या गुणस्थान स्पष्ट रूप से परिभाषित किये गए हैं। पहला या दूसरा गुणस्थान आत्मा का प्रारम्भिक स्तर है और चौदहवां, प्रत्येक जीव का अन्तिम लक्ष्य। जैन धर्म का प्रमुख उद्देश्य इस यात्रा को पूरा कर मोक्ष का लक्ष्य प्राप्त करना है। प्रत्येक जीव जिनत्व की राह से भटक कर किसी न किसी योनि में जन्म लेता है, पर जब वह मानव योनि में जन्मता है तो इस राह पर चलकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जैन धर्म में भौतिक संसार या ब्रह्माण्ड को समझने में और व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास को एक सा महत्व दिया है। ये सभी पहलू लक्ष्य को प्राप्त करने में समान रूप से सहायक हैं। कुछ अन्य प्राचीन धर्मों के विपरीत, जैन धर्म जगत को माया या भ्रम नहीं मानता है। न ही वह इस विश्व के रचयिता एक सर्वशक्तिमान 'भगवान' में विश्वास करता है। जैन धर्म की मान्यता है कि इस ब्रह्माण्ड के दोनों भाग, जीव और अजीव, कुछ नियमों से नियंत्रित होते हैं। इस दृष्टि से कि भौतिक और आध्यात्मिक जगत कार्य-कारण के नियमों (Law of causality) से बंधे हुए हैं, जैसा कि आधुनिक विज्ञान भौतिक जगत के बारे में मानता है, जैन दर्शन पूर्ण रूपसे वैज्ञानिक है। निःसंदेह ऐसे कई बुनियादी प्रश्न हैं जो सामान्यतः तर्क से परे हैं जिनका नास्तिक और आस्तिक, दोनों ही संतोषजनक उत्तर नहीं दे सकते। यदि भगवान ने विश्व की रचना की तो भगवान की रचना किसने की? इसका यह उत्तर दिया जाता है कि भगवान शाश्वत और स्वयंभू (स्वरचित) है। यही प्रश्न प्रकृति या प्रकृति को नियंत्रित करने वाले नियमों के बारे में भी किया जा सकता है कि इन्हें किसने बनाया और ये नियम ऐसे क्यों हैं, और इनसे अन्यथा क्यों नहीं। जब यह प्रश्न उठता है कि भगवान ने ऐसे नियम क्यों बनाए, तब आस्तिक तो एक सर्वशक्तिमान भगवान की शरण में चले जाते हैं और

मान लेते हैं कि उन्होंने प्रकृति के ऐसे नियम बनाए पर यह इस समस्या का समाधान नहीं है। यह उत्तर हमें केवल एक कदम पीछे ले जाता है। हम तो केवल यह कह सकते हैं कि प्रकृति ऐसी ही है जैसी हमें दिखाई देती है और यही प्रकृति का स्वभाव है और प्रकृति को नियंत्रित करने वाले नियम शाश्वत हैं। इन सबका गूढ अर्थ समझने के लिए हमें परम ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और यही जैन धर्म का उद्देश्य है।

जैन धर्म का बुनियादी दृष्टिकोण यह है कि सभी जीवित प्राणियों का लक्ष्य अपनी चेतना को पूर्ण रूप से विकसित करना है ताकि हम इन्द्रियों की सीमा से पार जाकर ब्रह्माण्ड के वास्तविक या सच्चे स्वभाव को अनुभव कर सकें। जैन धर्म ने मनुष्य गति को उच्चतम, देवगति और दूसरी योनियों से भी उच्चतर, प्रतिष्ठा दी है क्योंकि मनुष्य में स्वचेतना को इच्छा या प्रयास से विकसित करने की अद्भुत क्षमता है। कोई भी अन्य प्राणी में ऐसी क्षमता नहीं है और अन्य सभी प्राणियों का विकास उनके अपने वातावरण पर निर्भर है जो निष्क्रिय या सक्रिय रूप से उनका विकास करता है।

ब्रह्माण्ड दो तत्त्वों से बना है जीव और अजीव (जिसमें पदार्थ, और वे सब भौतिक तत्त्व शामिल हैं जो इसमें परिवर्तन लाते हैं)। जीव और अजीव का अंतिम लक्ष्य एक दूसरे से पूर्ण रूप से विच्छेदित होकर, एक दूसरे के प्रभाव से मुक्त होकर, अपने शुद्ध स्वरूप को उपलब्ध करना है और ब्रह्माण्ड सदैव से उसी दिशा में अग्रसर है। जैन धर्म की इस बुनियादी अवधारणा को समझने और सम्बोधि के पथ पर जाने के लिए यह वांछनीय है कि हम जैन धर्म को आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से परखें और आधुनिक विचार धारा से उसका सामंजस्य स्थापित कर, उसकी पुनः व्याख्या करें।

जैन दर्शन एक प्राचीनतम और मौलिक प्रणाली है और सभी दर्शनों से अलग विचार धारा है। प्राचीन काल में यह दर्शन प्रथम तीर्थंकर ऋषभ देव ने विकसित और प्रतिपादित किया जिन्होंने प्रागैतिहासिक समय में भारत पर राज्य किया था। यह दर्शन महाभारत और रामायण काल से भी पहले और निश्चयतः सिंधु सभ्यता (1500 ईसा पूर्व) से भी प्राचीन है क्योंकि जैन साधुओं और अभ्यासियों की मोहरें मोहन जो दारो, हड़प्पा, मथुरा और अन्य स्थानों पर और अर्हत और सिद्धों के शिलालेख उदैगिरी की कन्दराओं, हाथी गुम्फा आदि स्थानों में मिले हैं। ऋग्वेद (3000 ईसा पूर्व), जो कि विश्व की प्राचीनतम पुस्तकों में एक है और यजुर्वेद (जो उसके कुछ ही समय बाद लिखा गया था) में भी इनका वर्णन मिलता है। जैन दर्शन की मौलिकता और प्राचीनता सिद्ध करने के लिए काफी अनुसंधान किया गया है। जैन धर्म वैदिक या हिन्दू दर्शन की एक शाखा है, ऐसी गलत धारणा कई बार व्यक्त की जाती रही है। यहाँ यह ध्यान में रखना उचित होगा कि कई जैन अवधारणाएं वैदिक अवधारणाओं की विरोधाभासी हैं। इस कारण से जैन धर्म का हिन्दू या वैदिक संस्कृति से उद्भव सम्भव नहीं लगता। इन सब अनुसंधानों का विवेचन न करते हुए यह उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा कि प्राचीनतम हिन्दू ग्रन्थों में जैसे कि भगवत्पुराण, विष्णुपुराण, पद्मपुराण आदि में जैन अर्हत (ऋषभ

और उनके पितृत्व) और मुनियों को व्रत्य (व्रत रखने वाले), वतर्सन मुनि या निगन्थ के नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है, जो इनकी प्राचीनता का द्योतक है। जैन धर्म की मौलिकता और प्राचीनता का आकलन करने के लिए जिज्ञासु पाठक संदर्भ साहित्य का अध्ययन करना चाहेंगे, जिनका इस पुस्तक के अंत में उल्लेख किया गया है।

ऋषभदेव के बाद सदियों तक जैन प्रथाओं को अभ्यास और उपदेश द्वारा प्रतिपादित किया जाता रहा है। लगभग 2900 वर्ष पूर्व तेबीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और अचौर्य पर आधारित चतुर्याम धर्म को प्रचलित किया। उसके 250 वर्ष पश्चात (600 ई.पू.) अन्तिम तीर्थंकर महावीर ने इसमें ब्रह्मचर्य को मोक्ष प्राप्त करने के लिए अनिवार्य मान कर सम्मिलित किया। महावीर के पश्चात् सर्वज्ञ (श्रुत केवली) गणधरों ने जो उनके तात्कालिक शिष्य थे, जैन धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों और प्रथाओं का संकलन किया। तत्पश्चात् साधुओं द्वारा ये उपदेश कई पीढ़ियों तक कण्ठस्थ और हस्तान्तरित किये गये और अन्ततः महावीर के कई सदियों के बाद इनको आगमों में लिपिबद्ध किया गया। इस संकलन में जैन सूत्रों को दो मुख्य भागों में विभाजित किया गया है। 12 अंग आगम जिनमें भगवान महावीर के उपदेश संकलित हैं और अंगबाह्य आगम जिन में अंग आगमों का विस्तार से विवेचन है। बारहवां आगम दृष्टिवाद माना जाता है जिसमें 14 पूर्वा सम्मिलित थे, और वह लुप्त प्रायः हो चुका है । भिन्न भिन्न जैन सम्प्रदायों के अनुसार अंग बाह्य आगमों की संख्या 14 से 34 मानी जाती है।

महावीर के 250 वर्ष पश्चात् (ईसा पूर्व 350) भारत में एक भयंकर अकाल पड़ा जो 12 वर्षों तक निरंतर चला। इसकी वजह से आगमों को कंठस्थ करने की परम्परा टूट गई और आगम सूत्र विलुप्त हो गए। दिगम्बर पंथी आचार्य पुष्पदंत और भूतबली द्वारा लिखित षटखण्ड आगम (ई.स. 160) और आचार्य वीर सेन द्वारा लिखित धवलाटीका, आचार्य गुणधर द्वारा ई.स. 100 से 900 के बीच रचित कसाय पाहुड़ और सन 780 में वीरसेन और जिनसेन द्वारा की गई उसकी टीका और चार अनुयोगः धर्मकथानुयोग, चरणानुयोग, गणितानुयोग, द्रव्यानुयोग के 20 ग्रंथों को मुख्य मानते हैं। पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, आदि पुराण और उत्तर पुराण, ई.स. 650 और 879 के बीच में लिखे गए और ये चार धर्मकथानुयोग के रूप में जाने जाते हैं। चरणानुयोग, मूलाचार, त्रिवर्णाचार और रत्न करंड-श्रावक आचार के भाग हैं। सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति, जया धवला टीका और गोम्मट सार (ई.स. 780-1000), खगोल, ज्योतिष, भूगोल और गणित से सम्बंधित हैं। गणितानुयोग के प्रमुख ग्रन्थों में जैन दर्शन, तत्त्व और द्रव्यानुयोग, सिद्धान्त, मीमांसा आदि का वर्णन है जो आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित नियमसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और समयसार (ई.स. 100) और उमास्वाति द्वारा रचित तत्त्वार्थसूत्र (ई.स. 200) और सामन्तभद्र द्वारा लिखित आप्तमीमांसा (ई.स. 600) और अकलंक और विद्यानन्द द्वारा की गई टीका (ई.स. 750-800)पर आधारित हैं।

श्वेताम्तबर पंथियों ने भी पाटलीपुत्र (36 ई.पू.), उड़ीसा (150 ई.पू.), मथुरा (सन 310) और वल्लभी (सन 454 और 300) में सम्मेलन किये और जहाँ तक सम्भव हुआ जिन-सूत्रों को लिपिबद्ध किया। श्वेताम्बरों के मुख्य ग्रन्थ हैं आचारांग सूत्र (आयारंग), जिस में साधु सन्तों के चरित्र और भगवान महावीर की तपस्या का वर्णन है। सूत्रकृतांग सूत्र (सूयगडांग) में अहिंसा, तत्त्वज्ञान, और अन्य धार्मिक सिद्धान्तों का जैसे कि क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद और विनयवाद का निराकरण किया गया है। स्थानांग सूत्र (ठाणांग) और समवायांग सूत्र में जैन तत्त्व मीमांसा के कई पहलुओं का विवेचन है। व्याख्याप्रज्ञप्ति (वियाह पण्णति) अथवा भगवती सूत्र आत्मा, पदार्थ और उनसे सम्बंधित विषयों के सूक्ष्म ज्ञान का वर्णन करते हैं। छत्तीस हजार प्रश्नोत्तरों द्वारा इस ग्रन्थ में सब संशयों का समाधान किया गया है। यह इग्यारहों आगमों में सबसे बड़ा है। ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र (नय धम्मकहाओ) जैन सिद्धान्तों को उदाहरण और कथाओं के माध्यम से समझाते हैं। यह ग्रन्थ भगवान महावीर के धार्मिक प्रवचनों और उपदेशों की विधि को समझने के लिए उपयुक्त है। उपासकदशांग सूत्र (उवासग्दासाओ) श्रावकों की आचार संहिता है। यह आगम श्रावक धर्म और उसके आचरण को समझने के लिए उपयोगी हैं। अन्तकृतदशांग सूत्र (अनतंग्दासाओ) दस साधुओं द्वारा कर्मो का नाश करके मोक्ष प्राप्ति की कहानियों का वर्णन करता है। अनुत्तरोपपातिकदशांग सूत्र (अनुत्तरोव वैयादासाओ) दस अन्य साधुओं द्वारा उच्चतम अनुत्तर स्वर्ग प्राप्ति की कहानियों का वर्णन करता है। प्रश्नव्याकरण सूत्र (पन्हा वगर्णाई) जैन धर्म के पाँच महाव्रतों और पांच महापापों की व्याख्या करता है। विपाकसूत्र (विवाग्सुयम) पुण्य और पाप कर्मों और उनके फलों के लक्षण गाथाओं के माध्यम से बतलाते हैं। बारहवे अंग आगम दृष्टिवाद[1] अन्य आगमों में दिये गये संदर्भ के अनुसार अत्यन्त महत्वपूर्ण है पर सभी जैन संप्रदाय मानते हैं कि यह मूल आगम लुप्त हो चुका है। उसके पाँच भाग परिक्रमा, सूत्र, पूर्वागत, प्रथम अनुयोग और चूलिका बतलाए गए हैं : तीसरे भाग पूर्वागत में 14 पूर्वा थे जो जैन धर्म के प्रत्येक विषय के अनन्त ज्ञान का भंडार बतलाए जाते हैं। कुछ विद्वान मानते हैं कि इसे पूर्वा इसलिए कहा गया है कि यह भगवान महावीर के पहले उपलब्ध ज्ञान का, विशेषकर भगवान पार्श्वनाथ के उपदेशों का, संकलन है। ऐसी किवदंती है कि श्रीमद् राजचन्द्र ने जिनका जन्म एक शताब्दी पूर्व हुआ था, दृष्टिवाद के सातवें पूर्वा को, जिसे उन्होने अपने एक पूर्व जन्म में भगवान महावीर से एक शिष्य के रूप में स्वयं सुना था, पिछले जन्मों का ध्यान करके स्मरण किया। इसे उन्होंने अपनी पुस्तक आत्मसिद्धि में सारांशित किया है और इसे प्रामाणिक माना जा सकता है (अध्याय 2)।

1. कुल 12 मौलिक जैन आगमों में अन्तिम दृष्टिवाद, जिसमें 14 पूर्वा थे, लगभग 2000 वर्ष पूर्व भुला दिया गया पर इसका उल्लेख समवायांग में किया गया है। इस के सातवें पूर्वा आत्मवाद में 6 आधारभूत तत्त्वों का उल्लेख है। इनका वर्णन आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने सन्मति प्रकरण में 1800 वर्ष पहले किया था।

विभिन्न श्वेताम्बर उपांग भगवान महावीर के उपदेशों को कथाओं द्वारा चित्रित करते हैं। जैसे कि राजा कोणिका के विचार, जो उन्होंने भगवान महावीर के दर्शन के समय व्यक्त किये थे, औपपातिक सूत्र (ओवावैया) में वर्णित हैं। उसमें यह भी बतलाया गया है कि किस प्रकार एक व्यक्ति अगले जन्म में स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। राजप्रश्नीय सूत्र (रायापसेन इज्जा) में संत केशी की कहानी है, जो भगवान पार्श्वनाथ के गणधर थे। उन्होंने आत्मा के अस्तित्व और गुणों के बारे में राजा प्रदेशी के सभी संदेहों का निवारण किया था।

जीवाभिगम सूत्र में ब्रह्माण्ड और जीवात्मा के सूक्ष्म विवरण है और यह वनस्पति विज्ञान और जीव विज्ञान के विभिन्न पहलुओं से सम्बंधित है। प्रज्ञापना सूत्र (प्न्तावाना) आत्मा के स्वरूप और गुणों को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करता है। सूर्यप्रज्ञप्ति (सुर्यपण्णति) और चन्द्रप्रज्ञप्ति, खगोलशास्त्र, सूर्य और चन्द्र की गति, और जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति भूगोल और इतिहास और निरयावलिका सूत्र, कल्पावतांसिका सूत्र (कप्पावादाम्सीओ), पुष्पिका सूत्र (पुष्पिआओ), पुष्पचूलिका सूत्र, बह्नदशा सूत्र (वन्हीदासाओ) में प्राचीनकाल की कुछ घटनाओं और कथाओं का वर्णन है। इनके अतिरिक्त कुछ मौलिक सूत्र जैसे कि आवश्यक सूत्र में दैनिक अनुष्ठानों का वर्णन है (अध्याय 6) जो आत्मा की शुद्धि के लिए आवश्यक है। सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान, इन छः आवश्यक दैनिक क्रियाओं की इस आगम में व्याख्या की गई है। उत्तराध्ययन, ओघनिर्युक्ति, दशवैकालिक सूत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें जैन सिद्धान्तों और क्रियाओं, गाथाओं, संवादों और उदाहरणों का उपदेश है। इसमें भगवान महावीर के अंतिम उपदेश का सारांश है। उत्तराध्ययन और चूलिका सूत्र (जैसे कि नन्दीसूत्र, जिसमें कई प्रकार के ज्ञानों की व्याख्या है), अनुयोगद्वार श्वेताबरों के मूल उपांग है।

यहाँ इन सब जैन शास्त्रों का उल्लेख करने के दो उद्देश्य हैं। पहला तो यह कि ये ग्रन्थ जैन दर्शन और साहित्य के स्त्रोत हैं और जो पाठक मौलिक ग्रंथों में रुचि रखते हैं, उनको इन ग्रंथों का अध्ययन श्रेयस्कर होगा। दूसरा और अधिक महत्वपूर्ण कारण यह बतलाना है कि ये सभी ग्रंथ विद्वानों और ज्ञानी संतों द्वारा किया गया संकलन मात्र है, न कि अक्षरशः तीर्थंकरों की वाणी। ये भगवान महावीर के निर्वाण की कई शताब्दियों के बाद में लिपिबद्ध किये गये थे। इसलिये यह ध्यान में रखने योग्य है कि अरिहंतों के वचनों को कंठस्थ कर संतों की कई पीढ़ियों द्वारा पुनः स्मरण कर, क्रमशः हस्तांतरित किया गया और इस में नई व्याख्याएं सम्मिलित कर दी गईं। इन ग्रंथों पर समकालीन विचारों और दर्शनों का भी काफी प्रभाव दिखाई देता है और लम्बी अवधि में, सीमित स्मरण शक्ति की दृष्टि से, नई व्याख्याओं और अन्य दर्शनों के प्रभाव के कारण इन्हें प्रामाणिक और विशुद्ध जिन-वचन मान लेने के पहले आलोचनात्मक आकलन करना आवश्यक है; विशेषकर जब कि विभिन्न सूत्रों में पूर्ण सहमति नहीं दिखाई देती है और उन ग्रन्थों में वर्णित कुछ घटनाओं का अन्य धर्मों के ग्रंथों में जैसे कि बौद्ध और

हिन्दू ग्रंथों में, कई जगह विरोधाभास भी पाया गया है।

विज्ञान का लक्ष्य ब्रह्माण्ड के सभी अवयवों और क्रियाओं का विश्लेषण करके कुछ सिद्धान्त सूत्रित करना है जो पर्यवेक्षक पर निर्भर न हो। इसकी तुलना में धर्म व्यक्ति विशेष होता है - वह स्वयं से सम्बंधित है। इस दृष्टि से विज्ञान प्रायोगिक है और धर्म अनुभवात्मक। अब प्रश्न यह है कि क्या वैज्ञानिक विधि के अलावा भी कोई पद्धति है जिससे सत्य-तत्त्व को जाना जा सकता है। क्या ध्यान से उसी परिणाम तक पहुँचा जा सकता हैं जहाँ विज्ञान आधुनिक उपकरणों द्वारा पहुँचता है, और क्या विज्ञान और ध्यान दोनों का एकीकरण करके एक सम्पूर्ण प्रणाली विकसित की जा सकती है। इस प्रयोजन के लिए विज्ञान और धर्म, दोनों के अन्तर्गत आने वाले एक से विषयों का विवेचन करना आवश्यक है।

इस पुस्तक का लक्ष्य आगमों की व्याख्या करना नहीं है अपितु उनके कुछ पहलुओं को सरल भाषा में प्रस्तुत कर विज्ञान और जैन धर्म के बीच समान विषयों के बारे में ज्ञान की तुलना करना है। इस प्रयास में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि महावीर के उपदेश अर्धमागधी या प्राकृत में थे और ये भाषाएं कब से लुप्त हो चुकी हैं। उनका स्थान पहले संस्कृत और फिर हिन्दी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं ने ले लिया है। शुद्धता और मौलिक दृष्टि से आदि ग्रन्थों का अनुगमन करना ही उचित माना *जाता है परन्तु, यद्यपि अवधारणाएं और आधारभूत विचार वही हैं, भाषाएँ इस लम्बी अवधि में काफी* बदल गई हैं और इनमें व्याख्याओं का भी समावेश हो गया है। इसलिए आदि ग्रन्थों का सही अर्थ और भाव समझ पाना विद्वानों के लिए भी कठिन हो गया है। सब ग्रन्थों की शुद्धता का परीक्षण करना कठिन है पर आधुनिक विज्ञान से तुलना कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन ग्रंथों में भूगोल और खगोल शास्त्र की विषय वस्तु, समय और स्थान की इकाइयाँ आदि काफी हद तक दूषित हो गई हैं (परिशिष्ट 1)। इनका उल्लेख भिन्न भिन्न ग्रन्थों में भी विरोधाभासी है। यह कारण ही काफी है कि हम ग्रन्थों में दिये गए वर्णन का विज्ञान के दृष्टिकोण से पुनः विवेचन और आकलन करें।

धर्म और विज्ञान पृथक पृथक क्षेत्रों से संबंध रखते हैं और बहुत से विषय, (जैसे कि आध्यात्म), विज्ञान का विषय नहीं है। फिर भी कुछ विषय दोनों के ही अन्तर्गत आते हैं क्योंकि जैसा पहले बताया जा चुका है, जैन धर्म भौतिक विज्ञान, रासायनिक विज्ञान, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, खगोल और भूगोल विज्ञान को भी उतना ही महत्व देता है जितना आत्मविज्ञान और आत्मा को शुद्ध करने की क्रियाओं को। विज्ञान और धर्म में इन विषयों में भी विरोध होना स्वाभाविक है पर हमारा प्रयास यह रहेगा कि दोनों में जहाँ तक हो सके सामंजस्य स्थापित किया जाय।

यह पुस्तक जैन धर्म को समझने के लिए किये गये मेरे अध्ययन पर आधारित है। इनको आधिकारिक रूप में नहीं बल्कि एक प्रारम्भिक प्रयास के रूप में लिया जाना चाहिये। आशा करता हूँ कि यह पुस्तक अन्य जिज्ञासुओं के लिए, जो जैन विचार और दर्शन से परिचित होना चाहते हैं,

उपयोगी सिद्ध होगी। यहाँ मैनें आधारभूत जैन अवधारणाओं और जैन क्रियाओं के बारे में सरल परिचय देने की चेष्टा की है। इसमें न तो प्रत्येक विषय का विस्तार से वर्णन है और न ही इसमें लिखे विचारों को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए हम आदि ग्रन्थों से उद्धरण ही करते हैं। विद्वान पाठक शायद समझें कि विशुद्धता की जगह सरलता को अधिक महत्व दिया गया है - पर यही इस पुस्तक का उद्देश्य है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है हमारी दृष्टि में जैन दर्शन के पाँच आधारभूत स्तम्भ हैं - आत्मवाद, कर्मवाद, क्रियावाद, अनेकान्तवाद और लोकवाद। इन पाँचों सिद्धान्तों का यहाँ संक्षेप में परिचय दिया गया है। इस पुस्तक को दो भागों में विभाजित किया गया है; प्रथम भाग में पहले चार विषयों का वर्णन है और दूसरे भाग में लोकवाद का। इस प्रकार पहला भाग जैन दर्शन के बुनियादी सिद्धान्तों की चर्चा करता है और दूसरा भाग जैन विचारधारा की विज्ञान के भिन्न भिन्न शाखाओं जैसे कि भौतिक विज्ञान, ब्रह्माण्ड विज्ञान, रसायन विज्ञान और जीव विज्ञान से तुलना करता है। जैन दर्शन की सार्वजनिक उपयोगिता (अध्याय 1) के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करने के पश्चात् जैन दर्शन के बुनियादी विषयों जैसे कि आत्मवाद (अध्याय 2), अनेकान्तवाद और कर्मवाद (अध्याय 3 और 4) का संक्षेप में वर्णन किया गया है। अन्य ग्रंथों में कई प्रबुद्ध विद्वानों ने इन विषयों पर विस्तार से चर्चा की है अतः हमारा उद्देश्य इन सब विषयों की विस्तृत चर्चा करना नहीं है पर जैन दर्शन के मुख्य विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करना है। बाद के अध्यायों में मोक्ष साधना के पथ (अध्याय 6) की चर्चा है जिससे कोई साधक चेतना के उच्चतर स्तर (गुणस्थान, अध्याय 5) पर पहुँच जाता है। इस अध्याय में साधना के अभ्यास के शारीरिक प्रभावों के बारे में भी चर्चा की गई है। पुस्तक का दूसरा भाग आधुनिक भौतिक शास्त्र (अध्याय 7), ब्रह्माण्ड विज्ञान (अध्याय 8), संयोजन रसायन विज्ञान (अध्याय 9) और जीव विज्ञान (अध्याय 10) की जैन विचार धारा से तुलना करता है।

मैने कई ग्रन्थों, वेबसाइट्स और अन्य स्रोतों से इस पुस्तक की सामग्री इकट्ठी की है और उसे सरल भाषा में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। कुछ सामग्री का मौलिक स्रोत से प्रामाणिकता जाँचे बिना उपयोग किया गया है और यदि उस में कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ ।

मुझे आशा है यह पुस्तक जैन दर्शन और विज्ञान के बीच कुछ सीमा तक सामंजस्य स्थापित कर पायेगी और जैन दर्शन को जीवन के लिए, थोड़ा ही सही, व्यक्तिगत और सामाजिक अर्थ में प्रासंगिक बनाने में उपयोगी होगी।

नरेन्द्र भंडारी

1

जैन दर्शन : शाश्वत और सार्वजनिक पथ

सत्य ब्रह्माण्ड में छुपा है

पृथ्वी पर जीवाश्म का रिकार्ड,
प्रकृति का इष्ट पथ
नियमों की सार्वभौमिकता
आत्मा और जैनदर्शन के आधारभूत सिद्धांत

जैन दर्शन की सार्वभौमिकता :

जीवन सदैव एक सा नहीं रहता और सच में तो बदलती हुई परिस्थितियों का नाम ही जीवन है। हम निरन्तर, हर पल एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति की ओर अग्रसर होते रहते हैं और कभी आसानी से, और कभी संघर्ष करते हुए वांछित परिणाम प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं । अन्ततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संघर्ष में ही पूरा जीवन व्यतीत हो गया है और यह परिणाम निकलता है कि सारा जीवन तुच्छ घटनाओं से जूझने में ही बीत जाता है । जहाँ तक भौतिक सम्पत्ति का प्रश्न है जीवन एक ऐसी क्रीड़ा है जो शून्य से आरम्भ होती है और शून्य पर ही समाप्त होती है। यदि हम किसी और जीवन शैली का चयन करते तो भी इसका अंतिम परिणाम भिन्न नहीं होता। शून्य से शून्य तक की यात्रा जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता है। हमारी वास्तविक सम्पत्ति चैतन्य सम्पत्ति है और उस के बारे में उपरोक्त कथन सही नहीं है। हमारा जन्म संचित कर्मों के साथ होता है और अर्जित कर्मों के साथ समाप्त होता है। इस अध्याय में हम यह विचार करेंगे कि क्या वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकृति की कोई योजना है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक जीवन का एक विशेष उद्देश्य है । कोई भी धर्म से यह अपेक्षा की जाती है कि वह जीवन के उद्देश्य को समझने और उसकी प्राप्ति के लिये मार्ग दर्शन करे। तो क्या जैन धर्म प्रकृति के इस उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक है ?

प्रत्येक युग की विशेष परिस्थितियाँ होती है और एक सच्चे धर्म से आशा की जाती है कि वह हर समय, हर प्रकार की परिस्थिति से निपटने के लिए पथ प्रदर्शन करे। इस दृष्टि से प्रत्येक धर्म की एक सनातन भूमिका होती है। हर स्तर पर जीवन की व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय दुविधाएं, उपभोक्तावाद, आतंकवाद, जीवन शैली का पर्यावरण पर प्रभाव तत्कालीन युग के कुछ पहचान बन

गए हैं और इन सबके बीच मानसिक शांति और संतोष प्राप्त करने में बहुत कठिनाई हो रही है। इन में से कई कठिनाइयां इसलिए उत्पन्न हुई हैं कि इस युग में विज्ञान और तकनीकी इतनी तीव्र गति से प्रगति कर रही हैं कि मानसिक क्षमता उतनी शीघ्रता से नहीं विकसित हो पायी है और मानसिक सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाया है। मानसिक, दार्शनिक, और आध्यात्मिक क्षमता हम पर थोपे गए भौतिक परिवर्तन की होड़ में पिछड़ गई है। इस प्रतिस्पर्धी युग में सही और गलत का निर्णय लेने का समय ही नहीं है। एक वैज्ञानिक आविष्कार होने के पश्चात तुरंत ही तकनीकी प्रगति गतिशील हो जाती है और हमारे जीवन को नियंत्रित करने लगती है। तकनीकी विकास के प्रभाव को समझने, सही दर्शन का विकास करने और इसके परिणामों की प्रत्याशा करने में मन को बहुत समय लगता है। विज्ञान के साथ उसी गति से प्रगति करने में सभी धर्मों की विफलता के कारण वे दैनिक जीवन में अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। दर्शन व धर्म को आधुनिक जीवन में प्रासंगिक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम उनकी तात्कालिक चुनौतियों को दृष्टि में रखकर आधुनिक भाषा में पुनः व्याख्या करें। जब धर्म और विज्ञान में विरोधाभास होता है तो ऐसी प्रवृत्ति है कि विज्ञान को सही माना जाता हैं क्योंकि विज्ञान दैनिक आवश्यकताओं को पूरी करने में सफल रहा है। विज्ञान ने पिछले 400 वर्षों में ज़बरदस्त प्रगति की है और उन को अनदेखा नहीं किया जा सकता; बल्कि उसे धर्म के साथ एकीकृत और संश्लेषित कर और अधिक व्यापक बनाना चाहिये। इसके बजाय कट्टरपंथी धर्म की पुरानी व्याख्याओं को पकड़ कर उनका अनुकरण करते हैं, यद्यपि उनसे दैनिक कठिनाइयों को कम करने में कुछ सहायता नहीं मिलती और वे असंगत हो गए हैं। यही कारण है कि धार्मिक लोगों का धर्म में विश्वास धीरे धीरे कम होता जा रहा है।

सच में तो सही और गलत का कोई निरपेक्ष मापदंड नहीं है। जो आज किसी परिस्थिति में सही है वह कल दूसरी परिस्थिति में गलत हो सकता है। एक के लिए जो अमृत है वह दूसरे के लिए विष हो सकता है। इस दुविधा में सही राह का चुनाव करना कठिन है। इसका एक ही विकल्प है कि हम मान कर चलें कि हम प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं और प्रकृति सर्वशक्तिशाली और सही है। इसलिए हमें प्रकृति से मार्गदर्शन लेना चाहिए।

वैज्ञानिक अनुसंधानों से पता चला है कि लगभग 14 अरब वर्ष पहले एक भयंकर विस्फोट से इस ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ और पृथ्वी की उत्पत्ति 4.5 अरब वर्ष पहले हुई। तब से जीव और अजीव दोनों ही एक विशेष दिशा में विकास कर रहे हैं। पृथ्वी पर जीवाश्मों के अध्ययन से लगता है कि प्रकृति एक लक्ष्य की ओर चल रही है और वह लक्ष्य है चेतना का विकास। इसलिए पहले तो हमें चाहिये कि हम प्रकृति के विकास की दिशा ठीक तरह से समझें और फिर हम यह निश्चय करें कि हमें किस दिशा में बढ़ना चाहिए - प्रकृति के साथ या उसके विपरीत। प्रकृति को अपना लक्ष्य प्राप्त करने

में सहायता करें या उसको अनदेखी कर अलग रास्ते का चयन करें। हम इसमें विज्ञान से मदद और प्रकृति से मार्ग दर्शन ले सकते हैं और सही प्रकृति-सम्मत विकल्प चुन सकते हैं। ऐसा विकल्प न तो व्यक्ति विशेष पर निर्भर करेगा न ही धर्म विशेष पर और सही और सर्वमान्य होगा।

जीवाश्मों पर आधारित प्रकृति का पथ :

यदि हम जीवाश्मों पर आधारित पृथ्वी पर जीवों के विकास का अध्ययन करें तो देखेंगे कि आदिम क्षुद्र प्रजातियां धीरे धीरे अत्यन्त विकसित प्रजातियों में बदल गई हैं। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति काई के रूपमें लगभग 3.5 अरब वर्ष पहले हुई। तब से जीवन एक दिशा विशेष की ओर बढ़ता जा रहा है और वह दिशा है चेतना के विकास की। पृथ्वी पर जो भी जैविक और अजैविक क्रियाओं द्वारा बनता बिगड़ता है वह अन्ततः बरसात और नदियों से बह कर समुद्र के तल पर संग्रहित हो जाता है और मिट्टी में दब जाता है। जीवन का पूरा इतिहास जीवाश्मों के रूप में समुद्रतल पर इन अवसादों की परतों में सुरक्षित है। इन जीवाश्मों के रिकार्डों के अध्ययन से पता चला है कि जीवन की उत्पत्ति पृथ्वी के निर्माण के लगभग एक अरब वर्ष पश्चात यानि 3.5 अरब वर्ष पूर्व हुई। उस के पहले पृथ्वी निर्जीव थी। इन आदि जीवों को प्रोकेरियोट कहा जाता है। वे धीरे धीरे विकसित होते हुए 2 अरब वर्ष पर्यंत अपेक्षाकृत जटिल बहु कोशीय (यूकेरियोट) जीवों में और फिर चलने और उड़ने वाली प्रजातियों में विकसित हुए, जैसा कि चित्र 1.1 में दिखाया गया है। हाल ही में वे स्तनधारी जीवों (mammals) और अन्ततः मानव प्रजाति में विकसित हुए । मानव प्रजाति (hominids) जो homosapiens के पूर्वज हैं, केवल 60 लाख वर्ष पहले पृथ्वी पर आये। यह जीवन विकास का वृक्ष चित्र 1.1 में दर्शाया गया है। यदि हम इस क्रम में छोटे मोटे उतार-चढ़ावों पर ध्यान न दें, तो मोटे तौर पर लगता है कि प्रकृति चेतना का उच्च से उच्चतर विकास करने में जुटी है। इससे हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि चेतना का विकास ही प्रकृति का प्रमुख ध्येय है और हम यह कह सकते हैं कि वह हर क्रिया, जो चेतना की वृद्धि करती है, धर्म है और वह हर कदम जिससे चेतना का ह्रास होता है, अधर्म।

जैन दर्शन प्रजातियों को एकीन्द्रीय (स्पर्श) से पंचीन्द्रीय (स्पर्श, गंध, स्वाद, श्रवण और दृष्टि) जीवों में विभाजित करती है। जीवाश्मों के रिकार्ड के अनुसार प्रकृति एकीन्द्रीय प्रजातियों से प्रारंभ होकर पंचीन्द्रीय प्रजातियों में विकसित हुई है। प्रकृति की यही प्रवृति चालू रही तो भविष्य में चेतना का और विकास होगा और इसमें सन्देह नहीं कि शीघ्र ही अतिमानवीय (Superhuman) प्रजाति का जन्म होगा। जैन क्रियाएं ऐसे उच्चतर चेतना-स्तर पर जाने की पद्धति है, जिससे हम स्वयं ही अपने प्रयासों से आगामी स्तर पर पहुँच सकें जिसकी ओर प्रकृति अग्रसर है। चेतना का यह उच्चतर स्तर ज्ञान का स्तर भी बढ़ायेगा।

जीवाश्मों के रिकार्ड से हमें विकास के और कई पहलुओं के बारे में पता चलता है। जैसा कि

ऊपर कहा जा चुका है चेतना का विकास प्रकृति द्वारा अपनाया गया मार्ग है जो एक कोशीय जीवों से आरम्भ हो कर बहुकोशीय जीवों, जटिल समुद्री जीवों, स्तनधारी प्रजातियों, और वनस्पति जीवों, पक्षियों आदि से होता हुआ मानव तक पहुँचा है। वनस्पति प्रजातियों ने वातावरण से प्रकाश-संश्लेषण द्वारा ऊर्जा प्राप्त करने की प्रणाली अपनाई और अन्य जीवों ने कार्बनिक प्रणालियाँ, जैसे भोजन द्वारा ऊर्जा प्राप्त करने की प्रणाली विकसित की।

पृथ्वी पर जीवन का क्रमिक विकास

चित्र : 1.1 पृथ्वी पर अब तक जीवाश्मों का क्रमिक विकास एक कोशीय जीवों से, बहुकोशीय जीवों, समुद्री प्रजातियों,चलती- फिरती प्रजातियों, वनस्पति, स्तनधारी और उड़नेवाली प्रजातियों से होता हुआ मानव तक पहुँचा है। मानव के पूर्वज (होमिनिड्स) पृथ्वी पर लगभग 60 लाख वर्ष पूर्व प्रकट हुए और शीघ्र ही, लगभग 2 लाख वर्ष पूर्व, मानव (होमोसेपियन्स) में विकसित हुए।

जीवाश्म रिकार्ड के मुख्य परिणाम

1. जीवाश्म रिकार्ड बतलाते हैं कि यद्यपि भौतिक विकास क्रमिक रूपसे होता है, चेतना का विकास कभी कभी अकस्मात छलांग भी लगाता है। जीवन के इतिहास में चार ऐसे क्रान्तिकारी विकास हुए हैं। प्रथम तो जीवन की उत्पत्ति जिसके बारे में हमें कुछ पता नहीं हैं। आदिम काईनुमा एक कोशीय स्थावरजीव (प्रोकेरीयोट्स) अपने जीवन के लिये असहाय थे और रूपांतरण के लिए पूर्णतः वातावरण पर निर्भर करते थे। फिर उच्चस्तरीय जीवों की प्रजातियाँ उत्पन्न हुई जो वातावरण से सक्रिय रूप से प्रतिक्रिया करती थी और वे इन भौतिक प्रयासों द्वारा अपनी चेतना विकसित करने में सफल हुई। दूसरी बड़ी क्रान्ति लगभग 57 करोड़ वर्ष पूर्व हुई जब चलने फिरने वाले जीव उत्पन्न हुए। तीसरी क्रान्ति स्तनधारी जीवों की हुई और चौथी क्रान्तिकारी घटना मनुष्य जीवन का उदय है। यह होमिनिन जीनस के उद्भव के साथ ही लगभग 60 लाख वर्ष पूर्व घटी जब आर्डीपिथेकस और फिर 2 लाख वर्ष पूर्व मनुष्य प्रकट हुए। इस जीवन श्रृंखला से हम यह देखते हैं कि चेतना के विकास की गति समय के साथ अधिकाधिक तीव्रता से बढ़ती जा रही है। ऐसा लगता है कि अगली क्रांति शीघ्र ही होने वाली है क्योंकि हम मानव से भी अधिक विकसित प्राणियों के दहलीज तक पहुँच चुके हैं। अगले कदम के साथ हम में अतिमानव की क्षमता आ जायेगी। सब से अविकसित जीव (जो एक प्रकार की काई है) में केवल निम्नस्तर का मतिज्ञान था और जैसे जैसे जीवों का विकास हुआ, उच्चतर ज्ञान की क्षमता मिली, जैसे कि स्तनधारी जीवों में श्रुतज्ञान। मनुष्य ने प्रकृति के नियमों को सीखा और गणना की प्रणालियाँ खोजकर उसने एक प्रकार के अवधिज्ञान की क्षमता प्राप्त करली जो, दूरी और समय की सीमा के परे, ब्रह्माण्ड में हो रही घटनाओं के बारे में जान सकता है। इससे हम ब्रह्माण्ड में सुदूर भूतकाल में होने वाली घटनाओं के बारे में जान सकते हैं और कुछ सीमा तक भविष्य की घटनाओं का अनुमान भी कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि चेतना के साथ जीवों को उच्चतर ज्ञान की क्षमता भी प्राप्त हुई जैसा कि हम विभिन्न जीवों के विकास की श्रृंखला (चित्र 1.1) से जान सकते हैं। भविष्य में चेतना के विकास के साथ ज्ञान का स्तर भी बढ़ेगा और हम मनः पर्याय ज्ञान और केवलज्ञान की ओर प्रगति कर रहे हैं, ऐसा तर्क संगत और अवश्यम्भावी लगता है।

2. जीवाश्मों के रिकार्ड से पता चलता है कि विकास के साथ साथ न केवल नई प्रजातियों की उत्पत्ति होती है बल्कि कई पुरानी प्रजातियाँ विलुप्त होती जाती है। विलुप्त होना ही सभी प्रजातियों का भाग्य है और, कभी न कभी, सभी वर्तमान प्रजातियां नष्ट हो जायेंगी।

3. यह आवश्यक नहीं है कि भविष्य की उच्चतर प्रजातियाँ मौजूदा उच्चतम प्रजातियों से ही विकसित हों। वे मौजूदा किसी भी प्रजाति से विकास की एक लम्बी छलांग लगाकर विकास की चरम सीमा तक पहुँच सकती है। हम यह अनुमान भी नहीं लगा सकते हैं कि भविष्य की परम विकसित

प्रजातियाँ कब और कौनसी मौजूदा प्रजातियों से उत्पन्न होगी। इस कारण से मौज़ूदा सभी प्रजातियों की एक सी अहमियत है। सभी प्रजातियों को महत्वपूर्ण मानते हुए उनका आदर करना चाहिये क्योंकि न जाने किस से नई उच्चतर चैतन्य वाली प्रज़ातियों का उद्भव हो। इसलिये भविष्य में होने वाली विकसित प्रजातियों के लिए सभी का संरक्षण करना चाहिए। अधम चैतन्य की प्रजातियों के लुप्त हो जाने से उच्चत्तर प्रजातियों की प्राकृतिक चयन विधि से उत्पत्ति कठिन हो जाने की संभावना है।

कई प्रजातियों की शारीरिक विशेषताओं के अंतर-सम्बंध का अवलोकन कर चार्ल्स डार्विन ने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज की कि पर्यावरण विकास के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और उस के प्रभाव से वे भिन्न भिन्न प्रजातियाँ भिन्न भिन्न प्रकार से परिवर्तित हुई हैं। इस आधार पर उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अस्तित्त्व के लिए संघर्ष और पर्यावरण के अनुकूल योग्यतम प्रजाति का जीवित रहना प्राकृतिक चयन का प्रमुख नियम है। डार्विन के सिद्धान्त से एक बात तो स्पष्ट है कि शारीरिक विकास दो क्रियाओं पर निर्भर करता है जो सदैव चलती रहती है : (1) वातावरण से आदान-प्रदान और (2) उसके अनुकूल बनने की क्षमता। यह दोनों ही चेतना के गुण माने गए हैं। इसलिए विकास का अर्थ केवल शारीरिक विकास ही नहीं बल्कि चेतना का विकास भी है। वातावरण से केवल यंत्रवत् सम्बंध मस्तिष्क का विकास करता है। इस विकास का वास्तविक प्रेरक चेतना है जो पदार्थ से क्रिया-प्रतिक्रिया कर मस्तिष्क की प्रज्ञता बढ़ाता है जिससे चेतना का स्तर स्वतः बढ़ जाता है । यह सिद्धांत आणविक स्तर पर अनुसंधान करके प्रमाणित किया जा सकता है। कारण कुछ भी हो पर पृथ्वी पर जीवन का विकास निम्न स्तर की चेतना वाले एक कोशीय जीवों से शुरू होकर उच्चतम स्तर की चेतना वाले मानव तक पर्यावरण के साथ आदान प्रदान से स्वतः हुआ है। विकास, कर्म की तरह दो भागों का योग है। संचित विकास जो एक कोशीय काईनुमा जीवों से मानव तक का कुल विकास और अर्जित, जो इस जन्म में हम प्रयास द्वारा प्राप्त करते हैं। इसलिए हमारी चेतना या यों कहें तो हमारा अस्तित्व ही न केवल हमारे पूर्व जन्मों का फल है या पूर्वजों की देन है बल्कि उन सब प्रजातियों के कारण है जो अब तक अस्तित्व में आई हैं, जो अब विद्यमान है, या जो अब तक विलुप्त हो चुकी हैं। यह आधारभूत धारणा अहिंसा के महत्त्व की ओर इशारा करती है। हम जहाँ तक सोच सकते हैं यह विकास की कड़ी अविरत चलती जायेगी और यही प्रकृति का पथ है, जो चेतना को निरंतर उच्चतर स्तर पर ले जाने का लक्ष्य प्रकृति ने अपने लिए नियत किया है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम मनुष्य जीवन में किसी प्रकार अपने प्रयासों द्वारा चेतना का अगला कदम लेकर उच्चतर स्तर हासिल कर सकते हैं, जो हमारी तुलना में एक प्रबुद्ध स्थिति कही जा सके। जैन दर्शन के अनुसार यह सम्भव है। यही जैन दर्शन का ध्येय है और जैन प्रक्रियाँएं चेतना के महत्तम विकास के लिये ही बनाई गई हैं (अध्याय 6)। किसी भी काल में लोगों की चेतना के अलग अलग स्तर होते हैं। कुछ थोड़े लोग बहुत ही उन्नत हैं और उनकी चेतना उच्चतम स्तर पर है, बहुत से लोगों की चेतना मध्यम औसतन स्तर

पर और बहुत थोड़े लोग निम्न स्तर पर हैं। यह वितरण मेक्सवेल की ऊर्जा वितरण के नियम का अनुसरण करता है। जो चेतना के सर्वोत्तम स्तर पर हैं वे विकास के अगले स्तर के पास ही है जहाँ प्रकृति डारविन के सिद्धान्त के अनुसार सब को ले जाने वाली है। जैन पद्धतियों का अनुसरण करके, जिनका अध्याय 6 में वर्णन किया गया है, हम इस जीवन में ही वहाँ पहुँच सकते हैं।

पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति और विकास के बारे में एक और विशेषता है जो ध्यान में रखनी चाहिये। सब जीव समरूप हैं और द्विआधारी हैं; दो आँखे, दो कान, दो हाथ इत्यादि। इससे ऐसा लगता है कि सब जीवों का मूल बीज एक ही है। पृथ्वी पर बुनियादी तौर पर तीन प्रकार के जीव हैं: आरकिया, बेक्टीरिया और युकेरिया, और ऐसी संभावना है कि सम्पूर्ण वनस्पति और प्राणी जगत इन्हीं तीनों से विकसित हुआ है। सारांश में तीनों का उद्भव एक आदि मूल सार्वजनिक जीव (Last Common Universal Ancestor, LUCA) से हुआ और पृथ्वी के सभी जीव उसकी ही वंशावली हैं (चित्र - 1.2)।

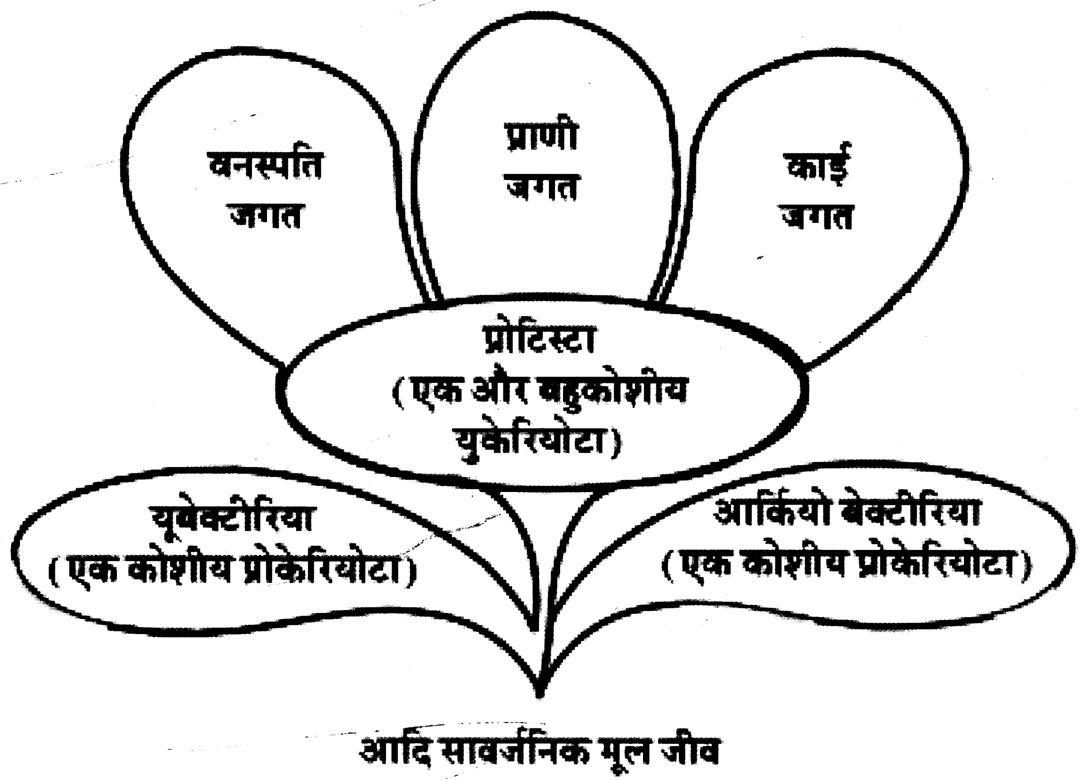

चित्र : 1.2 प्राणियों का वंश वृक्ष बतलाता है कि सभी वनस्पति व प्राणी जगत एक सार्वभौमिक मूल पूर्वज LUCA (Last Universal Common Ancestor) से उत्पन्न हुआ है।

जैन दर्शन की एक और आधारभूत धारणा हैं कि जीव और पुद्गल सर्वथा पृथक तत्त्व हैं जो अनादि और अनन्त हैं, सह अस्तित्व में साथ साथ रहने वाले हैं और एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करते हुए भी एक दूसरे में परिवर्तित नहीं होते हैं। जब कि जीव (अर्थात् आत्मा) चैतन्य, संवेदनशील, निराकार, अभौतिक, अमूर्त, भार-गन्ध-रंग विहीन, शाश्वत, नित्य और सनातन है, पदार्थ मूर्त, अचैतन्य, अमानसिक, और निष्क्रिय है। किसी एक की दूसरे से उत्पत्ति नहीं हो सकती। आधुनिक वैज्ञानिक विचारधारा के अनुसार जीव की उत्पत्ति अजीव से हुई पर वैज्ञानिक अब तक इसका कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाये हैं। विभिन्न अणुओं के एकत्रित और संयोजित रूप से संगठित होकर जीवित कोशिका बनाने की संभावना नगण्य सी है और कुछ वैज्ञानिकों ने इस संभावना का अनुमान 10^{-140} किया है। ब्रह्माण्ड के आयु काल में भी इस प्रकार अनियोजित रूप से सरलतम कोशिका की रचना की कोई संभावना नहीं है। इसके उपरान्त भी लम्बी बहस के पश्चात वैज्ञानिक इस प्रस्ताव पर कार्य कर रहे हैं कि अनुकूल परिस्थितियों में किसी उत्प्रेरक (catalyst) की उपस्थिति में शायद कोई आणविक साँचे (template) द्वारा ऐसा ढाँचा बन पाये जिससे छोटे परमाणु मिलकर बड़े जटिल कार्बनिक अणु बना पायें और फिर उससे जीवित कोशिकाएं बनें। अजीव से जीव की उत्पत्ति के रास्तों की खोज अभी चल रही है। इस प्रस्ताव को हेरोल्ड यूरी और स्टेनले मिलर के प्रयोगों द्वारा काफी प्रोत्साहन मिला। इन प्रयोगों में जब कार्बन डाई ऑक्साइड, अमोनिया, पानी, मीथेन आदि के मिश्रण में विद्युत का प्रवाह किया गया तो अमीनो एसिड, प्रोटीन आदि के जरिये आर्गेनिक अणु बन गए जो जीवित कोशिकाओं के कुछ आवश्यक अवयव हैं। पर इन प्रयोगों में जीवित कोशिकाएं नहीं बनी। विज्ञान के अनुसार ऊर्जा जो अमूर्त है और पदार्थ जो मूर्त और निष्क्रिय है एक ही हैं और एक दूसरे में बदल सकते हैं। पर अब तक यह समझ में नहीं आया है कि चेतनाहीन पदार्थ से चेतना कैसे उत्पन्न हो सकती है। क्या जीव रासायनिक तत्त्वों का संगठन मात्र है या उससे कुछ अधिक ? क्या पदार्थो के घटकों के संयोजन मात्र से अनायास ही स्वयं का ज्ञाता "अहं" उत्पन्न हो सकता है ? हमारे अनुभव में तो जीव की उत्पत्ति केवल जीव से ही होती है और अजीव पदार्थों से जीव की उत्पत्ति असंभव है। इस विषय पर अध्याय - 2 में पुनः चर्चा करेंगे पर यहाँ प्रकृति की राह की सार्वजनिक उपयुक्तता पर विचार करेंगे।

धर्म वही है, जो सब जीवों का संरक्षण करे, प्रत्येक के अस्तित्त्व को बचाने में सहायक हो और सभी, निम्न और उच्च स्तर वाले, जीवों को बराबर का महत्व देकर उनको भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास का पूरा अवसर दे। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के कुछ तरीके हैं जिससे सभी जीवों को, बिना किसी पक्षपात के, पनपने में मदद मिले। सहअस्तित्व के लिए अहिंसा ही एक मात्र सिद्धान्त है जिसके अनुसार कोई जीव अन्य जीव को हानि न पहुँचाये। अपने स्वभाव को जानने के लिए सत्य की खोज आवश्यक है और सब की भौतिक सुख-सुविधा के लिए संसाधनों में सहभागिता और बराबर

वितरण, संग्रह न करना और अपनी आवश्यकताओं को न्यून करना, चोरी न करना आदि सिद्धान्तों का पालन करना है। यही चार सूत्र अर्थात अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और अचौर्य तीर्थंकर पार्श्वनाथ द्वारा प्रतिपादित चतुर्यामी जैन धर्म के प्रमुख आचार हैं। इन के अतिरिक्त पाँचवा ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त उचित यौन आचारण का है, जिसका महावीर स्वामी ने इ.पू. पाँचवी सदी में समावेश किया। ये पाँचों जैन धर्म के महाव्रत हैं, जो परमज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। इनके बारे में हम छटे अध्याय में चर्चा करेंगे।

जैन दर्शन ब्रह्माण्ड को दो भागों में विभक्त करता है: जीव और अजीव और दोनों को बराबर का महत्व देता है। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान पदार्थ-जगत का विज्ञान है, जैन धर्म आत्मा का विज्ञान है और साथ ही साथ यह भौतिक-जगत का भी विचार करता है। कोई भी भौतिक शास्त्री इस से सहमत होगा कि भौतिक-जगत कुछ नियमों द्वारा संचालित होता है, और ये नियम सार्वलौकिक हैं, अर्थात सभी काल और स्थान पर लागू होते हैं, उनका उल्लंघन नहीं हो सकता और चमत्कारों की कोई सम्भावना नहीं है। जब भी हम कोई विशेष घटना विज्ञान के नियमों द्वारा नहीं समझ पाते, उसे फिलहाल चमत्कार की संज्ञा दी जाती है पर जैसे ही उस घटना के वैज्ञानिक नियम समझ में आ जाते हैं, चमत्कार विलीन हो जाता है। यही जीवन के लिए भी सत्य है। प्राणियों या आत्मा का विज्ञान अत्यंत जटिल है पर जैनदर्शन के अनुसार वह भी कुछ नियमों द्वारा संचालित होता है। जब हम कुछ जैविक घटनाओं को नहीं समझ पाते तो हम एक सर्वशक्तिमान भगवान का आह्वान करते हैं, पर जैसे ही ये नियम समझ में आ जाते हैं भगवान की आवश्यकता नहीं रहती। जैन दर्शन के अनुसार ये नियम सर्वज्ञों ने ध्यान, तपस्या, भक्ति आदि पद्धतियों द्वारा जान कर सूत्रित किये। इसे ही परम ज्ञान कहा जाता है।

जैन दर्शन के अनुसार जीव जगत के छ शाश्वत सत्य हैं (अध्याय - 2)। अजीव जगत के पाँच तत्त्व हैं: आकाश, पुद्गल (पदार्थ), धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और काल। जीव और इन पाँच तत्त्वों से ब्रह्माण्ड बना है। यद्यपि विज्ञान इनमें से तीन (आकाश, पदार्थ और काल) से सहमत है, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय क्या हैं यह अभी तक रहस्य ही है और अध्याय 7 में इसकी चर्चा की जायेगी। जीव समेत यह छ: तत्त्व शाश्वत, अनादि और अविनाशी हैं और जगत में इनकी मात्रा निश्चित है। पदार्थ के अलावा अन्य सभी तत्त्व अरूपी हैं। ये शाश्वत तत्त्व कुछ नियमों के अनुसार व्यवहार करते हैं और एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं, परस्पर प्रभावहीन हैं और न ही कोई बाह्य या आन्तरिक वस्तु से प्रभावित होते हैं । यह तत्त्व स्वयं निष्क्रिय हैं अर्थात् स्वयं कोई क्रिया में भाग नहीं लेते पर जीव और पुद्गल को क्रियाएं करने में सहायक हैं। इनकी उपस्थिति से लोक की सीमा निर्धारित होती है।

जैन दर्शन ने दो आधारभूत सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, जिनके द्वारा हम ब्रह्माण्ड को और

उसमें होने वाली सभी क्रियाओं को समझ सकते हैं। ये हैं अनेकान्तवाद (बहुमुखत्व) और कर्मवाद (कार्य-कारण सम्बंध)। अनेकान्तवाद ब्रह्माण्ड के सच्चे स्वरूप का वर्णन करता और कर्मवाद ब्रह्माण्ड में होनेवाली सभी क्रियाओं का आधारभूत नियम है । भौतिक और चैतन्य जगत इन दोनों सिद्धांतों से नियंत्रित होते हैं। अनेकान्तवाद के अनुसार आत्मा और पुद्गल के अनेक गुण हैं जिनमें कुछ तो एक दूसरे के विरोधाभासी भी हैं और यह सब गुण एक साथ रहते हैं। यह तर्क और व्याख्या से परे है। यही आत्मा का वास्तविक स्वभाव है। अनेकान्तवाद जगत को माया या भ्रम नहीं मानता जैसा कि कुछ अन्य धर्म बतलाते हैं, पर उसे यथार्थ और सत्य मानता है। कर्मवाद जो जैविक जगत का नियम है, भौतिक जगत के कार्य-कारण सम्बंध की तरह है। प्रत्येक क्रिया का कुछ न कुछ परिणाम होता ही है और प्रत्येक परिणाम का कुछ न कुछ कारण अवश्य है। यह आधारभूत नियम जैविक और भौतिक जगत दोनों को नियंत्रित करता है। इसका तात्पर्य यह है कि आत्मा प्रत्येक परिस्थिति में किसी भी प्रकार का निर्णय लेने में स्वतंत्र है अर्थात् आत्मा कर्ता है और उस के पास विकल्प हैं, पर वह अपने कार्य के परिणामों से बाध्य है और वही भोक्ता है। इन परिणामों का किसी प्रकार शमन नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से भाग्य विकल्प रहित है। कर्मवाद (अध्याय 4) आत्मा से सम्बंधित नियम और आत्मा और पदार्थ के व्यवहार के नियम परिभाषित करने के अतिरिक्त व्यापक परिप्रेक्ष्य में नियमानुकुल ऐसे प्रयोगों और विधियों की भी व्याख्या करता है जिनके अनुसार हमें वांछित परिणाम पाने के लिये किस प्रकार कार्य करने चाहिये। इनकी व्यावहारिक उपयोगिता के कारण जैन अनुयायी दैनिकचर्या में इनका पूर्ण रूप से पालन करने की चेष्टा करते हैं। कर्मवाद की तुलना में अनेकान्तवाद जो एक प्रकार से सापेक्षवाद का सिद्धान्त है, पूरी तरह विकसित नहीं किया गया है। यह पदार्थ के सच्चे स्वरूप का वर्णन करता है और अध्याय 3 में इसकी कुछ चर्चा करेंगे।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, जैन दर्शन वास्तविक अर्थों में एक धर्म नहीं है और न ही आस्था का विषय। न ही यह अवतारों या पैगम्बरों के माध्मय से लोगों के दुःख दूर करने के लिए भेजा गया ईश्वर का संदेश है। यह तो आस्था और धर्म के पार एक पथ है जिसका अपने प्रयासों द्वारा अनुसरण कर के कोई भी आत्मा के गुणों और नियमों का अनुभव कर परम ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है। यह मार्ग बड़ा कठिन है क्योंकि इसके लिए अथक प्रयास करने पड़ते हैं। फिर भी यह मार्ग एक तरह से सरल भी है क्योंकि विविध क्रियाओं और इस राह पर प्रगति के चिन्हों की अच्छी तरह व्याख्या उपलब्ध है और हर एक व्यक्ति को नई पद्धति विकसित करने की या किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता नहीं है।

मौलिकता और प्राचीनता होते हुए भी जैनदर्शन के बारे में लोगों को इसकी अधिक जानकारी नहीं है। पूर्वी दर्शन में "धर्म" का वास्तविक अर्थ मूल स्वभाव या पथ है जबकी पश्चिमी दर्शन में यह

शब्द आस्था से जुड़ा है। जैन दर्शन वास्तव में एक नास्तिक धर्म है और भौतिक और आध्यात्मिक पहलुओं को एक सा महत्व देता है। प्रत्येक जीव का यह उद्धेश्य है कि वह अपना सच्चा स्वरूप जाने और अपनी चेतना को उच्चतम स्तर पर ले जाने की प्रक्रिया समझे और उसका अनुसरण करे। इस के अनुसार इस पुस्तक में हम आधुनिक विचारधारा के संदर्भ में इसकी पुनःव्याख्या करने की चेष्टा करेंगे।

प्रत्येक जीव को स्वयं अपने लिए एक राह चुननी पड़ती है। वह राह उसकी तत्कालीन अवस्था पर निर्भर करती है और अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का तरीका हर एक के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। जीवन का उद्देश्य भौतिक सम्पन्नता और आर्थिक समृद्धि ही नहीं है, इसका उपयोग उच्चतर लक्ष्य की प्राप्ति के लिये होना चाहिए। मृत्यु के समय केवल कर्म ही आत्मा का साथ देते हैं (अध्याय - 4)। इस संदर्भ में विभिन्न धर्म और आस्थाएं भिन्न भिन्न पद्धतियों का प्रयोग करने की सलाह देते हैं, जिनके द्वारा सर्वज्ञता, मोक्ष या निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है पर हर पद्धति सबके लिए अनुकूल नहीं होती। उनका अध्ययन कर के हर एक को अपने लिए उपयुक्त पद्धति चुननी चाहिए। प्रत्येक पद्धति का प्रमुख उद्देश्य अपना सच्चा स्वरूप जानना है। कट्टरता और संघर्ष का कारण यह है कि इन क्रियाओं का दृढता से अनुसरण करना लक्ष्य सिद्धि के लिये आवश्यक है। यदि प्रत्येक धर्म का उद्देश्य एक ही है तो वे विरोधाभासी नहीं हो सकते और उनके बीच कुछ समानता होनी चाहिए। आज के युग में यदि सब को किसी में विश्वास है तो वह है विज्ञान के नियम क्योंकि कोई भी उनका उल्लंघन नहीं कर सकता। वैज्ञानिक पद्धति सही अर्थ में सर्वमान्य हैं क्योंकि कोई भी उनका अध्ययन कर सकता है, उनका परीक्षण कर सकता है और उनका उपयोग कर सकता है। किसी के मन में वैज्ञानिक सिद्धान्तों के बारे में कोई संदेह नहीं है चाहे वे विद्युत, गुरुत्वाकर्षण, नाभिकीय या रासायनिक विज्ञान अथवा शारीरिक और मस्तिष्क की कार्य प्रणाली के बारे में हो। इसीलिए प्रत्येक धर्म के सिद्धान्तों और साधनाओं का वैज्ञानिक परीक्षण करना वांछनीय है। यदि विभिन्न धर्मों के कुछ सिद्धान्तों का वैज्ञानिक विधि द्वारा परीक्षण कर के उन्हें सिद्ध कर दिया जाए तो किसी को कोई आपत्ति नहीं रहेगी और हम एक समन्वय स्थापित कर शांति से एक दूसरे के साथ रह सकेंगे।

यह दृष्टिकोण भी आपत्ति या दोषरहित नहीं है। कई विद्वान और धर्म गुरु विज्ञान और धर्म का क्षेत्र अलग मानते हैं और उनकी यह धारणा है कि धर्म की समीक्षा विज्ञान के द्वारा नहीं की जा सकती। इन धर्मों की तुलना में जैन धर्म अपने को विज्ञान पर आधारित मानता है और वैज्ञानिक अनुसंधान को महत्व देता है, हालाँकि इसमें भी कई विद्वानों की राय भिन्न भिन्न हो सकती है। जैनों के कई सिद्धान्त और साधनाएं पूर्णतया विकसित हैं और कई बौद्ध और हिन्दू मान्याताओं से मेल भी खाती हैं। इसलिए हम अध्याय-7 में कुछ जैन धारणाओं का आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से विवेचन करेंगे।

जैन दर्शन के अनुसार चेतना का विकास ही सब मनुष्यों का परम लक्ष्य होना चाहिये और यह

प्रकृति के पथ से मेल खाता है। इस दृष्टि से जैन दर्शन उन सबके लिए उपयोगी है जो चेतना को पूर्णरूप से विकसित कर परमज्ञान, सर्वज्ञता और परम सुख की आंकाक्षा करते हैं। परमज्ञान प्रकृति के उन नियमों को जान लेना और अनुभव करना है जो सारे ब्रह्माण्ड को, जीव और अजीव दोनों को ही, संचालित करते हैं। एक बार इन नियमों का ज्ञान और अनुभव हो जाए तो अज्ञान, डर और चाह स्वतः नष्ट हो जाते हैं। इस संदर्भ में यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि सब जीव कुछ नियमों के अधीन है और इन नियमों का उल्लघंन नहीं किया जा सकता और वे एक सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा या भय से नहीं बदलते। इस लिहाज से मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है - न कि भाग्य की कृपा पर जीवित है। वह असहाय नहीं है और उसी पर उसके कर्मो का पूरा उत्तरदायित्व है।

जैन दर्शन सनातन मार्ग दर्शक है। जिस जगत का परिवर्तन ही नियम है उसमें क्या सनातन है? आधुनिक विज्ञान की दृष्टि में ब्रह्माण्ड भी सनातन नहीं है। उसकी 14 अरब वर्ष पहले उत्पत्ति हुई थी और उसका भविष्य में कभी न कभी, अन्त भी निश्चय है। इस अस्थाई क्षणभंगुर जगत में केवल भौतिक शास्त्र के नियम ही शाश्वत हैं ऐसा वैज्ञानिक मानते हैं। ये ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के पहले भी थे, और ब्रह्माण्ड के विनाश के पश्चात भी उसका भाग्य निर्धारित करेंगे। वास्तव में जगत का उद्भव इन नियमों का ही परिणाम है। इसी प्रकार कर्म का सिद्धान्त भी, जो जैविक क्रियाओं को नियंत्रित करता है, शाश्वत है। कोई धर्म जो शाश्वत कहा जाय, वह भौतिक जगत के नियमों के अनुकूल होना चाहिये। यह नियम क्या हैं और वे जैन धर्म के बुनियादी सिद्धांतों से कैसे मेल खाते हैं इसकी चर्चा बाद में करेंगे पर अभी अध्याय - 2 में हम जैन दर्शन के प्रमुख आधार "शाश्वत सत्यों" की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे।

2

शाश्वत सत्य

अप्पा सो परमप्पा: भगवान महावीर

शाश्वत सत्य, आत्मा का स्वरूप
आत्मा की शक्तियाँ, जीव और अजीव की परस्पर क्रियाएं
सात तत्त्व
अजीव (आकाश, पदार्थ, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल)

जैन दर्शन का यह विश्वास है कि मनुष्य की अनन्त सम्भवनाएं हैं। सभी विधियां और सिद्धान्त इन सम्भावनाओं का पूर्ण विकास करने के लिए प्रतिपादित किये गए हैं। आत्मा का अस्तित्व एक शाश्वत सत्य है जिस पर जैन दर्शन के सभी सिद्धान्त टिके हुए हैं। यदि आत्मा का अस्तित्व नहीं है तो जैन दर्शन का कोई आधार नहीं है। चूंकि आत्मा अभौतिक है, उसका कोई भौतिक प्रमाण नहीं हो सकता और इसका अस्तित्व केवल इसके गुणों द्वारा ही सिद्ध किया जा सकता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि पहले हम आत्मा के गुणों की चर्चा करें। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा के अनन्त गुण हैं। जैन दर्शन की यह विचारधारा रही है कि जीव और अजीव के प्रत्येक गुण का आधार एक निहित शक्ति है। इसलिये अनन्तगुणों को धारण करने के लिए आत्मा में अनन्त प्रकार की शक्तियाँ होनी चाहिये। इन में से दस प्रमुख शक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

1. **जीवत्व शक्ति :** आत्मा में सदैव जीवित रहने की शक्ति अर्थात अमरत्व है। आत्मा अमरत्व से युक्त है।
2. **चित्ति शक्ति :** आत्मा चेतना के शिखर पर स्थित है अर्थात उसमें अनन्त चैतन्य है।
3. **दृष्टि शक्ति :** आत्मा दृष्टा है, वह ज्ञायक है, उसमें स्वतः, बिना इन्द्रियों के सब कुछ देखने की क्षमता है।
4. **सर्वज्ञ शक्ति :** आत्मा सब कुछ जानने की शक्ति रखता है अर्थात वह अनन्त ज्ञान का धनी है।
5. **अनन्तवीर्य शक्ति :** आत्मा अनन्त जैविक ऊर्जा का धारक है अर्थात सर्वशक्तिमान है।
6. **सर्व व्यापकत्व शक्ति :** आत्मा एक ही काल में सब जगह उपस्थित है, उसका फैलाव पूरे ब्रह्माण्ड में है।

7. **अनन्त आनन्द शक्ति :** आत्मा परम सुखी है - उसे कोई दुख छू भी नहीं सकता । वह दुख से परे है।

8. **अनेकत्व शक्ति :** आत्मा बहु-रूपीं है। वह एक ही समय में बहुत से गुण प्रकट करने की शक्ति रखता है।

9. **विभुत्व शक्ति :** आत्मा के सभी गुण एक साथ रहते है, चाहे वे गुण प्रकटित हों या अप्रकट रहें।

10. **सर्वदर्शित्व शक्ति :** आत्मा में प्रत्येक वस्तु, घटना या क्रिया को सही रूप से अर्थात तत्त्व की दृष्टि से देखने की शक्ति है अर्थात सम्यग्दर्शन की क्षमता है।

हम यह जानते हैं कि एक जैविक तंत्र, अर्थात जीव में वातावरण से ऊर्जा लेने की क्षमता है और इसीलिए, जैसा कि हम अध्याय 7 में चर्चा करेंगे, एक जीवित तंत्र की एन्ट्रोपी (entropy) कम होती जाती है जबकि एक भौतिक तन्त्र की एन्ट्रोपी सदैव बढ़ती रहती है। हमारा सब से नज़दीकी ऊर्जा का स्रोत पृथ्वी और उसका जीव और वायु मण्डल है और हम इन से अधिकतम ऊर्जा प्राप्त करते हैं। दूसरा महत्तम स्रोत सूर्य, तारे और आकाशगंगा का केन्द्र है। ये सब अनन्त ऊर्जा के स्रोत हैं और आत्मा इन सबसे यह ऊर्जा प्राप्त करने की क्षमता रखती है।

क्या वास्तव में आत्मा होती है या यह केवल कल्पना मात्र है ? यह एक स्वाभाविक और महत्वपूर्ण प्रश्न है। ऐसा कुछ हो जिसमें ऊपर कहे गए गुण होते हैं तो हम आत्मा का अस्तित्व मान सकते हैं। आत्मा के अस्तित्व के बारे में प्रश्न करना प्रश्नकर्ता या ज्ञायक के होने का द्योतक है और वह ज्ञायक ही आत्मा है। केवल उसी में संशय करने की, प्रश्न करने की और जानने की क्षमता है, अर्थात वही चैतन्ययुक्त है, जैसा कि उसके गुणों की परिभाषा करते हुए ऊपर बतलाया गया है। अतः इस प्रश्न का उत्तर, अर्थात आत्मा है या नहीं, उस प्रश्न में ही निहित है। इस प्रकार आत्मा स्वतः सिद्ध है। दे कार्त (De Carte) की प्रसिद्ध घोषणा है कि मैं सोचता हूं इसलिए मैं हूं (Cogito Ergo Sum)। विचार है तो ''स्वयं'' है । वह कौन है जो आत्मा के अस्तित्व के बारे में पूछ रहा है? और वह कौन है जो इसका उत्तर समझेगा? वही तो आत्मा है जो ज्ञायक है, जिसमें चैतन्य है। ज्ञायक को ज्ञायक के अतिरिक्त और कौन जान सकता है। आत्मा ही दृष्टा है जो देखने वाला है। इसीलीए भगवान महावीर ने कहा है कि आत्मा से आत्मा को देखो। एक अंधेरे कमरे में आंखे बंद करके बैठने वाले को कुछ भी नहीं दिखाई देता है पर उसको स्वयं की उपस्थिति जानने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती है। जिसे अपने स्वयं के होने का ज्ञान है वही आत्मा है। स्वयं ही चैतन्य युक्त है और चेतना के दो गुण है - दर्शन और ज्ञान। ऐसा कोई जीव नहीं जिसमें यह दो गुण नहीं है और ये दो गुण जीव के सिवाय किसी और में हो ही नहीं सकते।

आत्मा स्वतंत्र (शुद्ध) या बंधित (अशुद्ध) अवस्था में होती है। शुद्ध अवस्था में वह अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य से युक्त होती है और यह चार शुद्ध आत्मा के अनन्त चतुश्चय गुण कहलाते हैं। यह

स्वयंसिद्ध, अनादि, अनन्त, अमूर्त, अविनाशी, व्यापक विस्तारवाली अर्थात असंख्यात प्रदेशी और अखण्ड है। इन विशेष गुणों के अतिरिक्त आत्मा के कुछ साधारण गुण भी होते हैं जैसे कि अस्तित्व , द्रव्यत्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरूलघुत्व, प्रदेशत्व आदि, जिनमें से कुछ का उल्लेख ऊपर किया गया है।

आत्मा ज्ञाता है, अतीन्द्रीय है अर्थात बिना इन्द्रियों के सब कुछ जानने की क्षमता रखता है। शुद्ध अवस्था में आत्मा स्वतंत्र है, निरपेक्ष, संबल, स्वश्रित (स्वावलम्बी), अचल (गति या स्पन्दनहीन), निसंग (नितांत एकाकी), ज्ञापक ज्योतिमात्रा (स्वप्रकाशित) है। वह अजर और अकाल (समयातीत) है। एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि आत्मा भौतिक है, अभौतिक है, दोनों है या दोनों में से कोई भी नहीं। अधिकतर विद्वान शुद्ध आत्मा को अपदार्थ या अभौतिक मानते हैं। आइन्स्टीन के अनुसार पदार्थ और ऊर्जा एक दूसरे में बदले जा सकते हैं। पदार्थ की मात्रा M, और ऊर्जा E प्रसिद्ध समीकरण $E=Mc^2$ से सम्बंधित है जिसमें c प्रकाश की गति है। इस प्रकार विज्ञान के अनुसार मूर्त और अमूर्त को एक दूसरे में बदलने में कोई कठिनाई नहीं है। आत्मा का स्वरूप कुछ भी हो, एक बात तो निश्चित है कि इसके अखण्ड और अभेद होने के कारण इसके छोटे भाग नहीं किये जा सकते। यह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम - अति सूक्ष्म है। व्यक्त या अव्यक्त, पदार्थिक या अपदार्थिक या चाहे किसी अनजाने रूप में हो, जैन शास्त्र बतलाते हैं कि आत्मा सूक्ष्म पदार्थ रूपी कर्माणु से गठन कर सकता है। इस प्रकार गठित होने पर आत्मा में स्पन्दन उत्पन्न होता है। जहाँ तक हम जानते हैं केवल भौतिक पदार्थ में ही स्पन्दन की क्षमता होती है।

कई पूर्वी दर्शन आत्मा के अस्तित्व को मानते हैं पर उनके दृष्टिकोण एक से नहीं हैं। यह अनेकांतवाद के सिद्धान्त के अनुसार उचित ही है। जैन दर्शन में प्रतिपादित सप्तभंगी (अस्तित्व की सात अवस्थाएं) के अनुसार (जिसकी अध्याय 3 में व्याख्या करेंगे) अस्तित्व एक साथ कई रूपों में प्रकट होता है और वर्णनातीत है। सप्तभंगी के अनुसार हम कह सकते है कि (1) आत्मा अरूपी है, (2) आत्मा रूपी है, (3) यह अरूपी है और अवर्णनीय है (4) यह रूपी है और अवर्णनीय है, (5) यह रूपी भी है और अरूपी भी, (6) यह न तो रूपी है न अरूपी (7) इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। ये धारणाएं भौतिक विज्ञान के क्वान्टम मिकेनिक्स से सहमत हैं जिसमें तात्विक कण (एलिमेंटरी पार्टीकल्स) जैसे कि फोटोन या इलेक्ट्रोन कण और तरंग दोनों रूपों में प्रकट होते हैं। प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री डॉ. दौलतसिंह कोठारी ने एक डिब्बे में प्रकाशकण के उदाहरण से सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि सप्तभंगी और क्वान्टम मिकेनिक्स एक दूसरे से मेल खाते हैं। यदि फोटोन को एक डिब्बे में रखकर उसको एक छिद्र वाली दीवार से दो भागों अ और ब में विभाजित किया जाये तो कण और तरंग के द्वैत के कारण फोटोन या तो कण रूपमें रहेगा या तरंग रूपमें। यदि वह कण है तो भाग अ या भाग ब में हो सकता है और तरंग है तो भी भाग अ या ब में या दोनों में हो सकता है और यदि तरंग डिब्बे से बाहर फैल गई हो तो दोनों में भी होगा या दोनों में भी नहीं होगा। वह ऐसी स्थिति

में भी हो सकता है जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। इस प्रकार सात सम्भावनाएं हो सकती हैं जो सप्तभंगी से सहमत हैं :1. कण है भाग अ में, 2. कण है भाग ब में, 3. तरंग है अ में पर केवल अ में नहीं है, 4. तरंग है भाग ब में पर केवल ब में नहीं है, 5. दोनों में है, 6. दोनों में नहीं है, 7. और यदि कण तरंग में परिवर्तन की दशा में है तो अव्यक्त अवस्था में है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, आत्मा अनेक गुणों वाली है और जैन और हिन्दू शास्त्रों में आत्मा के भिन्न भिन्न गुणों का वर्णन किया गया है। बौद्ध धर्म में आत्मा के बारे में काफी विवाद है। बुद्ध ने आत्मा के बारे में प्रश्नों को वर्जित कर दिया था क्योंकि वह अवर्णनीय और अव्यक्त है, उसकी व्याख्या नहीं हो सकती। इस गहन चिंतन के उपरान्त भी आत्मा के स्वरूप के बारे में बहुत विवाद है। भौतिकवादी और आध्यात्मवादी दोनों ही मानते है कि सारा ब्रह्माण्ड केवल एक ही तत्त्व से बना है। वैज्ञानिकों की परिकल्पना है कि पदार्थ ही वह तत्त्व है और निर्जीव से जीव की उत्पत्ति हो सकती है जब कि कई आध्यात्मवादी मानते हैं कि सब पदार्थ आत्मा की ही अभिव्यक्ति है। इन दोनों धारणाओं में किसी की पुष्टि करना कठिन है। इस दुविधा को हल करने के लिए कुछ द्वैतवादी सिद्धान्तों का प्रस्ताव किया गया जिनके अनुसार मानस और पदार्थ या पुरुष और प्रकृति दो सनातन, सहअस्तित्व वाले और स्वतन्त्र तत्त्व हैं जो एक दूसरे से मिलकर ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं। यदि मन और पदार्थ के परस्पर सहयोग से सभी क्रियाएं कार्यान्वित हो सके जैसे कि भाव मात्र से शारीरिक क्रियाएं या शारीरिक कार्य से मानसिक अनुभूति, तो भी यह समझ में नहीं आता कि किस प्रकार हमारे भीतर अमूर्त विचार या इरादे शारीरिक क्रियाओं को गति देते हैं। इसलिए शरीर के सभी भागों में (पर शरीर में ही सीमित) चेतना की उपस्थिति आवश्यक है। चेतना के इस गुण को आत्मा की नियत-प्रदेशत्व शक्ति कहा गया है।

जैन दर्शन के अनुसार ब्रह्माण्ड जीव और अजीव की परस्पर क्रिया का परिणाम है। आत्मा और कर्माणु बिना अपने मौलिक गुण बदले एक दूसरे से प्रतिक्रिया करते हैं। जैन दर्शन का स्पष्ट मत है कि जीव (आत्मा) अजीव (पदार्थ) में या इसके प्रतिकूल, अजीव जीव में नहीं बदला जा सकता। आत्मा के इस गुण को अगुरूलघुत्व कहा गया है जिसके अनुसार यद्यपि वे परस्पर क्रिया और योग करते हैं, एक दूसरे में रूपांतरित नहीं हो सकते। जैन दर्शन जीव और अजीव दोनों को ही अस्तिकाय मानते हैं, दोनों ही सत् हैं (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त सत्)। चेतना के प्रत्येक कर्म से एक मानसिक-भौतिकी कर्मण शरीर की उत्पत्ति होती है और यह कर्मण शरीर स्पन्दन युक्त होता है।

पदार्थ की तरह जीव अस्तिकाय है। पर पदार्थ के विपरीत, जो दूसरे पदार्थिक कण के अपने अधिकृत प्रदेश में प्रवेश करने पर प्रतिरोध उत्पन्न करता है, आत्मा शरीर के पूरे आयाम में फैल जाती है पर दूसरी आत्मा के प्रवेश करने पर कोई अवरोध नहीं करती। अर्थात आत्मा उस पूरे आकाश को नहीं

भरती जिसमें वह स्थित है। जिस प्रकार दो दीपक एक ही क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं वैसे ही दो या उससे अधिक आत्माएं एक ही प्रदेश या क्षेत्र में एक साथ रह सकती हैं। यह सह-अस्तित्व और सह-उपस्थिति आत्मा के गुण हैं। समयसार में वर्णित आत्मा के विभिन्न गुणों में विभवशक्ति भी एक गुण है जिससे आत्मा और पदार्थ परस्पर प्रभावित हो कर एक दूसरे का विरूपण करते हैं। जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, आत्मा और पुद्गल (पदार्थ) दोनों ही परस्पर प्रतिक्रिया करते हुए भी अपने मौलिक गुण नहीं बदलते । यह मुख्य शक्ति या गुण है जिसके अन्तर्गत आत्मा कर्माणु से क्रिया करता है और दोनों अपने ढंग से रूपांतरित होते हैं। इस प्रतिक्रिया से बन्धन की उत्पत्ति होती है। आत्मा और कर्माणु के परस्पर क्रिया बिना कोई बन्धन नहीं होता और ऐसी कोई क्रिया नहीं है जो बन्धन उत्पन्न नहीं करती। कर्म बन्धन दो प्रकार के होते हैं। भाव कर्म और द्रव्य कर्म। भाव कर्म आत्मा का स्वयं या भाव द्वारा रूपान्तरण और द्रव्य कर्म आत्मा का भौतिक कर्म द्वारा रूपान्तरण है।

जैन धर्म के छह शाश्वत सत्य[1] हैं जिस पर वह टिका है। ऊपर लिखे तर्कों के आधार पर यह स्पष्ट है कि

(1) आत्मा है और

(2) आत्मा सनातन (सदैव, अनादि और अनन्त) है ।

बाकी के चार सत्यों की व्याख्या इस प्रकार की जाती है :

(3) आत्मा अपने कर्मों का कर्ता है।

(4) आत्मा अपने कर्मों का भोक्ता है।

(5) मोक्ष है। आत्मा शुद्ध स्वरूप में बंधन मुक्त हो सकती है।

(6) मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं अर्थात आत्मा को शुद्ध स्वरूप प्राप्त करने की पद्धति है।

जब कोई व्यक्ति इन छः शाश्वत सत्यों में पूर्ण रूपेण विश्वास करता है तो वह संसार का सत्य परिपेक्ष्य या सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है, फिर शुद्धता की प्रक्रिया द्वारा वह सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र को उपलब्ध होता है। प्रत्येक जीव का विश्व-परिपेक्ष्य भिन्न है जो उसकी कर्म दृष्टि नियंत्रित करती है। हम वही देखते हैं जिसकी हमारी कर्म दृष्टि हमारी इन्द्रियों द्वारा देखने की अनुमति देती है। इन्द्रियों की क्षमता सीमित और दोष युक्त है। यही कारण है कि मनुष्य और पशु विश्व को भिन्न भिन्न रूप में अनुभव करते हैं। व्यक्तियों में भी सब का दृष्टिकोण एक सा नहीं होता, वह इन्द्रियों की दक्षता, मानसिक क्षमता और कर्म दृष्टि पर निर्भर करता है। यही अज्ञान का कारण है। जब सब कर्मों का ह्रास हो जाता है तब सम्यक दृष्टि उपलब्ध होती है। कर्मों के नाश होने से इन्द्रियों पर निर्भर रहने वाला मन विलीन हो जाता है और प्रबुद्ध मन सक्रिय होता है। सम्यक दर्शन से अज्ञान को भेदने से सम्यक ज्ञान उदय होता है और अपनी

गतिविधियों में उसके अनुकरण करने से सम्बोधि उपलब्ध होती है।

इस ब्रह्माण्ड में सात, और केवल सात तत्त्व हैं। जीव, अजीव, आश्रव, (कर्माणुओं का प्रवाह), बंध (आत्मा के साथ कर्म बंध), संवर (कर्मों का अवरोध या ठहराव), निर्जरा (कर्मों का स्खलन) और मोक्ष (कर्म से मुक्ति)। मूल रूप से अन्तिम पाँच तत्त्व जीव की प्रतिक्रियाओं अर्थात चैतन्य आत्मा और द्रव्य कर्माणु के बीच संघत्व और पृथक्करण से सम्बंधित हैं। जीव एक सक्रिय तत्त्व है, स्वयं कृत्तत्व में सक्षम और ऊपर उल्लेख की गई सभी शक्तियों का धारक है। अजीव, जैसा उल्लेख किया गया है जीव से पूर्णतया स्वतन्त्र है और उसमें पाँच तत्त्व हैं: आकाश, पुद्गल, काल, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय। ये सभी पाँच तत्त्व निष्क्रिय (अकर्ता), स्वतन्त्र, सर्वव्यापी, सह-अस्तित्वी, अविनाशी, परस्पर अप्रभावी, और जैन दर्शन के अनुसार, भौतिक जगत के घटक हैं।

जैन दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण पहलू आत्मा और पुद्गल की सहभागी क्रियाएं है। यह क्रियाएं पदार्थ के सूक्ष्म कर्माणुओं के साथ संगठन और विघटन से उत्पन्न होती हैं। आत्मा जब कर्माणु का अधिग्रहण कर लेती है तब जीव की रचना होती है। प्रत्येक जीव के शरीर की पांच परतें होती है : इन में से तीन अर्थात कर्मण, तेजस और औदारिक सामान्यतः रहती हैं और अन्य दो अर्थात आहारक और वैक्रिय विशेष स्थिति में निर्मित होती हैं। ये परतें कर्मण शरीर, तेजस (ऊर्जा) शरीर, भौतिक शरीर, स्थानान्तरण शरीर और परिवर्तन शरीर के नाम से जानी जाती हैं। जब आत्मा कर्माणु के साथ बंध जाती है तो कर्मण शरीर निर्मित होता है और जब आत्मा सब कर्माणुओं को अपने से विच्छेदित कर गिरा देती है तो वह मूल (शुद्ध) अवस्था प्राप्त कर लेती है। कर्मण शरीर कर्मण द्रव्यों का संग्रह स्थान है और जैसे कर्माणु संग्रहित या विच्छेदित होते हैं, वैसे वैसे प्रति क्षण परिवर्तित होता रहता है। मृत्यु के समय यह कर्मण शरीर आत्मा के साथ भौतिक शरीर छोड़ देता है और पुनर्जन्म के समय नये शरीर का आधार बनता है। तेजस शरीर ऊर्जा से बनता है और शारीरिक क्रियाओं में मदद करता है। आहारक शरीर चैतन्य शरीर है जो जीवन को सही परिपेक्ष्य में समझने में सहायक है और अनुभव को ज्ञान में रूपान्तरण करता है। वैक्रिय शरीर बहुमुखी शरीर है जो भौतिक शरीर का आकार और आयाम बदल सकता है और इस प्रकार आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरण करने में समर्थ है। औदारिक शरीर हमारा (मनुष्य, पशु-पक्षी आदि का) भौतिक शरीर है। इस प्रकार संक्षेप में प्रत्येक जीव के पाँच शरीर होते हैं जो सूक्ष्म से स्थूल-क्रम में कर्मण (कारण), तेजस (ऊर्जा), आहारक (चैतन्य), वैक्रिय (बहु-आकारी) और औदारिक (भौतिक शरीर) हैं।

इस अध्याय में हमने जैन दर्शन के मूल तत्त्वों और जीव और पुद्गल के बीच क्रियाओं के कुछ पहलुओं के बारे में चर्चा की। अब अगले अध्यायों में हम ब्रह्माण्ड के आधारभूत स्वभाव की, अनेकान्तवाद और कर्मवाद की व्याख्या करेंगे, जो जीव और पुद्गल के संयोग और वियोग को नियमित करते हैं।

3

अनेकान्तवाद

एक अनेक है और अनेक एक

ब्रह्माण्ड का स्वरूप
सूक्ष्म और स्थूल जगत
स्याद वाद, सप्तभंगी

जैन दर्शन ने प्रकृति के स्वरूप के बारे में एक अनूठी धारणा विकसित की जो किसी अन्य दर्शन में नहीं पाई जाती। यह एक गहन सिद्धान्त है जिसे अनेकान्तवाद कहा गया है। इसके अनुसार प्रकृति बहुआयामी, बहुमुखी, अनन्त अभिव्यक्ति से युक्त है और सभी गुण एक साथ एक काल ही में उपस्थित रहते हैं। प्रत्येक वस्तु जिसके बारे में हम सोचते हैं, देखते हैं या कल्पना करते हैं उस एक ही परम सत्य की अभिव्यक्ति है, और हो सकता है पहली नज़र में कुछ पर्याय परस्पर विरोधाभासी लगें। यह एक वैचारिक मत ही नहीं पर एक भौतिक वास्तविकता है और प्रकृति का एक सत्य और परिपूर्ण चित्रण है। इसकी तुलना में विज्ञान एक आंशिक और अधूरा विवरण देता है, जो इस बात पर निर्भर करता है कि किस वस्तु का कैसे निरीक्षण किया जा रहा है। अनेकान्तवाद का सिद्धान्त दैनिक जीवन की कोई भी स्थिति को व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक स्तर पर समझने में और सामंजस्य स्थापित करने में उपयोगी है। अनेकान्तवाद की प्रशंसा में बहुत कुछ कहा गया है। अनेकान्त को समझना सम्यग्दर्शन के लिये आवश्यक है। समयसार, जो जैनों के पवित्रतम ग्रंथों में एक है, में तो यहाँ तक कहा गया है कि जो अनेकान्त से युक्त है, वह मोक्ष को उपलब्ध होता है।

"इस जगत में प्रत्येक वास्तविक वस्तु का अस्तित्व है और नहीं भी है। वह सत् भी है और असत् भी, एक है और अनेक भी , शाश्वत है और क्षणभंगुर भी, वर्णनीय है और अवर्णनीय भी, अभिलाप्य है और अनाभिलाप्य भी, और उसका स्वरूप, काल, क्षेत्र, द्रव्य और भाव की दृष्टि से न तो ऐसा है, न वैसा है, पर ऐसा और वैसा दोनों हैं।"

इस प्रकार आचार्य अमृतचंद्र ने अनेकान्तवाद की व्याख्या की है। कोई व्यक्ति किसी वस्तु को किसी नय, दृष्टिकोण या परिपेक्ष्य से देखे उसे उसके भिन्न भिन्न रूप दिखाई देंगे। प्रत्येक वस्तु को देखने के कितने ही नय है, जैसे कि नैगम (उपयोग) नय, समग्र (सामान्य) नय, व्यवहार (व्यवहारिक)

नय, रजुष्ट्र (वर्तमान) नय, शब्द (पर्याय) नय, समविरुद्ध (व्युपत्ति) नय, अवम्भूत (समरूप) नय और निश्चय (तत्त्व) नय आदि। जब ये प्रस्तावित नय या दृष्टिकोण तात्विक दृष्टि से कहे जायें (यह ऐसा ही है) और यह दावा किया जाय कि यही सत्य है तो वह भ्रान्ति हो जाता है। इसलिए प्रत्येक नय को आंशिक रूप से ही सत्य माना जाना चाहिये जो कि उसी प्रसंग के संदर्भ में सत्य है।

अनेकान्तवाद के इस सिद्धान्त को बहुपरती, बहुअर्थक, अनिश्चित और सापेक्षवाद के रूप में भी समझा गया है। शतकौड़ी मुखर्जी ने इसको बहुमुखी और बहुपक्षीय माना है जो प्रकृति की बहुरूपी यथार्थता को दर्शाता है। कभी कभी अनेकान्तवाद को एकान्त वाद के विपरीतार्थक भी समझा जाता है क्योंकि एकान्तवाद को निश्चित और निरपेक्ष दृढ दार्शनिक स्थिति का प्रतीक माना गया है। अनेकान्तवाद के अनुसार ऐसा दृष्टिकोण असत्य या केवल आंशिक सत्य हो सकता है। भौतिक जगत में दर्शन शास्त्र की तरह वस्तु या विचार बहुगुणी होते हैं और उसके कुछ गुण विरोधाभासी या विवादास्पद प्रतीत होते हैं। अनेकान्तवाद सभी दृष्टिकोणों में सफलतापूर्वक सामंजस्य स्थापित करता है और भौतिक वास्तविकता का पूर्ण रूप से वर्णन करता है।

इस सिद्धान्त को समझने के लिए हमें क्वांटम मिकेनिक्स का सहारा लेना चाहिए। भौतिक शास्त्र ब्रह्माण्ड को दो भागों में विभक्त करता है : स्थूल और सूक्ष्म (चित्र 7.1)। स्थूल जगत (निहारिका, ग्रह, पत्थर या जो भी दृष्टिगोचर हों) अर्थात् अणु और परमाणु से आकार में बड़ा है, भौतिक विज्ञान के क्लासिकल मिकेनिक्स के नियमों का पालन करता है पर सूक्ष्म जगत अणु, परमाणु, तत्त्वाणु जो दृष्टिगोचर नहीं होते, क्वान्टम भौतिकी के नियमों द्वारा नियंत्रित होते हैं। क्लासिकल और क्वांटम भौतिकी के नियम भिन्न भिन्न हैं। जैन दर्शन और आधुनिक भौतिक विज्ञान के संदर्भ में इनकी चर्चा अध्याय 7 में की जायेगी; यहाँ हम अनेकान्तवाद के वैज्ञानिक विवेचन तक ही सीमित रहते हैं।

हम देखते हैं कि स्थूल पदार्थ में कुछ ही गुण होते हैं। जो भी दिखाई देता है उसमें दो ही भौतिक गुण विद्यमान हैं : भार और आकार। जैसे जैसे हम पदार्थ के सूक्ष्म अवयवों को देखते हैं, जैसे कि फोटोन, प्रोटोन और इलेक्ट्रोन, कई नए गुण उभर कर प्रकट होते हैं जैसे कि विद्युतीय चार्ज, कण-तरंग द्विविधता आदि । कण-तरंग द्विविधता का अर्थ यह है कि हम कह ही नहीं सकते कि प्रकाश के कण (फोटोन) कण हैं या तरंग । इस चर्चा का सार यह है कि जब हम तात्विक कणों से सूक्ष्मतर अवयवों का अध्ययन करते हैं तो नए नए गुणों (क्वान्टम स्टेट्स) की अभिव्यक्ति होती है। यद्यपि ये सब गुण एक साथ मौजूद हैं इन गुणों को एक साथ अनुभव करना कठिन है। यही वास्तविकता का सच्चा स्वरूप है कि सभी गुणों का एक साथ अनुभव या आकलन करना संभव नहीं। जब हम और सूक्ष्मतर कणों को देखते है जैसे कि जैन दर्शन के अनुसार आयाम रहित परमाणु हैं तो उसमें अनन्त गुण हो सकते हैं जो समझ के परे हैं। यह यंत्रों या तकनीकों की सीमित क्षमता के कारण नहीं है, न ही प्रेक्षक की

सीमित चेतना के कारण, पर परमाणु की आन्तरिक प्रकृति ही ऐसी है।

यह सम्भव है कि जैसे अणु के स्तर पर तंरग-कण की द्विविधता अभिव्यक्त होने लगती है, परमाणु के स्तर पर पदार्थ के और नये गुण उभर कर प्रकट होंगे। ऊर्जा के भी कई रूप होते हैं जैसे उष्मता, ध्वनि, प्रकाश, गति, नाभिकीय आदि। इस प्रकार की द्विविधता (कण-तरंग, ऊर्जा-पदार्थ) प्रकृति का वास्तविक स्वभाव है। परन्तु जैनदर्शन चेतना-पदार्थ या मानस-पदार्थ की द्विविधता से सहमत नहीं है। अर्थात ये दो विरोधाभासी गुण एक ही तत्त्व के रूप नहीं हैं। तब फिर पदार्थ क्या है ? तार्किक दृष्टि से पदार्थ प्रकाश का ही गहन रूप है और प्रकाश पदार्थ का उदात्त रूप। प्रकाश ऊर्जा है और ऊर्जा आत्मा का एक गुण है। इसके उपरान्त भी आत्मा और पदार्थ की द्विविधता जैन दर्शन को स्वीकार नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार चेतना और पदार्थ, जीव और अजीव, स्वतंत्र, अनन्य और शाश्वत तत्त्व हैं। प्रकृति के स्वभाव को पूर्ण रूप से समझने के लिये हमें पदार्थ और चेतना की प्रत्येक अभिव्यक्ति को आंशिक सत्य मानकर सभी अभिव्यक्तियों को एक साथ देखना चाहिये।

अब हम पूरक सिद्धान्त (**Principle of Complementarity**), जो आधुनिक विज्ञान की आधार शिला है, और अनेकान्तवाद के बारे में विचार करेंगे। पूरक सिद्धान्त आधुनिक भौतिक शास्त्र का एक *क्रान्तिकारी और महत्तम सिद्धान्त है। नील्स बोह्र को, जिन्होनें क्वांटम फिजिक्स के बुनियादी नियमों* को प्रतिपादित किया, इन नियमों की व्याख्या करने में बड़ी कठिनाई हुई और उन्होंने सूक्ष्म जगत की क्रियाओं को समझने के लिये पूरक सिद्धान्त का सहारा लिया। उदाहरण के तौर पर हम एक फोटोन या इलेक्ट्रोन को लें। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा सकता है कि वे कभी ठोस कण और कभी उस तरंग की भांति व्यवहार करते हैं जो कि किसी तालाब में पानी की लहरों की भांति दिखाई देती है। एक फोटोन या इलेक्ट्रोन यह "जानते" भी हैं कि कब सघन कण और कब तरंग की तरह व्यवहार करना चाहिए। प्रसिद्ध दो दरार वाले प्रयोग में (चित्र 7.2) फोटोन की एक किरण दो दरारों में प्रवेश करती है और दूसरी ओर एक फिल्म पर गिरती है। इस प्रयोग को दो प्रकार से किया जा सकता है, एक तो फोटोन संवेदक प्रत्येक दरार के ठीक पीछे रखकर ताकि फोटोन जब दरार में से पारित हो तो संवेदक से पता चल सके और दूसरा संवेदक हटा कर ताकि फोटोन बिना जानकारी के यात्रा कर सके। जब संवेदक काम में लिए गए तो प्रत्येक दरार से फोटोन के जाने का पता लगा। वास्तव में प्रत्येक फोटोन एक कण की तरह व्यवहार कर रहा था। फिर जब संवेदक हटा दिये गए तो श्वेत-श्याम रेखाओं का क्रम फिल्म पर बना जो प्रकाश के इन्टरफेरेंस से बनता है। यह इस बात का द्योतक था कि प्रकाश तरंग की तरह व्यवहार कर रहा है और प्रत्येक फ़ोटोन फैल कर दोनों दरारों में एक साथ प्रवेश कर रहा है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि इस प्रयोग का परिणाम, वैज्ञानिक (दृष्टा) जो देखना चाहें, सघन कण या तरंग, पर निर्भर करता है।

यह द्विविध व्यवहार विरोधाभासी लगता है और पश्चिमी विचारकों को इसकी व्याख्या करने में बहुत कठिनाई हुई।या तो फोटोन एक कण है या फिर तंरग, वह दोनों नहीं हो सकता। विरोधाभास एक दूसरे का पूरक है और नील्स बोह्र ने यिन और येंग की चीनी धारणा के उदाहरण द्वारा, जो सभी लक्षणों में एक दूसरे के विपरीत, पर सहभागी भी हैं, समझाया कि यह विरोधाभास पूर्णता का लक्षण है।

विरोधाभास से पूर्णता

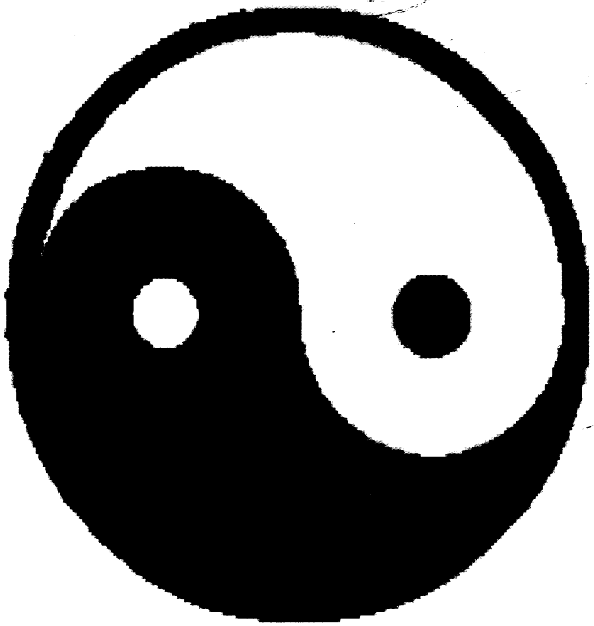

यिन और यांग

चित्र : 3.1 यिन और यांग, दो श्वेत-श्याम पूर्णतः विरोधी गुणों वाली मछलियों का चीनी चित्रांकन जो विरोधाभासी गुणो का पूरक होना दर्शाता है। नील्स बोह्र ने इसी चित्र को क्वान्टम फिजिक्स का प्रतीक अपनाया था जो यह दर्शाता है विरोधाभास ही पूर्णता का द्योतक है।

अनेकान्तवाद पूरक सिद्धान्त से एक कदम और आगे जाता हैं। अनेकान्तवाद बहुमुखी गुणों की ओर संकेत करता है। क्या सूक्ष्म पदार्थ की अभिव्यक्ति द्विविधता (तरंग और कण) तक ही सीमित है या और सूक्ष्मतम तत्त्वों में और गुण अर्थात द्विविधता की जगह विविधता हो सकती है ? जैसा कि हमने पिछले अध्याय में देखा, आत्मा जगत में सूक्ष्मतम (अखण्ड, अभेद) तत्त्व है और जैन दर्शन के अनुसार इसमें अनन्त गुण हैं, जो विविधता का सूचक है।

अनेकान्तवाद न केवल दैनिक जीवन के विरोधाभासी पहलुओं को बल्कि दर्शन, मानसिक, आध्यात्मिक व सूक्ष्म जगत के विरोधाभासी पहलुओं को भी समझने में उपयोगी है और साथ ही अव्यक्त की धारणा - कि कुछ स्थितियां अव्यक्त या अवर्णनीय होती है - भी इस की देन है। विज्ञान इस आधार पर विकसित किया जा रहा है कि सब क्रियायें तर्क संगत हैं और उनकी व्याख्या की जा सकती है। विज्ञान अव्यक्त गुणों या अवर्णनीय तथ्यों पर विश्वास नहीं करता। ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर हाँ या ना में न हों, जैसे क्या आत्मा है ?, अनेकान्तवाद के आधार पर समझे जा सकते हैं ? अनेकान्तवाद एक बहु-दृष्टीय अनुभव का सिद्धान्त भर नहीं है, न यह सीमित चेतना, जिसकी भौतिक जगत की अनुभूति की क्षमता सीमित हैं, का सिद्धान्त है पर वह प्रकृति के वास्तविक स्वरूप को प्रतिपादित करता है। अर्थात् यह किसी विषय वस्तु का भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्या नहीं करता पर यह दावा करता है कि किसी पदार्थ को एक साथ सभी दृष्टिकोणों से जाना ही नहीं जा सकता।

स्यादवाद, अनेकान्तवाद का एक परिणाम है और जैन दर्शन की आधारशिला है। स्यादवाद की यह धारणा है कि सभी उत्तर स्थिति के संदर्भ में ही सही हैं और हम सत्य के करीब जब होते हैं जब कहते हैं कि यह भी सच है न कि यही सच है। जब हम कहें कि यही सच है तो यह कथन मिथ्या हो जाता है। यह अनिश्चितता वस्तु का मूल स्वभाव है। इसका अर्थ संशय नहीं पर यही सत्य, निर्विवाद और पूर्ण वर्णन है।

सप्तभंगी या सात परिपेक्षवाद भी स्यादवाद का एक अंग है। कोई भी वस्तु का सात प्रकार से वर्णन किया जा सकता है। वह वस्तु है, नहीं है, है फिर भी नहीं है, अवर्णनीय है, इसका अस्तित्त्व अवर्णनीय है, या अनिर्धार्य है, इसका अनस्तित्व अनिर्धार्य है, इसका अस्तित्व और अनस्तित्व अनिर्धार्य है। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु की यह सात संभावनाएं हैं। यह धारणाएं क्वांटम व्यवहार से सहमत हैं जिनका सदैव भाषा में निरूपण नहीं किया जा सकता। यह स्पष्टीकरण डॉ. दौलतसिंह कोठारी ने अपने निबंध "पूरक सिद्धान्त और पूर्वी दर्शन" में किया है, जिसका पहले उल्लेख किया जा चुका है।

संक्षेप में अनेकान्तवाद कहता है कि कोई भी धारणा सही भी है और गलत भी। इसकी हम बृहदारण्यक उपनिषद के "नेति" की धारणा से तुलना करें। जब पूछा गया कि ईश्वर क्या है ? उपनिषद ने, प्रत्येक वस्तु, जिसकी कल्पना की जा सकती हो, की तरफ इशारा कर के "ईश्वर, यह भी नहीं है,

और वह भी नहीं है, न यह है न वह, नेति, नेति"। अर्थात कोई बोधगम्य वस्तु ईश्वर नहीं है। इसकी तुलना में अनेकान्तवाद कहता है यह भी सत्य है, वह भी सत्य है पर सब आंशिक रूप से सत्य है।

पूर्वी दर्शन में तीन भिन्न भिन्न मत प्रतिपादिक किये गए हैं। अद्वैतवाद, द्वैतवाद (द्वन्द्व) और अनेकान्तवाद (अनन्त सम्भावनाएं) । ब्रह्माण्ड में अनन्त प्रकार की वस्तुएं हैं। अद्वैतवाद की धारणा है कि जो भी है वह सब एक से उत्पन्न हुए हैं। सभी उस परम एक की ही अभिव्यक्ति है। यदि प्रारंभ में केवल एक था तो तर्कानुसार उससे अनेक उत्पन्न नहीं हो सकते क्योंकि भौतिक विज्ञान के नियमों के अनुसार कुछ भी अकारण या अपने आप नहीं होता। बिना किसी कारण के एक सदैव वैसा ही रहेगा। एक से कुछ होने के लिए कुछ बाहरी कारण की आवश्यकता है। उस एक के अलावा बाहर किसी कारण का होना, अर्थात् कम से कम दो का होना अनिवार्य है। इस प्रकार कार्य-कारण सिद्धान्त के अनुसार अनेक को उत्पन्न करने के लिए दो का होना आवश्यक है। एक से अनेक की उत्पत्ति कार्य-कारण सिद्धान्त का उल्लंघन करता है। यह कथन अद्वैत वाद का खण्डन करता है और द्वैतवाद की ओर इशारा करता है। द्वैतवाद का मत है कि ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुओं का पुरुष और प्रकृति दोनों की प्रतिक्रिया से उद्भव हुआ है। अनेकान्तवाद उससे एक कदम आगे जाता है। उसके अनुसार एक के अनन्त गुण हैं अतः एक और अनेक एक ही हैं। इस प्रकार अनेकान्तवाद ने अद्वैतवाद और द्वैतवाद का संश्लेषण किया है।

अनेकान्तवाद वास्तव में अनन्तवाद है और अनन्त सम्भावनाओं का सिद्धान्त है। इस प्रकार अनेकान्तवाद एक मध्यमार्ग या समझौते का सिद्धान्त नहीं है पर वह प्रकृति का सच्चा चित्रण करता है और प्रकृति के परम तत्त्वों को जानने के लिए आवश्यक हैं। भौतिक जगत के सूक्ष्म कणों के गुणों के सम्बंध में हम इसकी अध्याय 7 में विस्तार से चर्चा करेंगे।

4

कर्मवाद

जो कर्मवाद में विश्वास करता है
वह न तो कभी गलत काम करता है
और न कभी दुःखी होता है।

कर्म के प्रकार
कर्म का उन्मूलन
आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष

ब्रह्माण्ड में होने वाली सभी क्रियायें कार्य-कारण के नियम का पालन करती हैं। ऐसा कोई भी कर्म नहीं जिसका कुछ न कुछ प्रभाव न होता हो और ऐसी कोई क्रिया नहीं जो बिना कर्म के उत्पन्न होती हो। अर्थात् प्रत्येक कर्म का प्रभाव होता ही है। यह कार्य-कारण का सिद्धान्त चैतन्य जीवों पर भी लागू होता है और जैन दर्शन में कर्मवाद के नाम से जाना जाता है। जीवन के अनुभव में ऐसा प्रतीत हो सकता है कि कर्म और भाग्य का कोई सम्बंध नहीं है, फिर भी जैन दर्शन भाग्य में विश्वास नहीं करता और मानता है कि प्रत्येक भौतिक कर्म का भौतिक और मानसिक प्रभाव पड़ता है और प्रत्येक मानसिक विचार का मन और शरीर पर प्रभाव पड़ता है। भौतिक और मानसिक कर्म (भाव) दोनों ही आत्मा पर प्रभाव डालते हैं पर भाव का आत्मा पर प्रभाव प्रबल है। प्रत्येक कर्म और भाव आत्मा के बंध का कारण है। एक व्यक्ति किसी भी कार्य को करने में स्वतंत्र है पर उसके परिणाम को भोगने में उसको कोई विकल्प उपलब्ध नहीं है, क्योंकि वह कर्म के नियम से बंधा है और उस नियम का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। अभी जो हम हैं वह हमारे सभी कर्मों (पिछले जन्मों के संचित कर्म और वर्तमान जीवन के अर्जित कर्म) का फल है और इसी प्रकार जो हम भविष्य में होंगे वह हमारे वर्तमान जन्म तक के कर्मों के द्वारा निर्धारित होगा। पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कार्यो से कर्म बन्धन होता है। पाप और पुण्य एक दूसरे को रद्द नहीं कर सकते अर्थात पुण्य पाप को नहीं काट सकता और न ही पाप पुण्य कर्म को काट सकता है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक पुण्य और पाप कर्मों का फल अलग अलग भुगतना पड़ता है। अर्थात् जब अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्मों के सब फल नष्ट हो जाते हैं, तब मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसी धारणा है कि कुछ कर्मों के फल कुछ क्रियाओं द्वारा हल्के किये जा सकते

हैं और उनकी तीव्रता कम या स्थगित की जा सकती है पर यह धारणा मिथ्या है और कार्य-कारण के सिद्धान्त के विरुद्ध है। हमारे विचार में सभी कर्म ऐसे हैं जिनके परिणाम पूर्णतया भुगतने पड़ते हैं। दोनों प्रकार के कर्म बंध (द्रव्य और भाव कर्म, पाप और पुण्य) का पूर्ण क्षय ही आत्मा का लक्ष्य है। प्रत्येक जीव को देर सवेर अपने कर्म का फल भोगना अनिवार्य है। यही धारणा प्रत्येक व्यक्ति को गलत काम करने से रोकती है और यह धारणा कि बुरा समय उसी के द्वारा किये गये पिछले कर्मों का फल है जिनको टाला या मिटाया नहीं जा सकता, प्रत्येक व्यक्ति को बिना दुख के उसका सामना करने की शक्ति देता है। वर्तमान जीवन में कर्म और उनके फल के बीच तात्कालिक सम्बंध का प्रत्यक्ष अभाव, आत्मा की शाश्वतता, पुनर्जन्म और उन कर्मों का उपयुक्त समय पर फलीभूत होने की सम्भावना द्वारा समझा सकता है।

आत्मा का गुणस्थान जीव के संचित कर्म के आधार पर ही निर्भर रहता है। आत्मा पिछले कर्मों के अनुसार ही उपयुक्त जन्म लेती है। मृत्यु के समय आत्मा शरीर छोड़ देती है और साथ ही सभी भौतिक विषय भोग की वस्तुएं पर अपने अतीत और वर्तमान कर्म साथ ले जाती है।

इस संसार में कोई भी बिना क्रिया के नहीं रह सकता और हर समय कुछ न कुछ कार्य करना ही पड़ता है। इसलिए बिना कर्म बंध किये कार्य करना ही मुक्ति का साधन है। इसका अर्थ यह नहीं कि बिना कार्य किये रहें पर किस प्रकार कार्य करें कि कोई कर्म बंध न हो। इसलिए बिना राग, लगाव, आशा के और केवल मोक्ष प्राप्ति की आकांक्षा से कार्य करना चाहिये। इस उद्देश्य की प्राप्ति संवर (नये कर्मों का बंध रोकना) और निर्जरा (पुराने कर्मों का क्षय) द्वारा किया जा सकता है।

प्रत्येक कर्म का प्रभाव भौतिक, मानसिक और चैतन्य स्तर पर होता है और वह आत्मा को बांध लेता है। इस प्रकार कर्म संचित होते रहते हैं। हैरानी की बात है कि कर्म तत्क्षण फलीभूत नहीं होते पर कुछ अवधि तक, उदय होने से पहले, सुषुप्त अवस्था में रहते हैं। यही कारण है कि कई लोगों के भाग्य और इस जीवन के कर्म या प्रयास जाहिरा तौर पर असम्बंधित नज़र आते हैं।

कर्म अनगिनत प्रकार के होते हैं पर वे कुछ वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं जो मुख्यतः आठ हैं। इन में से चार घाति कर्म हैं और चार अघाति कर्म । आत्मा जन्म के समय इन आठों कर्मों से युक्त होती है। घाति कर्म आत्मा की शुद्धता को प्रभावित करते हैं और अघाति कर्म जीव के सांसारिक लक्षण और भौतिक परिवेश को निर्धारित करते हैं। ये कर्म संचित और अर्जित कोषों में इकट्ठे होते रहते हैं। संचित कर्म अतीत जन्मों में संचय किये गये हैं और अर्जित कर्म इस जीवन के कार्यों पर आधारित हैं। जब उपयुक्त समय आता है तब कर्म फलों का उदय होता है और तब तक कर्म निष्क्रिय या सुषुप्त अवस्था में रहते हैं पर इस बीच उनका अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता। कर्मों का तात्कालिक फल क्यों नहीं मिलता ? वे क्यों भिन्न भिन्न अवधि के लिए सुषुप्त रहते हैं ? इसके दो मुख्य कारण हैं।

पहला तो यह कि कर्म का फल समुचित मात्रा में ही मिल सकता है न कि कुछ कम या अधिक मात्रा में। दूसरा कारण यह है कि कर्म और उसका फल दोनों ही अन्य प्राणियों से जुड़े हैं, केवल एक ही प्राणी पर निर्भर नहीं करते। उचित परिस्थितियाँ और उपयुक्त दशाओं के उत्पन्न होने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब नाम कर्म और गोत्र कर्म के अनुरूप जन्म मिले जिसमें सही मात्रा में, परिशुद्धता से कर्मों के अनुरूप फल मिल सके। अनगिनत संयोगो के मेल से ही ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं, जब ऐसे कर्मो का उदय हो जो जीव के संचित कर्मो से संगत रखते हों और कर्ता उनको उचित मात्रा में भोग सके। कर्म विज्ञान एक मात्रात्मक और सांख्यिकीय विज्ञान है, इसलिए कर्म का उदय उपयुक्त संयोग होने पर ही होता है। कभी कभी ऐसी परिस्थितियाँ तत्काल उपलब्ध हो जाती हैं और परिणाम शीघ्र या इसी जन्म में मिल जाते हैं जबकि कई बार उपयुक्त परिस्थितियों के अस्तित्व में आने में समय लग सकता है और कर्मफल पाने में देर लग जाती है।

कर्मों के विभिन्न प्रकार निम्न लिखित हैं।

1. ज्ञानावरणीय कर्म: ज्ञानावरणीय सबसे हानिकारक कर्म है, जिससे बुद्धि दूषित हो जाती है और सत्य ज्ञान में, जो मोक्ष प्राप्ति का साधन है, बाधा पहुँचती है। एक बार यदि किसी को विश्वास हो जाय कि जीवन का ध्येय मोक्ष की प्राप्ति है, सत्य की खोज ही उसका एक मात्र साधन है और सभी आत्माएं एक दूसरे से गुंथी हुई है तब वह व्यक्ति विचार, भाषा और कर्म में अहिंसा का मार्ग अपनाता है। सम्पूर्ण रूप से ऐसा करने से उसे मनःपर्याय या केवलज्ञान की उपलब्धि होती है। केवलज्ञान सर्वज्ञता और असीमित ज्ञान है जिससे उसे सब वस्तुओं और उनके पर्यायों का, सब कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) में, इन्द्रियातीत रूप से, न कि इन्द्रियों द्वारा, ज्ञान होता है।

2. दर्शनावरणीय कर्म : यह इन्द्रियों और मन द्वारा या इन्द्रियातीत अनुभव द्वारा सत्य प्रतीति या सत्य धारणा की साधना में बाधक होता है। एक बार किसी को आत्मा के अस्तित्व का अनुभव हो जाता है, छः शाश्वत सत्यों (अध्याय 2) में और कर्म के नियमों में पूर्ण विश्वास हो जाता है तो यह भ्रान्ति समाप्त हो जाती है और वह सम्यक दर्शन को उपलब्ध हो जाता है। अनेकान्तवाद (अध्याय 3) का अनुभव सम्यकदर्शन प्राप्ति के किये अनिवार्य है।

3. वेदनीय कर्म : यह दुख और सुख सहने की शक्ति का निर्धारण करता है। जब कोई भी व्यक्ति किसी भी सांसारिक परिस्थिति या घटना में, मन को शान्त और अनासक्त रखने में सक्षम हो जाता है अर्थात स्थितिप्रज्ञ की अवस्था में रहता है तो वेदनीय कर्म का नाश हो जाता है।

4. मोहनीय कर्म : यह कर्म बंध माया (मोह), क्रोध, मद (अहंकार) और लोभ (परिग्रह) के द्वारा सांसारिक विषय भोगों में आसक्ति के कारण उत्पन्न होता है। इसे चारित्रावरणीय कर्म कहा जा सकता है जो उचित चारित्र या आचरण के पालने में बाधक है। जब कोई सम्पूर्ण रूप से अनासक्त हो

जाता है, और सब जीवों को, उनका दोष कुछ भी हो, पूर्ण रूप से क्षमा करने के पथ पर चलता है, तो मोहनीय कर्म नष्ट हो जाता है। व्यवहार में माया, क्रोध, मद और लोभ पूरी तरह नहीं छूट पाते क्योंकि मन खाली नहीं बैठ सकता और इन्हीं का चिंतन करने में रत रहता है इसलिये इन चारों आसक्तियों के स्थान में क्रमशः क्षमा, सरलता, विनय और संतोष का पालन करना चाहिये। जब यह स्थिति सिद्ध हो जाती है, आत्मा वासना, अनुराग, आवेग और मनोविकार से मुक्त हो जाती है और मोहनीय कर्म विलुप्त हो जाता है।

5. आयुष्कर्म : यह पुनर्जन्म (अगले जन्म में) जीवन की अवधि को निर्धारित करता है।

6. नामकर्म : यह शारीरिक लक्षण, स्वास्थ्य और व्यक्तिगत गुण निर्धारित करता है।

7. गोत्रकर्म : यह पुनर्जन्म के पारिवारिक और सामाजिक स्तर का निर्धारण करता है।

8. अन्तरायकर्म : यह जीवन में ध्येय प्राप्ति में आने वाली बाधाओं को निर्धारित करता है। यदि किसी ने दूसरों की राह में अकारण या अनुचित या क्षणिक सुख के लिये बाधा पहुँचायी हो और रोड़े अटकाये हों तो सब सुविधाएं होने के उपरान्त भी वह उन्हें भोग नहीं सकता और उसकी राह में अनायास ही बाधाएं या अशान्ति उत्पन्न हो जाती है।

उपरोक्त घाति और अघाति कर्मों का कई वर्गों में विभाजन किया गया है, जिनकी हम यहाँ चर्चा नहीं करेंगे। इतना कहना ही काफी होगा कि प्रत्येक कर्म के निवारण के लिए पद्धतियाँ है, जिनका वर्णन छठे अध्याय में किया जायेगा। प्रत्येक कर्म तीन प्रकार से अर्थात क्रिया द्वारा, भाव द्वारा, किसी और से करवाने से या उसका अनुमोदन करने से उपार्जित होता है, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को न केवल अनुपयुक्त कार्य करने से बचना चाहिये और ऐसा भाव भी मन में नहीं लाना चाहिये बल्कि दूसरों द्वारा ऐसा कार्य करने का अनुमोदन भी नहीं करना चाहिये।

कर्म आत्मा से बंध कर उसको अशुद्ध कर देते हैं। ये भौतिक कर्माणु किस प्रकार अभौतिक चैतन्य आत्मा से संलग्न होते हैं ? कुछ आचार्यों, जैसे कि आचार्य अभयदेव सूरि के अनुसार, कर्माणु लेश्या के द्वारा आत्मा से जकड़ जाते हैं। लेश्या एक प्रकार का मानसिक रंग है जो छह प्रकार की होती हैं। कृष्ण (काली), नीली, कपोत (भूरी), तेजस (लाल), पद्म (पीली) और शुक्ल (सफेद) जो क्रमशः पाप से पुण्य कर्म की द्योतक है। शुक्ल लेश्या पुण्य का उच्चतम स्तर है। कर्म, ज्ञान और गुणस्थान का अन्तरंग सम्बध है। जैसे जैसे बुरे कर्मों का ह्रास होता है, आत्मा शुद्ध होकर उच्चतर आध्यात्मिक स्तर पर पहुँचती है और उसे उच्चतर ज्ञान की उपलब्धि होती है। हम इसकी चर्चा अगले अध्याय में करेंगे।

5

सर्वज्ञता की चौदह सीढ़ियां : आत्मा का आध्यात्मिक स्तर

आत्मा को आत्मा से देखो

आत्मा का आध्यात्मिक स्तर

गुणस्थान, कर्म और ज्ञान का सम्बंध

मोक्ष की यात्रा तत्कालीन वर्तमान स्थिति से आरम्भ होकर सिद्धत्व तक जाती है। इस यात्रा के चौदह पड़ाव हैं जिन्हें गुणस्थान कहा गया है। यह चेतना की प्रगति के चौदह स्तर सीढ़ी के पायदान की तरह हैं या फिर इनकी तुलना क्वान्टम फिजिक्स द्वारा निर्धारित सूक्ष्म ऐलीमेंटरी पार्टिकल्स (तात्त्विक कणों) के ऊर्जा स्तरों से की जा सकती है। कुछ स्तरों से कुछ अन्य उच्च या निम्न स्तरों पर परिवर्तन सम्भव है और कुछ परिवर्तन निषिद्ध हैं। उर्ध्व गति आत्मा की शुद्धिकरण की राह पर चलने से होती है और अधोगति कर्म बन्ध से, जिसका वर्णन अध्याय छः में किया जायेंगा। अन्तिम लक्ष्य केवलज्ञान (स्तर 13) प्राप्त करना है जिसके उपरान्त वह आत्मा सिद्ध (स्तर 14) बन जाती है। प्रत्येक स्तर को एक नाम दिया गया है जो उसकी गुणवत्ता का द्योतक और इन सब का विस्तार से वर्णन कई कर्मग्रंथों में मिलता है।

इन गुणस्थानों का वर्णन करने से पहले यह उपयुक्त होगा कि हम इस प्रगतिपथ के कुछ विशिष्ट चिन्हों की चर्चा करें, विशेषकर स्तर 2, 4, 7 और 13 या 14 की जो अन्तिम लक्ष्य है। संक्षेप में इस सीढ़ी का निम्नतम स्तर, मिथ्यात्व (स्तर 1) है जब जीव की अपने बारे में अवधारणा ही सत्य सम्मत नहीं होती और वह पूर्णतया भ्रान्त स्थिति में होता है। वह व्यक्ति जो शाश्वत सत्यों में (आत्मा के अस्तित्व और उसके शुद्धिकरण में, जिनका वर्णन अध्याय 2 में किया गया है) विश्वास नहीं करता, भ्रान्त स्थिति (स्तर 1) में होता है और जब तक वह सत्य परिपेक्ष्य प्राप्त नहीं कर लेता तब तक उसके लिए आशा की कोई सम्भावना नहीं है। उच्चतर स्तरों की ओर प्रगति उन भ्रान्तियों या कर्मों के उन्मूलन पर निर्भर करती है, जिनका अध्याय 4 में वर्णन किया गया है। एक मुमुक्ष (स्तर 2) करुणा, शान्ति, धैर्य, क्षमा, सत्य, त्याग और अनासक्ति के गुणों का अनुसरण करने का प्रयास करता है

जिसका उसे ज्ञान तो है पर जिनको क्रियान्वित करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। भ्रान्त धारणा का उन्मूलन स्तर 4 पर होता है जब एक व्यक्ति को सम्यक्त्व की अनुभूति होती है। जब आकांक्षी भाव और क्रिया (ज्ञान और चारित्र) में प्रगति करता है तो उसकी धारणा स्पष्ट हो जाती है और उसकी आचरण सम्बंधी भ्रान्तियाँ दूर होती जाती है। स्तर 7 तक पहुँचते पहुँचते ये भ्रान्तियां अति क्षीण हो जाती हैं। अन्ततः जब उनके लक्षण भी विलीन हो जाते हैं तब आकांक्षी आठवें स्तर पर पहुँच जाता है। इसके उपरान्त भ्रान्तियों का उन्मूलन तीव्र गति से होता है। जब चारित्रवर्णीय कर्म पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं तो साधक बारहवें स्तर पर पहुँच जाता है। फिर बाकी के कर्मबंध लक्षण नष्ट हो जाते हैं और साधक सर्वज्ञता को उपलब्ध हो जाता है जिसे तेरहवां स्तर माना गया है। इस स्तर पर साधक अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त सुख में लीन हो जाता है। जब सब भ्रान्तिया और कर्मों का पूरी तरह विनाश हो जाता है तब स्वतः ही सिद्धत्व की प्राप्ति होती है। इसका तात्पर्य उसके अशरीरी होने से नहीं है पर इस स्थिति में वह भौतिक जगत से बेख़बर हो जाता है और उत्कृष्ट स्थिति में रहता है। ऐसे सर्वज्ञ का जब वर्तमान जीवन समाप्त होता है और वह शरीर छोड़ता है तब वह मूल आत्मा अर्थात सिद्ध हो जाता है।

इनमें से कई स्थितियों में जीव का उर्ध्वगमन या अधोगमन दोनों ही सम्भव हैं जो उसके कर्मबन्ध पर निर्भर करता है। जीव के लिए सबसे स्थायी स्थिति उच्चतम ऊर्जा की है जिससे वह फिर निम्न स्तरों पर गमन नहीं कर सकता । इसकी तुलना में भौतिक जगत में स्थिति बिलकुल विपरीत है जहाँ पर निम्नतम ऊर्जा की स्थिति (**ground state**) ही परम स्थायी होती है (अध्याय 7)।

अब हम इन चौदह गुणस्थानों का कुछ विस्तार से वर्णन करेंगे । संक्षेप में मोक्ष यात्रा सम्यक दर्शन (छः शाश्वत सत्यों में पूर्ण विश्वास) से आरम्भ होती है और सम्यक चारित्र, भावों की शुद्धता, कर्म बन्ध का विनाश और स्थूल और सूक्ष्म आसक्तियों के उन्मूलन के पथ के चौदह पड़ावों से गुजरती है।

1. मिथ्यात्व :

मिथ्यात्व का अर्थ जगत की मिथ्या दृष्टि या मिथ्या अनुभूति होना है और सम्यक दृष्टि का अर्थ है छः शाश्वत सत्यों में अर्थात आत्मा के अस्तित्त्व और मोक्ष के मार्गों (जिनका अध्याय 2 में उल्लेख किया गया है) में पूर्ण विश्वास। मिथ्या निष्ठा वाला व्यक्ति स्तर 1 पर होता है और उसको आत्म धर्म में कोई रुचि नहीं होती क्योंकि उसे सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र का पता ही नहीं है और उनमें श्रद्धा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसीलिए ऐसे व्यक्ति की मुक्ति की कोई आशा नहीं होती।

मिथ्या दृष्टि या तो पिछले जन्मों की विरासत में प्राप्त होती है या अपनाई जाती है। आत्मा और

भौतिक शरीर या सांसारिक वस्तुओं के साथ एकात्मता अर्थात उनको एक ही जानने को विरासती मिथ्या दृष्टि कहते हैं। ऐसी निष्ठा से व्यक्ति सांसारिक विषयों में लिप्त रहता है और तत्त्व स्वरूप को नहीं जान पाता, जिससे अपनाई हुई मिथ्या दृष्टि की उत्पत्ति होती है।

2. ससादन सम्यकत्व (सम्यक दर्शन)

सत्यनिष्ठ व्यक्ति शाश्वत सत्यों में विश्वास करता है और स्तर 2 में स्थित होता है। यह प्रबुद्धता की यात्रा का प्रथम चरण है। उच्चतर स्तर उपलब्ध होने के पश्चात, जैसे कि स्तर 4 पर भी कभी कभी, थोड़े समय के लिए ही सही, अनन्तानुबंधी कर्म के कारण शाश्वत सत्यों में संशय उत्पन्न हो जाता है जिसे असादन कहते हैं। तब व्यक्ति स्तर 2 तक गिर जाता है। वहाँ से यदि संशय प्रबल हो जाय तो वह स्तर 1 तक गिर सकता है या अभ्यास करने से स्तर 3 पर भी जा सकता है।

3. मिश्र (अस्थाई स्थिति)

यह एक भ्रमित अवस्था है। मन सत्य और मिथ्या निष्ठा के बीच डांवाडोल होता रहता है। सम्यकदृष्टि प्राप्त होने पर भी, कभी कभी, वह शाश्वत सत्यों की सच्चाई के बारे में संशय करता है या दुविधा में रहता है, जिससे सम्यक मिथ्यात्व प्रकृति फलीभूत होती है। यह इस गुणस्थान के लक्षण है।

इस गुणस्थान से व्यक्ति सीधे उच्चतर गुणस्थान, जैसे कि देशविरत (गुणस्थान 5) या अप्रमत्त संयत (गुणस्थान 7) पर नहीं जा सकता।

4. अविरत सम्यकदृष्टि (सत्यनिष्ठ पर दुर्बल आचरण)

आत्मा की वह स्थिति जब व्यक्ति पूर्णतः सत्य निष्ठ (छः शाश्वत सत्यों में दृढ विश्वासी) होने पर भी आचरण के नियमों का अर्थात अणुव्रत और महाव्रत का कठोरता से पालन नहीं करता, चौथा स्तर अविरत सम्यकत्व कहलाता है। वह व्यक्ति आत्मा के सच्चे स्वरूप को जान कर, सम्यकदृष्टि प्राप्त कर, यथाशक्ति सम्यक चारित्र का पालन करता है और आत्मिक अनुभव से इस चौथी अवस्था को प्राप्त करता है। वह अनुभव करता है कि वह चैतन्य स्वरूप श्रेष्ट जीव और ज्ञाता है और शेष ब्रह्माण्ड ज्ञेय है और अजीव संसार से, जैसे उसके शरीर से, उसका कोई नाता नहीं है। आत्मा की सांसारिक अभिव्यक्तियाँ उस का तत्त्व स्वरूप नहीं है। सम्यक दृष्टि द्वारा आत्मा का सच्चा स्वरूप जानते ही उसकी सांसारिक अभिव्यक्तियाँ विलीन हो जाती हैं। सम्यक दर्शन से अनन्तानुबंधी मनोविकार विलीन होते ही वह परम आनन्द और अनासक्त स्थिति में पहुँच जाता है और आत्मा शुद्ध स्वरूप को प्राप्त होती है।

इस स्थिति में कर्मों के उदय होने पर आत्मा की तीन अवस्थाएँ हो सकती हैं (i) औपशमिक,

जहाँ आसक्तियाँ होती तो हैं पर वे दबा दी जाती हैं और सुषुप्तावस्था में रहती हैं। (ii) क्षयोपशामिक, जहाँ आसक्तियों के उदय होते ही उनका उन्मूलन कर दिया जाता है और (iii) क्षयिक जब आसक्तियां पूर्ण रूप से विलीन हो जाती हैं। इन में से किसी भी अवस्था में वह व्यक्ति सांसारिक राग-विषयों से विरक्त हो जाता है यद्यपि वह पूर्णतया अहिंसा पालन नहीं कर पाता अर्थात गतिशील या स्थावर जीवों को हानि पहुँचाने से नहीं बच पाता। वह (बारह प्रकार के) संयम का पालन नहीं कर पाता। जब तक अप्रत्याख्यानवरणीय कर्मों के उदय से वह असंयमी रहता है और मोह, मद, लोभ और छल-कपट को छोड़ नहीं सकता, वह चौथे गुणस्थान में रहता है।

5. देशविरत (आंशिक अहिंसा पालन)

वह साधक जो आत्मा की शुद्धि के लिए गतिमान जीवों की हिंसा से बचता है पर स्थावर जीवों (वनस्पति आदि) को क्षति पहुँचाने से नहीं बच पाता, पाँचवे गुणस्थान को उपलब्ध होता है। जैसे जैसे अप्रत्याख्यानवरणीय कर्म विलीन होते हैं, आत्मा के सच्चे स्वरूप के अनुभव की पुनरावृत्ति चौथे गुणस्थान की तुलना में अधिक होती है। इस गुण स्थान में आत्मा गहन शान्ति का अनुभव करती है और वह व्यक्ति सांसारिक विषय वस्तु के प्रति विरक्त हो जाता है और देश विरत गुणस्थान को उपलब्ध होता है। इसे व्रतविरत या संयत-संयत गुणस्थान भी कहते हैं, क्योंकि वह व्यक्ति आन्तरिक रूपसे पूर्ण संयम बरतता है और सभी अणुव्रतों का पालन करता है।

6. प्रमत्त संयत (सम्यक चारित्र)

साधक बारह कर्मों का उन्मूलन करके सम्यक चारित्र को उपलब्ध होता है तब वह प्रमत्त संयत या सर्व विरत नामक छट्ठे गुणस्थान पर पहुँच जाता है। फिर भी इस गुणस्थान में संज्वलन मनोविकार रहता है और व्यक्ति बिना विचारे व्यवहार करता है।

इस गुणस्थान में वह व्यक्ति साधु-चर्या का और उसके 28 प्रमुख नियमों और उनसे सम्बंधित सभी उपनियमों का पालन करता है। इन नियमों में पाँच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य), पांच समितियाँ, (इषा, भाषा, ऐषणा, आदान-निक्षेप, परिष्ठापनिका), छह आवश्यक (सामायिक, चतुर्विशंती स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान), पाँचों इन्द्रियों पर नियंत्रण, स्नान न करना, केशलोचन, धरतीपर सोना, आदि शामिल है। इस अवस्था में यद्यपि आत्मा की आन्तरिक शुद्धता होती है, कुछ आसक्तियाँ किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती हैं।

कोई भी व्यक्ति कई प्रकार के मूर्खता पूर्ण आचरण कर सकता है। शास्त्रों में ऐसे 80 व्यवहारों का वर्णन मिलता है जिनमें 15 प्रमुखः नारी, भोजन, राष्ट्र, गुरू की, क्रोध, मद, छल और लोभ की, पाँच इन्द्रियों की, निद्रा और प्रेम प्रसंगों की चर्चा और उनमें रस लेना है। यद्यपि इस प्रकार के आचरण

से आत्मा दूषित होती है पर फिर भी वह छट्ठे गुणस्थान की प्राप्ति के लिए आवश्यक संयम को नष्ट नहीं करती। भावों की प्रक्रिया और शुद्धिकरण छट्ठे गुणस्थान के लिए आवश्यक है जब कि सातवें गुणस्थान को निर्विचार भाव से ही प्राप्त किया जा सकता है। जब निष्क्रियता साधक पर हावी हो जाती है तब वह छट्ठे गुणस्थान में चला जाता है और जब भी साधक को इसका ध्यान आता है और वह निष्क्रियता को नियंत्रित करता है, सातवें गुणस्थान में पहुँच जाता है। इस प्रकार साधक छट्ठे और सातवें गुण स्थान के बीच लम्बे समय तक विचरता रहता है। एक ध्यान में लेने योग्य बात यह है कि साधक पहले सातवें गुणस्थान का अनुभव करता है चाहे फिर वह छठे गुणस्थान पर चला जाये।

7. अप्रमत्त संयत : (सम्यक चारित्र और क्षीण कशाय)

पंदरह अवांछित आचरण (जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है) का त्याग कर सच्चा साधक सातवें गुणस्थान में प्रवेश कर जाता है। बारह आसक्तियां अति क्षीण हो जाती हैं पर संज्वलन कशाय क्षीण होते हुए भी इसकी प्रगति में बाधा डालता रहता है। यह अवांछनीय है पर यह व्यवहार आत्मा को अशुद्ध नहीं करता और आचरण के प्रमुख नियमों का पालन करते हुए वह इस अप्रमत्त संयत गुणस्थान पर पहुँच जाता है। परमशुद्ध आत्मा के ध्यान और अनुभव के अतिरिक्त उसे कोई और विचार नहीं आता और वह निर्विचार हो जाता है। यह स्थिति आगे के सभी गुणस्थानों में जारी रहती है। इस गुणस्थान में दो स्थितियां है (1) स्वस्थान अप्रमत्त संयम और अतिशय अप्रमत्त संयत।

इस गुणस्थान में जो साधक क्षपक श्रेणी या उपशम श्रेणी में नहीं पहुँच पाते, प्रमत्त और अप्रमत्त स्थिति के बीच विचरते रहते हैं और उन्हें स्वस्थान अप्रमत्त संयत कहते हैं। जो साधक आत्मा से एकात्मता विकसित कर उसका शुद्धिकरण कर लेते हैं, वे अतिशय अप्रमत्त संयत कहलाते हैं। वे आध्यात्मिक बल द्वारा आत्मा के साथ पूर्ण एकात्मता विकसित कर लेते हैं, और चारित्र मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। जैसे जैसे चारित्र मोहनीय कर्म की प्रकृतियां क्षीण होती हैं, वे आठवें, नवमें, दसमें और ग्यारहवें गुणस्थान को उपलब्ध हो जाते हैं और यदि चारित्रमोहनीय कर्म पूर्णतया नष्ट हो जाता है तो तेरहवें गुणस्थान अर्थात सर्वज्ञता को उपलब्ध हो जाते हैं।

8. अपूर्वकरण (भाव शुद्धि)

आत्मा के इस आठवें गुणस्थान में अभूतपूर्व पवित्रता होती है और वह निरंतर रहती है। विभिन्न आत्माएं इस गुणस्थान में भिन्न भिन्न प्रकार से रूपांतरित होती हैं जो उनके स्वरूप पर निर्भर करता है। आत्माएं जो उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी पर जाती हैं, उनका रूपान्तरण एक ही प्रकार का होता है।

9. अनिवृत्तिकरण (स्थूल आसक्तियों और कर्मबन्ध का नाश)

आत्मा अनन्त शुद्धि प्राप्त करने के लिए रूपान्तरित होती है पर प्रत्येक आत्मा के संशोधन का परिमाण अलग अलग होता है। इस गुणस्थान पर ध्यान की शक्ति मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों और नामकर्म की तेरह प्रकृतियों को क्षीण कर देती है। विभिन्न आत्माएं फिर निम्नतर गुणस्थान पर नहीं जाती और पुनर्जन्म के लिए और कर्माणुओं को आकर्षित नहीं करती।

10. सूक्ष्म सम्प्राय (सूक्ष्म आसक्तियों के साथ शुद्धावस्था)

इतनी शुद्धता के उपरान्त भी, जाने या अनजाने में, कुछ लोभ रह ही जाता है। मोक्ष प्राप्ति का मोह छोड़ना अत्यन्त कठिन है क्योंकि वास्तव में वही इस सम्बोधि यात्रा की प्रेरणा है। बड़ी विडम्बना है कि मोक्ष प्राप्ति के लिए मोक्ष प्राप्ति की इच्छा ही छोड़नी पड़ती है। जब तक यह इच्छा रहती है मोक्ष नहीं मिलता। जो अपने सूक्ष्म कर्मों को क्षीण कर देते हैं या उनका नाश कर देते हैं वे इस दसवें सूक्ष्म सम्प्राय गुणस्थान में पहुँच जाते हैं।

11. उपशान्त कशाय (क्षीण अनुराग की अवस्था)

साधक अपनी सभी बाहरी और भीतरी आसक्तियों का उन्मूलन कर देता है तब वह इस ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँचता है। चार घाति कर्मों में से मोहनीय कर्म उपशान्त अवस्था में होता है और अन्य तीन ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और वेदनीय कर्म क्षयोपशम अवस्था में होते हैं। आत्मा अशुद्धता से पूर्णतया नाता तोड़ लेती है इसलिए इसे उपशान्त कशाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान कहते हैं।

12. क्षीण कशाय

वह आत्मा जिसने सब आसक्तियों का उन्मूलन कर लिया है और सब कर्मों का समूल विनाश कर दिया है वह इस बारहवें क्षीण कशाय गुणस्थान को उपलब्ध हो जाती हैं। फिर भी कुछ मामूली दोष रह जाते हैं इस लिये इसे क्षीण कशाय वीतराग छद्मस्थ अवस्था कहते हैं। साधक सम्यक चारित्र का अनुसरण कर सब मोहनीय कर्मों का नाश कर देते हैं पर बाकी के तीन, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और वेदनीय कर्म क्षयोपशम अवस्था में रह जाते हैं। जैसे ही इन तीन कर्मों का पूर्ण उन्मूलन हो जायेगा, साधक तेरहवें गुणस्थान को उपलब्ध हो जायेगा।

13. सयोग केवली जिन

आत्मा नौं उपलब्धियों (क्षयिक सम्यकदर्शन, सम्यकचारित्र, चेतना, धारणा, दान, लाभ, भोग, उपभोग और जीवन शक्ति) को प्राप्त कर केवल ज्ञानी हो जाता है। वह अतीन्द्रिय हो जाता है। अब

उन्हें देखने के लिए प्रकाश और जानने के लिए इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती। उनका मन वाणी और शरीर अभी तक कार्यान्वित रहता है इसीलिये वे सयोग कहलाते हैं और उन्होंने मानसिक और भौतिक कर्मों को जीत लिया है इस लिये वे जिन कहलाते हैं। इस गुणस्थान को सयोग केवली जिन कहते हैं। ये केवली अपने दिव्य प्रवचन द्वारा आत्मा की मुक्ति के लिए मोक्ष मार्ग का पथ प्रदर्शन करते हैं। मानसिक और शारीरिक क्रियाओं और भाषण के कारण उन आत्माओं में सत वेदनीय कर्म का प्रवाह तो होता है पर रागादि के न होने से कर्मबंध नहीं होता।

14. अयोग केवली जिन (मुक्तात्मा)

इस गुणस्थान में केवली मन, वाणी और शरीर की कोई भी क्रिया नहीं करते और सर्वज्ञ होते हैं इस लिए वे अयोग केवली जिन कहलाते हैं। घाति कर्मों के समूल उन्मूलन के साथ साथ सभी अघाति कर्मों की प्रकृतियों को भी नष्ट कर देते हैं, जो पुनर्जन्म के लिए आवश्यक है। इस लिए उनका पुनर्जन्म नहीं होता और वे सिद्धावस्था को प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं।

सिद्ध परमेष्टी

जो इन चौदह गुणस्थानों की यात्रा कर लेते हैं वे आठों भाव और भौतिक कर्मों (अध्याय 4) का क्षय करके परम आनन्द की अवस्था में स्थित हो जाते हैं। उन्हें आठ महा गुणों की (सम्यकत्व, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगहनत्व, अगुरुलघुत्व और अवयबाधत्व) की उपलब्धि हो जाती है। भाव और कर्मों से विहीन वे जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं और फिर जन्म नहीं लेते। वे सर्वज्ञ और स्वयं में पूर्ण हो जाते हैं। इस अवस्था में वे ब्रह्माण्ड के उच्चतम भाग (सिद्ध शिला) में निवास करते हैं क्योंकि फिर वो ब्रह्माण्ड की दसों दिशाओं में भ्रमण नहीं कर सकते। ये मुक्त आत्माएं सर्वज्ञ हो जाती हैं और सिद्ध कहलाती हैं।

यद्यपि प्रत्येक साधक को इन सभी चौदह गुणस्थानों की यात्रा करनी पड़ती है, उन्हें, उन के विश्वास, प्रयास और अभ्यास के अनुसार समय लगता है। कोई तो कई गुणस्थान एक साथ पार कर लेता है और कोई तत्क्षण उच्चतम गुणस्थान में पहुँच जाता है जैसा कि तन्त्र क्रियाओं से होता है। उसके लिए केवल चैतन्य मन को क्रियान्वित करना आवश्यक है। इसके विपरीत कई साधक क्रियाकाण्ड में ही सीमित रह जाते हैं यद्यपि उससे कुछ भी प्रगति नहीं होती। इनमें से कुछ साधक धर्म का मर्म या ज्ञान प्राप्त करने में लग जाते हैं यद्यपि शुष्क ज्ञान से भी कोई प्रगति नहीं होती। प्रगति तो क्रिया और ज्ञान का चारित्र और भाव से अनुसरण करने से होती है और जैसे जैसे साधक लक्ष्य के पास पहुँचता है, क्रियाएं और ज्ञान भी छूट जाता है। अन्त में केवल साधक की शुद्ध, सर्वज्ञ, चैतन्य आत्मा रह जाती है।

सर्वज्ञता की अवस्था आखिर क्या है ? संसार की सभी क्रियाओं को नियंत्रित करने वाले कुछ शाश्वत

नियम हैं। भगवान महावीर ने अपने समोसरण में त्रिपदी (उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-युक्तम सत) द्वारा प्रथम आधारभूत नियम समझाया था। सभी (पदार्थ एवं जीव) की तीन स्थितियाँ होती हैं : उत्पाद, सपरिवर्तन स्थिरता, और नाश। यह ब्रह्माण्ड का सनातन नियम है। इन तीनों स्थितियों में रूपान्तरण कर्म सिद्धान्त के अनुसार होता है। इसलिए अध्याय 4 में वर्णित कर्मवाद दूसरा सनातन नियम है। तीसरा नियम अनेकान्तवाद है जिसकी अध्याय 3 में चर्चा की गई है, जिसके अनुसार वस्तु का सच्चा स्वरूप ''एक ही अनेक है और अनेक ही एक है'' और प्रत्येक तत्त्व अनन्त प्रकार से अभिव्यक्त होता है। ये नियम स्वयं में सम्पूर्ण, सुस्पष्ट, व्यक्त, स्वयंसिद्ध और स्वतः प्रकाशित हैं। उनको मानना या समझना ही काफी नहीं है पर उनका ब्रह्माण्ड को परिचालन करने की अनुभूति ही सर्वज्ञता है। जब यह नियम दृष्टिगोचर होता है तो अज्ञानता, डर और आसक्ति स्वतः विलीन हो जाते हैं। तथापि हमें यह जान लेना चाहिये कि सर्वज्ञता का प्रमुख पहलू यह है कि ''कोई व्यक्ति" इसे हासिल नहीं कर सकता। जब पूर्ण ज्ञान अवतरित होता है तो शरीर और मन अस्तित्वहीन हो जाता है और मन के सभी गुण और पर्याय विलीन हो जाते हैं। इसलिए यह कहना गलत होगा कि "मैं" प्रबुद्धता प्राप्त करना चाहता हूँ। यह इच्छा ही प्रबुद्धता प्राप्ति की बाधा बन जायेगी क्योंकि "मैं" फिर बचता ही कहाँ है। वास्तव में प्रबुद्धता की स्थिति में कुछ भी नहीं बचता - वह सब, जिनसे हम परिचित हैं, खो जाता है। केवल आत्मा (जो ऊर्जा का ही स्वरूपहै) बचता है पर वह किसी से भी सम्बंधित नहीं है। यह अनुभव ही प्रबुद्धता की ओर पहला कदम है। प्रबुद्धता के विषय में दो और बातें जानना आवश्यक है। पहली बात तो प्रबुद्धता अचानक घटती है : शनैः शनैः नहीं। दूसरी बात यह कि प्रबुद्धत्व जब भी घटित होता है, आत्मा जानती है कि अब वह प्रबुद्ध है। उसके लिए और कोई प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। यदि कोई संशय रहे तो इसका अर्थ यह है कि प्रबुद्धता अभी घटित नहीं हुई है।

यह सब विवरण विस्तार से वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि हमें अपने लक्ष्य को सदैव ध्यान में रखना आवश्यक है और उस लक्ष्य की ओर एक एक कदम सावधानी से लेकर आगे बढ़ना चाहिये। यदि इस पथ से आत्मज्ञान पाने की सम्भावना में पूर्ण विश्वास है तो हम ने गुणस्थान 2 की ओर पहला कदम ले ही लिया। अहिंसा का पालन, सत्य की खोज, चोरी और परिग्रह से बचना चौथे गुणस्थान तक पहुँचा देता है और इसके साथ में कुछ सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं। क्रोध, लोभ और मोह के त्याग से छटे गुणस्थान पर और उनके भाव पर विजय करने से उच्चतर गुणस्थान की ओर प्रगति हो सकती है। जब सब इच्छाएं, जिसमें केवलज्ञान और मोक्ष प्राप्ति की इच्छा भी शामिल है, विलुप्त हो जाती हैं और मन, भाव और कर्म का त्याग कर सम्यक दर्शन, सम्यक चारित्र, विशुद्ध चेतना और निर्मल धारणा की अनुभूति होती है, तब मुक्ति की उच्चतम स्थिति उपलब्ध हो जाती है।

आत्मा की उच्चतर गुणस्थानों की ओर प्रगति सम्यक दर्शन के साथ साथ कुछ विशेष अभ्यासों के द्वारा की जा सकती है। इन शुद्धिकरण की क्रियाओं का वर्णन अगले अध्याय में किया जायेगा।

6

आत्मा के शुद्धिकरण की क्रियाएं

णाणस्सा सार मायरो

ज्ञान वही उपयोगी है जिसे चरित्र में उतारा जाय।

महाव्रत, आवश्यक, प्रार्थना
योग, तप, ध्यान, अणुव्रत, ज्ञान,
भावना, मोक्ष,
साधना के शारीरिक व मानसिक प्रभाव

शाश्वत सत्यों, ब्रह्माण्ड के सच्चे स्वरूप (अनेकान्तवाद), आत्मा और पदार्थ की प्रक्रियाओं के नियम (कर्मवाद) और प्रबुद्धता प्राप्ति की राह के विभिन्न चरणों (गुणस्थान) का पिछले अध्यायों में विवेचन करने के पश्चात हम अब जैन दर्शन के सबसे महत्वपूर्ण भाग, क्रियावाद, के बारे में चर्चा करेंगे, जो मोक्ष प्राप्ति का साधन है। इसके लिए हमें अपने शरीर, मन और आत्मा को अन्तरंग रूप से जानना चाहिये। आत्मा और उनकी शक्तियों के बारे में हमने अध्याय 2 में यथासम्भव चर्चा की यद्यपि आत्मा के गहनतम गुण अवर्णनीय, शब्दातीत और विचारातीत हैं, उनका केवल अनुभव किया जा सकता है। इस अध्याय में हम मन की गहराईयों की चर्चा करेंगे और देखेंगे कि मन बहुत ही रहस्यमय और अपरिमेय है।

मन का स्वरूप : मस्तिष्क शरीर का तन्तु है पर उस पर मन का नियंत्रण है। मन की व्याख्या करना असंभव है क्योंकि एक ओर तो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है और दूसरी ओर वह महाशक्तिशाली, मायावी, जटिल, चंचल और परिवर्तनशील है। उसके कुछ गुणों की हम यहाँ चर्चा करेंगे। सर्वशक्तिमान आत्मा के पश्चात मन ब्रह्माण्ड का सब से शक्तिशाली तन्त्र है। मन में हमारे ज्ञान की सीमा से भी परे का सारा ब्रह्माण्ड, काल और आकाश समाया हुआ है। मन का विस्तार ब्रह्माण्ड से भी बड़ा और अनन्त काल से भी लम्बा है। इसकी पहुँच पूरे अन्तरिक्ष में और भूत, वर्तमान और भविष्य काल में सभी जगह है। यह किसी भी वस्तु की कल्पना कर सकता है या उसको प्रक्षेपित (project) कर सकता है। ईश्वर भी मन की ही अवधारणा है। मन मनुष्य के भाग्य का निर्माता है। सब

वस्तुओं का उद्‌गम मन से होता है। विचार मन की छाया है। जहाँ मन है वहाँ विचार है। जितना शुद्ध मन होता है उतने शुद्ध विचार होते हैं। विचारों की गुणवत्ता से ही हम मन के स्तर का सही आकलन कर सकते हैं। मन के बिना विचार नहीं होते और विचार के बिना मन नहीं होता। जिस प्रकार सूर्य सिर के ठीक ऊपर आ जाने पर छाया लुप्त हो जाती है उसी प्रकार मन ध्यान में लगाने से विचार विलुप्त हो जाते हैं। विचार अकेले नहीं आते वे एक लड़ी की तरह चलते हैं। विचार भाव उत्पन्न करते हैं और भाव अन्य व्यक्तियों या घटनाओं के बारे मे मान्यता निश्चित करते हैं, उस मान्यता से व्यक्ति का व्यवहार निर्धारित होता है और व्यवहार या आचरण से क्रिया का जन्म होता है; क्रिया के योग से आदत बनती है और आदतों से व्यक्तित्व का निर्माण होता है और व्यक्तित्व ही व्यक्ति की पहचान है और उसी से उसका भाग्य बनता है। इसीलिए कहा जाता है कि व्यक्ति अपने भाग्य का विधाता है; तुम वही बनते हो जो तुम सोचते हो।

मन के तीन आयाम हैं : बाह्य (चेतन) मन, भीतरी या अवचेतन (सुषुप्त) मन और अतिचेतन मन जहाँ आत्मा का निवास है। बाह्य मन दो भागों में विभक्त है। तार्किक मन जो मस्तिष्क के बांयी ओर और भावुक मन, जो दाहिनी ओर स्थित है। अवचेतन मन पूर्ण तया विकसित नहीं है। जैन और बौद्ध धर्म में मानसिक क्रियाओं का गहन अध्ययन किया गया है और अवचेतन मन को ध्यान द्वारा सक्रिय करने की पद्धतियां विकसित की गई हैं। मन बहु आयामी है और सदैव उत्तेजित अवस्था में रहता है। यह श्रेष्टतम बहुकार्यक है और समानान्तर क्रियाओं में दक्ष है। यह घटनाओं का अनुभव करता है, उनका तत्क्षण विश्लेषण करता है और उन पर राय बनाता है। यह विवादों में उलझता है, द्वंद्व में जीता है, मतभेद करता है और विचार विमर्श कर सदैव बाहरी संदर्भो के आधार पर निर्णय लेता है। यह प्रत्येक व्यक्ति या घटनाकी तुलना करता है, योजना बनाता है, और इच्छानुसार निर्णय बदलता है। मन, क्रोध, घृणा, प्रेम, इर्षा, लोभ, घमण्ड आदि में लिप्त रहता है। चूंकि वास्तव में मन अस्तित्व हीन है इसलिए हर वक्त विभिन्न प्रकार से विश्लेषण द्वारा, अवधारणा बना कर, मान्यता जता कर, अनुभव एकत्रित कर, आदेश देकर, अपना अस्तित्व सिद्ध करने में लगा रहता है।

यह साधारण मन बाहरी प्रभाव में, आदतों की प्रवृत्ति से, और वृशृंखल परिस्थितियों के अनुसार निरंतर बदलता रहता है। यथार्थ में मन अति मायावी है, उसको जो विचार आते हैं उनको वह सत्य मान लेता है। वास्तव में वह मायाजाल बुनता रहता है। वह अस्थिर, भ्रमित, अनुशासनहीन और परिवर्तनशील है। विचारों की पुनरावृत्ति करता है तथा दूसरों के कार्यों में अन्तहीन हस्तक्षेप करने के लिए आतुर रहता है। यदाकदा ही मन अपने "स्वयं" जो इसका स्वामी है, के बारे में दिलचस्पी लेता है और शरीर और जगत के अस्थायित्व, मृत्यु, पुनर्जन्म आदि के बारे में सोचता है। इसकी शक्ति अपने आपको बाहरी व्यवसाय करने में खर्च हो जाती है। शून्य मन शान्त होता है और शान्त

अवस्था में ये सब क्रियाएं बन्द हो जाती हैं। विशुद्ध मन की प्रकृति पाँच गुणों (अनन्त प्रज्ञा, दर्पण प्रज्ञा, समदृष्टि प्रज्ञा, निर्मल प्रज्ञा और सम्पूर्ण प्रज्ञा) द्वारा पहचानी जाती है। इसकी प्रज्ञा का विस्तार आकाश की तरह अनन्त और असीम है। यह एक दर्पण की तरह आदर्श, प्रतिक्षेपक है और जो भी इसके सामने आता है उससे बिना किसी प्रकार प्रभावित हुए शुद्ध रूप से पूर्ण विवरण सहित प्रतिबिम्बित करता है। यही मन की दर्पण जैसी प्रज्ञा है। इसमें समदृष्टि प्रज्ञा हैं अर्थात यह बिना पक्षपात के और निष्पक्ष रूप से सब को देखता है। इसमें प्रभेद की क्षमता अर्थात निर्मल प्रज्ञा है। यह सब घटनाओं को बिना भ्रम के स्पष्ट रूप से देखता है। मन में सम्पूर्ण प्रज्ञा है अर्थात वह केवल दृष्टा है, विश्लेषक है और उसमें जो भी इसके सम्मुख आता है उसे पूर्ण और स्वाभाविक रूप से समझने की शक्ति है। इसकी तुलना में भीतरी मन, बाहरी मन से कहीं अधिक शक्तिशाली, विशुद्ध रूप से सचेत है, जो एक साथ ही बुद्धिमान, ज्ञाता, स्वप्रकाशित, प्रज्ञावान और सदा जागरूक है पर अपने विचारों की बौछार से आच्छादित बाहरी मन के भीतर छुपा है। भीतरी मन परिवर्तन, भय और मृत्यु से अछूता रहता है। वह स्वयं ज्ञान का भी ज्ञाता है। जब बाहरी मन शून्य हो जाता है तब भीतरी मन की अनन्त शक्तियाँ प्रकट होती हैं और अनुभव की जा सकती है पर पूर्ण रूप से कार्यान्वित करने के लिए उन्हें अभ्यास द्वारा सक्रिय करना आवश्यक है। मन एक फिल्म की तरह है, जिस पर यदि स्वयं को प्रतिबिम्बित करना है तो स्पष्टता के लिए पुराने चित्रों को मिटा देना पड़ता है अन्यथा स्वयं को पहचानना सम्भव नहीं होता। कहा जाता है कि मन एक बुरा स्वामी पर अच्छा दास है इसलिए उसको नियंत्रण में रखना आवश्यक है।

मृत्यु के समय मस्तिष्क मर जाता है पर मन जो स्मृति का कोष है, आत्मा के साथ कर्माणुओं द्वारा जुड़ा रहता है और कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म लेता है। सबसे पहले यह जान लेना चाहिये कि शरीर एक चमत्कार है। यह जगत के कई भौतिक नियमों का उल्लंघन करता है। सर्व प्रथम तो यह एन्ट्रोपी (अव्यवस्था का मापक) के नियम के अनुकूल नहीं चलता जिसके अनुसार कोई भौतिक तन्त्र की अव्यवस्थता समय के साथ बढ़ती रहनी चाहिये। कुछ भौतिक तन्त्र छोटे पैमाने पर अव्यवस्थता (chaos) से उत्पन्न होते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि अव्यवस्था से व्यवस्था को जन्म देते हैं पर वास्तव में सम्पूर्ण भौतिक प्रणाली की अव्यवस्थता बढ़ती रहती है। एक जैविक तन्त्र इस जगत का सबसे व्यवस्थित तन्त्र है और अपनी क्रियाओं द्वारा सुव्यवस्था को और बढ़ाता है। भौतिक शास्त्री इस क्रिया को भौतिक नियमों का उल्लंघन नहीं मानते और जैविक और उसके पर्यावरण को एक ही या सम्बंधित प्रणाली मानकर इसकी व्याख्या करते हैं; जब कि जैविक प्रणाली की एन्ट्रोपी कम होती जाती है इसके भौतिक पर्यावरण की, जिसके साथ वह क्रियारत है, एन्ट्रोपी अधिक बढ जाती है, और प्रभावी रूप से पूरी प्रणाली की एन्ट्रोपी में वृद्धि हो जाती है। शरीर का प्रत्येक कोष पूर्ण रूप से व्यवस्थित है और न्यूरल सिस्टम (तंतु प्रणाली) के साथ मस्तिष्क जगत की सर्वोत्तम व्यवस्था है। इस

प्रकार जैविक तन्त्र अपने वातावरण में से ऊर्जा लेने में सक्षम है। यह आत्मा या चेतना की उपस्थिति से ही सम्भव है क्योंकि भौतिक शरीर अपने आप वातावरण से ऊर्जा लेने में सक्षम नहीं है। यह ऊर्जा अनन्त है और कुछ क्रियाओं द्वारा एक ज़ीव बहुत मात्रा में वातावरण से ऊर्जा लेने की क्षमता रखता है। इस क्रिया की व्यापकता अपरिमित और प्रगतिशील है। जब हम भोजन करते हैं तब शरीर का प्रत्येक कोष उसमें से ऊर्जा उद्धरण करता है; जब हम सांस लेते है तब प्रत्येक कोष का शुद्धिकरण हो जाता है और वह ऊर्जावान बनता है।

चक्रों (चित्र 6.2) के माध्यम से शरीर तेजस्वी और ओझस्वी बनता है और फिर मन भी ऊर्जावान और व्यवस्थित बनता है और उसकी एन्ट्रोपी कम हो जाती है। सभी जैन साधनाओं का लक्ष्य एन्ट्रोपी कम करना, व्यवस्था को सुधारना, और शरीर, मन और चेतना को ऊर्जावान बना कर सक्रिय करना है। इन में से कुछ पहलुओं के बारे में हम चर्चा करेंगे। यही जैन और बौद्ध तन्त्र विद्या की बुनियाद है। हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि शरीर में ऐसे प्रवर्धक बने हुए हैं जिन्हें साधना से सक्रिय किया जा सकता है। इनकी तुलना वायुमण्डल से की जा सकती है जिसमें विज्ञान के अनुसार ऐसे स्वयंसिद्ध प्रवर्धक प्रभाव हैं जिन्हें "तितली प्रभाव" (**Butterfly Effect**) कहा गया है। इसके अनुसार यदि एक तितली कहीं पंख फड़फड़ाती है तो वायुमण्डल उसका इतना विशाल प्रवर्धन कर सकता है कि वह कहीं एक तूफान के रूप में प्रकट होता है। यही जैविक जगत में होता है जो वातावरण से ली हुई थोड़ी सी ऊर्जा का प्रवर्धन कर ऊर्जा का अमित स्रोत बना देते हैं। शरीर में इतने बड़े ऊर्जा स्रोत से कुण्डलिनी जागृत हो सकती है।

इन सब सिद्धान्तों और अवधारणाओं को जानना और समझना आवश्यक है पर आध्यात्मिक प्रगति के लिये यह काफी नहीं है। भगवान महावीर ने कहा है कि जब तक ज्ञान को चारित्र में नहीं उतारा जाय, इसका कोई अर्थ नहीं है। यद्यपि किसी को सही रास्ते पर लाने के लिए ज्ञान आवश्यक है, पर अभ्यास ही उसे लक्ष्य तक ले जा सकता है। इसलिए साधना के द्वारा ही जिनत्व प्राप्त किया जा सकता है और साधना अनुष्ठान की तरह नहीं बल्कि आत्मा के शुद्धिकरण के लिए की जानी चाहिये। अनुष्ठान के रूप में करने से कोई आध्यात्मिक प्रगति सम्भव नहीं है। इस सोच के साथ जब कोई अभ्यास करता है या जब नहीं भी करता है, परिणाम शीघ्र ही मिल जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि साधनाओं से कुछ सिद्धियां उपलब्ध होती है, परन्तु सिद्धियां लक्ष्य नहीं हैं। सिद्धियों में रुचि रखने से लोभ कर्म बंध होता है जिससे प्रगति रुक जाती है। सिद्धियां मोक्ष मार्ग के अवरोध हैं इसीलिये उनकी उपेक्षा करनी चाहिये, न कि उनका उपयोग मानसिक और भौतिक लाभ के लिये करना चाहिये। यह ध्यान में रखते हुए अब हम जैन साधनाओं की चर्चा करेंगे। इन साधनाओं के तीन मुख्य आधार है : अहिंसा, संयम और तप।

महाव्रत : जैन साधना में पाँच महाव्रत प्रमुख हैं और जो भी मोक्ष मार्ग का अनुसरण करता है उसके लिए आवश्यक हैं। ये पांच महाव्रत - अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अचौर्य और अपरिग्रह है। इनके बारे में अब हम कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे।

अहिंसा पालन : अहिंसा पालन मुक्ति की प्रमुख साधना है। पृथ्वी पर जीवों के विकास के वैज्ञानिक आधार पर अहिंसा के सिद्धान्त का प्रथम अध्याय में विचार किया गया था। उसके अनुसार सब जीव एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। किसी जीव की हत्या वास्तव में अपने ही एक अंश का नाश करना है। अहिंसा का अर्थ जीवों की हत्या के निषेध तक ही सीमित नहीं है क्यों कि यह पूर्ण अहिंसा नहीं है; यह केवल उसका पहला चरण है। अहिंसा का पालन कई स्तर पर करना चाहिये। पहले जीव हत्या से बचना, फिर उनको मन, वचन और कर्म, इन तीनों माध्यम से कष्ट न पहुँचाना, फिर दूसरों का दर्द स्वतः अनुभव करना और अन्त में यह अनुभव करना कि दूसरे जीव तुम स्वयं ही हो। जब तुम्हारी आत्मा की दूसरे जीवों की आत्माओं से एकात्मता होती है उनका सुख-दुख तुम अनुभव करते हो, उनके दर्द से तुम्हें दर्द होता है, तभी पूर्ण अहिंसा का पालन होता है। अहिंसा का उच्चतम रूप करुणा है। जब हम ऐसी कामना करते हैं, जैसा बौद्ध भिक्षु नागार्जुन ने कहा कि, ''सब के पाप कर्म मेरे लिए फलित हों और मेरे पुण्यों का फल दूसरों को मिले'' तो यह अहिंसा और करुणा का उत्कृष्टतम भाव है। ऐसा कहा जाता है कि अहिंसा का इस चरम सीमा तक पालन करने से मनःपर्याय ज्ञान की उपलब्धि होती है।

व्यावहारिक दृष्टि से अहिंसा का प्रथम चरण शाकाहार है। अपने को जीवित रखने के लिए दूसरों की हत्या नहीं करनी चाहिये। न तो यह आवश्यक है और न ही वांछनीय। हम मनुष्यों को कैसा लगेगा यदि हम से वरिष्ट जीव उनके भोजन के लिए हमारी हत्या करें। वही भाव और मृत्यु और यंत्रणा का भय हम से दुर्बल प्राणियों में भी होता है। मांसाहार अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है यह एक गलतफहमी है। इसके विपरीत मांसाहार न करना स्वास्थ्य के लिए अच्छा है जिसको हम परीक्षण से सिद्ध कर सकते हैं। शाकाहार का पालन कई स्तर पर होता है : उच्च प्रजातियों को भोजन के लिए न मारना, फिर निम्न प्रजातियों (काई और खमीर) का निषेध और फिर अंडे आदि न खाना, जो जीवन का संभावित स्रोत है। जैनों ने पश्चिमी सभ्यता से कहीं पहले यह खोज कर ली थी कि वनस्पति में भी जीवन होता है। इसीलिए वनस्पति (पेड़, पौधों) का सेवन न करना अथवा उन्हीं फल और सब्जियों का सेवन करना, जो स्वतः पक कर पेड़ पौधों से गिरे हों, अहिंसा पालन में सहायक हैं। वनस्पति की भी विकास की दृष्टि से कई श्रेणियां की गई हैं और कन्द मूल आदि का, जिनमें बेक्टीरिया की बहुलता हो, सेवन नहीं करना चाहिये। समाज में यह भी मिथ्या धारणा है कि बेक्टीरिया स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं और उनको रसायनों द्वारा मार दिया जाना चाहिए। वास्तव में हमारा शरीर अच्छे और बुरे सब प्रकार के बेक्टीरिया का घर है, जो बीमारियां भी उत्पन्न करते हैं, पर हम उनके बिना जीवित ही नहीं रह सकते। उनकी आबादी में संतुलन अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है और

वह संतुलन बिगड़ने से ही हम बीमार पड़ते हैं। यह संतुलन स्वच्छता से भी रखा जा सकता है न कि बेक्टीरिया को मारने से।

पूर्णतया अहिंसा पालन से जीवन शैली पूरी तरह बदल जाती है, जिसकी हम बाद में चर्चा करेंगे। सूक्ष्म जीवों को बिना कुचले हुए चलना, विशेष कर हरी घास पर, पानी के बेक्टीरिया को बचाना और धीरे धीरे सांस लेना ताकि वायु के जीव न मरें, इस प्रकार अहिंसा पालन के लिये कितनी ही सावधानी बरतनी पड़ती है। जीवों को मारने से बचने के बाद अगला स्तर जीवों को कष्ट न पहुँचाना और फिर उनके सुख दुख में एकात्मता का अनुभव करने से भी ऊपर उठकर, अपनी और अन्य जीवों की आत्मा को एक ही अनुभव करना, अहिंसा के चरम प्रतीक हैं।

कर्म और भाव से हिंसा करने से कई प्रकार के कर्मों का बंध होता है, जिनमें ज्ञानावर्णीय और दर्शनावणीय कर्म मुख्य है।

सत्य की खोज : मुक्ति के लिए सत्य का अनुसरण करना प्रमुख है। इसका अर्थ केवल सत्य बोलने तक ही सीमित नहीं है। सत्य बोलना आवश्यक पर गौण है। इस महाव्रत का वास्तविक अर्थ सत्य की खोज है जिसे प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं खोजना पड़ता है। ब्रह्माण्ड और प्रकृति का सच्चा स्वरूप क्या है? जीवन का परम सत्य और लक्ष्य क्या है? क्या मुक्ति का पथ सच्चा है। ऐसे कितने ही प्रश्न हैं जिनका मोक्ष मार्ग का चयन करने से पहले उत्तर खोजना आवश्यक है। वास्तव में सत्य ब्रह्माण्ड में ही गुथा हुआ है, इसलिए सत्य की खोज के लिये प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण करना चाहिये। जैनदर्शन जगत को, शंकराचार्य की तरह, माया या भ्रम नहीं मानता। इसके विपरीत यह जगत के अस्तित्व को वास्तविक मानकर, उस में परम सत्य को ढूंढने का आह्वान करता है। यह विज्ञान और जैन दर्शन को जोड़ने की कड़ी है। जैन दर्शन के अनुसार किसी वस्तु के स्वरूप को समझने के लिए कई प्रकार के तार्किक नय (दृष्टिकोण) हैं, जैसे व्यवहार नय, निश्चय नय आदि। पदार्थ के कुछ पर्याय व्यवहार नय की दृष्टि से भिन्न हो सकते हैं, पर अन्ततः वे सब एक ही तत्त्व के रूप हैं।

भौतिक जगत के लिए इस प्रकार का तर्क अब अनुपयोगी हो गया है, क्योंकि भौतिक शास्त्र इस समस्या का हल प्रायोगिक और सैद्धान्तिक तरीकों से पदार्थ के स्वरूप को जानने में सक्षम है। अनेकान्तवाद परम तत्त्व के बहुमुखी स्वरूप को परिभाषित करता है। स्यादवाद के अनुसार प्रत्येक रूप या गुण सांदर्भिक है और आंशिक सत्य है (अध्याय-3)। पदार्थ के यथार्थ स्वरूप के बारे में पूर्ण ज्ञान अनिश्चित है और स्यादवाद ही उसके वर्णन करने का एक मात्र सही तरीका है। यही एक कथन निश्चित है कि अनिश्चितता ही पदार्थ का सत्य स्वरूप है। यह सिद्धान्त भौतिक जगत व आत्मा, दोनों के बारे में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसकी उपेक्षा करना मिथ्यात्व है और मिथ्या दृष्टि कई प्रकार के कर्मों से बांधती है जो उसके आशय पर निर्भर करता है पर मुख्यतः ज्ञानावर्णीय कर्म बंध करती है।

ब्रह्मचर्य : ब्रह्मचर्य का सही अर्थ है ब्रह्म की तरह चर्या करना; प्रतिपल ब्रह्म की भांति आचरण करना। ब्रह्म (परम विशुद्ध आत्मा) बिना राग, मोह, माया, क्रोध, मद, लोभ और काम के , अनासक्त भाव से नियमानुसार आचरण करता है। उसी वीतराग भाव से आचरण करना ब्रह्मचर्य है।

यौन शक्ति शारीरिक ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। ब्रह्मचर्य का एक प्रमुख भाग है यौन शक्ति का उपयोग मानसिक उत्थान और शारीरिक उन्नति के लिए किया जाय न कि उसको तुच्छ मनोरंजन के लिए गंवा दिया जाय। व्यवहारिक दृष्टिकोण से ब्रह्मचर्य का अर्थ ऊर्जा का दुरूपयोग न करना और दुराचार और कामवासना से बचना है, पर यह उसका केवल एक पहलू है। वास्तव में सम्पूर्ण जीवन शैली, दिनचर्या और व्यवहार ऐसा होना चाहिये कि यौन ऊर्जा यथा सम्भव संचित हो और उसमें वृद्धि हो। प्रथम स्तर पर ब्रह्मचर्य का अर्थ यौन क्रिया या मैथुन निषेध माना गया है, पर यह इसका केवल पहला चरण है। मैथुन का भाव या वाणी से इच्छा भी इस ऊर्जा को क्षीण कर देती है। इसलिए यह भाव भी न्यूनतम स्तर पर रहना चाहिए और हो सके तो इसके पूर्ण निषेध का पालन करना चाहिए। जब कि मोक्ष प्राप्ति के लिये निरन्तर और तीव्र ध्यान की आवश्यकता है, यौन क्रियाओं का भाव या विचार भी इसे विचलित कर देता है। मैथुन निषेध का तर्क यह है कि मोक्ष जैसे कठिन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए असीम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य का पालन कई स्तर पर करना चाहिए और इसका व्यापक अर्थ यह है कि मन और शरीर की सभी क्रियाएं जो ऊर्जा का व्यय करती है, बन्द कर देनी चाहिये और उन क्रियाओं को, जिनसे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का विकास हो, प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये ।

अपरिग्रह और अचौर्य : परिग्रह को दो भागों में समझा जा सकता है। सम्पति संचय करना और सम्पति पर अधिकार का भाव। अपरिग्रह परिग्रह का विलोमार्थक है अर्थात भौतिक स्तर पर कुछ सम्पति न रखना और मानसिक स्तर पर सम्पति से कोई सम्बंध स्थापित न करना या उस पर अधिकार न जताना, कि यह मेरा है।

चूंकि किसी भौतिक सम्पति के बिना इस दुनिया में रहना असम्भव है चाहे वह अपना शरीर हो या जीवित रहने के लिये आवश्यकता की वस्तुएं, व्यवहारिक दृष्टि से, आवश्यकताएं न्यूनतम कर देना ही अपरिग्रह है। यह भौतिक संसार की क्षणभंगुरता की प्रतीति का मुख्य सूचक है। किसी वस्तु या व्यक्ति या अपने ही शरीर पर किंचित मात्र भी अपना अधिकार न मानना ही सच्चे अर्थों में अपरिग्रह है और मानसिक रूप से यह पूर्ण अपरिग्रह माना जाता है। जैसे जैसे मालिकाना या स्वामित्व भाव कम होता जाता है, सम्पति स्वतः ही विलीन होती जाती है। संसार में हिंसा का मुख्य कारण मालिकाना हक है या यह भाव कि यह मेरा हो सकता है। इसलिए अपरिग्रह अहिंसा का ही एक अंग है।

अपरिग्रह और अचौर्य एक ही सिक्के के दो पहलू है। जीवित रहने के लिए कुछ अधिक वस्तुओं

की आवश्यकता नहीं होती और परिग्रह से कर्म बन्ध होते हैं जो आध्यात्मिक प्रगति में बाधक हैं। अपरिग्रह का कई स्तरों पर पालन किया जाना चाहिये। उन्हीं संसाधनों का संचय करना जो नितान्त आवश्यक हों और अपनी ज़रूरतें कम करना केवल प्रथम चरण है। गहनतर स्तर पर जब ऐसा लगे कि सब आत्माऐं एक हैं और सब ब्रह्माण्ड आत्मा की ही अभिव्यक्ति है, तब पूरा ब्रह्माण्ड ही अपना हो जाता है। तब किसी वस्तु का संचय अर्थहीन हो जाता है और किसी वस्तु के चुराने का तो कोई मतलब ही नहीं जब ब्रह्माण्ड की सभी वस्तुएं अपनी हैं।

कर्म सिद्धान्त के अनुसार यदि किसी से कोई वस्तु की चोरी की जाय तो देर सवेर वही हमारे साथ होने वाला है। यह कारण ही चोरी न करने के लिए पर्याप्त है। संचय करने का प्रमुख फल यह है कि उससे मोहनीय कर्म दृढ़ता से जकड़ लेता है।

आवश्यक क्रियायें

एक बार कोई मोक्ष मार्ग पर चलने का निश्चय कर लेता है, तो उसका अपने व दूसरों के प्रति भावना और व्यवहार बदल जाता है और वह स्वतः ही पाँचों महाव्रतों का पालन करने लगता है। एक साधक को पाँच महाव्रतों का जीवन पर्यन्त अनुसरण करना चाहिए। पर जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को देखते हुए उनका पूर्णतया पालन करना कठिन होता है। इसलिए अपने व्यवहार की कभी कभी समीक्षा कर लेना आवश्यक है। इसलिए छः दैनिक क्रियाएं (सामायिक, चतुर्विंशति स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान) आवश्यक मानी गई हैं। इन अभ्यासों में सामायिक, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग मुख्य हैं। सामायिक का अर्थ सम भाव की स्थिति है। इसमें व्यक्ति को स्थिर, अचल मुद्रा में बैठकर ध्यान में लीन होना चाहिए या धर्मध्यान करना चाहिए। इससे शरीर का भौतिक और मानसिक नियंत्रण के साथ ही महाव्रत पालन करने में त्रुटियों के लिये और किसी जीव को दुःख पहुँचाने के लिये क्षमायाचना करने का विधान है। इसे 48 मिनट के लिए (जो दिन के 24 घंटों को 30 भाग (मुहुर्त) में विभाजित करने से प्राप्त होता है)। पालन करना चाहिए पर मानसिक रूप से इस भाव में, दूसरा कार्य करते हुए भी, जब तक रहें अच्छा है। प्रतिक्रमण (स्वयं की ओर लौटना) सामान्य तौर पर सुबह या शाम को रात या दिन में किये गए कार्य से उर्जा को स्वयं में वापस लौटाने के उद्देश्य से किया जाता है और किसी प्रकार की भूल या कृत्य के लिए सभी जीवों से क्षमा याचना की जाती है। यह आक्रमण से विपरीत पद्धति है।

इन दोनों क्रियाओं में सब जीवों की मंगल कामना और अपने कृत्यों या भाव द्वारा क्षति पहुँचाने के लिए क्षमा याचना करना मुख्य उद्धेश्य है। इससे ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मो का क्षय होता है।

प्रार्थना

प्रार्थना "स्वयं" को ब्रह्माण्डीय उर्जा से जोड़ देता है। प्रार्थना के मनोवैज्ञानिक प्रभाव अमित हैं। यह सम्यकत्व व मन की शांति प्राप्त करने के लिए पहला कदम है। इससे विषम परिस्थितियों की आत्म विश्वास और आशा के साथ सामना करने की शक्ति मिलती है। प्रार्थना, यह ध्यान में रखते हुए कि प्रार्थना करने की इच्छा ही प्रार्थना है, सरल तरीके से करनी चाहिये न कि कर्म काण्ड की तरह। चाहे कितनी ही तीव्रता से प्रार्थना की जाए, प्रार्थना करने से पाप नष्ट नहीं होते। अरिहंतों में भी किसी को संचित पुण्य या पाप कर्मों से दोष मुक्त करने की शक्ति नहीं है, वे केवल सही पथ प्रदर्शन कर सकते हैं और इस प्रकार नये कर्मबंध से बचा सकते हैं। इसलिये केवल मार्गदर्शन और सही कार्य में आस्था प्राप्त करने के लिए ही प्रार्थना करनी चाहिए, न कि कुछ भौतिक सुख प्राप्ति के लिए। सांसारिक सुख या आध्यात्मिक लाभ के लिए प्रार्थना करने से मोहनीय कर्म बन्ध होता है। इसलिए प्रार्थना केवल आत्मशुद्धि के लिए करनी चाहिये।

योग

योग का अर्थ जोड़ने से है। कोई भी प्रणाली दूसरी प्रणाली के साथ जुडने से या योग से बलवती हो जाती है और उसमें नई शक्तियां या दक्षताएं जुड़ जाती हैं। योग भिन्न भिन्न परिपेक्ष्य में उपयोग किया जा सकता है। जैसे कि जब मन, वाणी, शरीर, और चेतना का योग होता है, अर्थात ये सब एकात्मता से काम करते हैं तो एक प्रबल प्रणाली बनती है और मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है। यदि यह योग की क्रिया इनमें से किसी एक के द्वारा भी की जाए, जैसे शरीर के सब कोष एक साथ काम करें तो अत्यंत शक्तिशाली तंत्र बन जाता है और कोई लक्ष्य आसानी से प्राप्त हो जाता है। शरीर कोषों का योग तप या भक्ति से हासिल किया जा सकता है। इसी प्रकार मस्तिष्क के सब तन्तु (न्यूरोन्स) एक साथ मिल कर तादातम्य से काम करें तो मन बहुत शक्तिशाली हो जाता है। इसी भांति चेतन, अवचेतन और अतिचेतन मन ध्यान या योग द्वारा जुड़ जायें तो जगत की क्रियाओं के बारे में एक अन्तर दृष्टि उत्पन्न होती है। योगाभ्यास के आठ अंग हैः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और समाधि। यम मानसिक शुद्धि के लिये उपयोगी है और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, जिन पाँच महाव्रतों का उल्लेख ऊपर किया गया है, इसके अंग हैं। नियम शारीरिक शुद्धि के लिये है और उसमें शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और प्राणिधान (परम शक्ति में आस्था) सम्मिलित हैं। एक बार मन और शरीर का शुद्धिकरण हो जाय तो योगासन द्वारा शरीर और मन का तन्त्रिकाओं द्वारा सम्बंध स्थापित किया जा सकता है । इसके लिये कुछ आसन जैसे भुजंगासन, सर्वांगासन, हलासन, शवासन और पद्मासन बहुत लाभकारी हैं। गोदुहासन से वीर्य वृद्धि होती है और वह शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये ऊर्जा उपलब्ध कराता है। विभिन्न योगासनों का

अभिप्राय उनसे सम्बंधित भिन्न भिन्न चक्रों में रक्त प्रवाह बढ़ाना है। योगासन प्राणायाम के साथ ही करना चाहिये जो प्राण शक्ति का नियंत्रण और वृद्धि करते हैं। योगाभ्यास के अन्य अंगों (प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) के बारे में हम बाद में चर्चा करेंगे । यह क्रियायें मोक्ष की राह पर प्रगति में सहायक हैं। आध्यात्मिक चेतना को विकसित करने के लिये कुण्डलिनी जागृत करना आवश्यक है। कुण्डलिनी वेगस नामक दसवीं कपालीय तंत्रिका है और मणिपुर चक्र में निष्क्रिय पड़ी रहती है। विभिन्न मुद्राओं में ध्यान द्वारा रक्त प्रवाह और उर्जा संचालन से कुण्डलिनी जागृत की जा सकती है । इसके लिये पद्मासन, वज्रासन या सुखासन में, मेरुदण्ड को बाण की तरह सीधा रखकर, ध्यान करना आवश्यक है।

तप

तपस्या का मुख्य लक्ष्य शरीर की सुषुप्त शक्तियों को सक्रिय करना है। इसके अलावा इन्द्रियों और चेतन अथवा अवचेतन मन के बन्धन से जो आदतें पड़ जाती हैं, उनसे मुक्त होना और संचित कर्मों का क्षय करना है। आदतों से मन के सतर्क रहने में बाधा आती है । तपस्या मन और शरीर को शुद्ध करने का प्रथम चरण है। शरीर को केवल ताड़ना देना तपस्या का उद्देश्य नहीं है पर ध्यान से आत्मा में लीन होने से तपस्या स्वतः हो जाती है। तप दो प्रकार से किये जाते हैः बाह्यान्तर तप और आभ्यन्तर तप। बाह्यतप छह प्रकार के होते हैं: अनशन, उणोदरी, वृत्तिसंकल्प, रसपरित्याग, संयम और संलीनता। अनशन केवल भोजन पर ही लागू नहीं होता है, पर प्रत्येक इन्द्रिय द्वारा अनशन करना चाहिए। तीव्र गति से और निरन्तर मानसिक विकास होते हुए भी मन पूर्णतया विकसित नहीं है। इस कारण सभी इद्रियों की मांगें वास्तविक भौतिक आवश्यकता पर निर्भर न होकर, मन द्वारा नियंत्रित की जाती है। मन द्वारा आवश्यकताओं का आकलन वास्तविक न होकर काल्पनिक होता है। मन इस प्रकार इन्द्रियों की आवश्यकताओं की पूर्ति में अंवाछित हस्तक्षेप करता है। अनशन से प्रत्येक इन्द्रिय (भूख, वाणी, गंध, दृष्टि और कामुकता आदि) की वास्तविक आवश्यकताओं का पता लगता है। जैन दर्शन की मान्यता है कि भोजन का मनःस्थिति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। बिलकुल भोजन न करने से शून्य मन की स्थिति प्राप्त करना सरल हो जाता है। सात्विक भोजन से शुरू करके दिन में एक बार खाना, एक, दो, तीन, आठ या दस दिन तक कुछ नहीं खाना और फिर एक माह या उससे अधिक समय तक भूखा रहना अनशन के कुछ रूप हैं। सामान्य धारणा के विपरीत, लम्बे समय तक उपवास करना सम्भव ही नहीं अपितु काफी सरल भी है। भौतिक स्तर पर उपवास शरीर सभी कोषों में एकात्मता स्थापित करके एक साथ क्रियान्वित करने में सहायता करता है क्योंकि पोषण की कमी सब कोषों को एक जुट होने का आह्वान करती है। मानसिक स्तर पर यह शरीर और मस्तिष्क को जोड़ता है, चेतना के स्तर पर चिंता विहीन और ध्यान करने में सहायक है क्योंकि भोजन ध्यान से

विकर्षण पैदा करता है। तप की और क्रियायें बिना नमक या तेल का आहार एक दिन के लिये लेना (आयम्बिल) या अधिक दिन तक लेना (ओली) है। इसके और भी रूप हैं जैसे किसी विशेष प्रकार का अन्न किसी विशेष कार्यक्रम से एक माह या एक वर्ष तक लेना जैसे कि वर्षीतप, वर्धमान तप आदि। मृत्यु पर्यन्त भोजन न करना (संलेखना या संथारा चरम तप है जो मृत्यु का भय पूरी तरह दूर कर देता है पर स्वास्थ्य की विशेष अवस्थाओं में ही इसकी अनुमति है। मृत्यु का जैन धर्म में विशेष महत्व है क्योंकि यह अगले जन्म का द्वार माना जाता है। मृत्यु इस जीवन का अन्त नहीं बल्कि अगले जीवन की शुरूआत मानी गई है। ध्यानपूर्वक अपनी मृत्यु का अवलोकन करना, न कि जीवन को उसका उपयोग समाप्त होने पर भी किसी तरह बनाये रखने का प्रयास करना, वांछनीय है। संलेखना द्वारा अपनी मृत्यु का दृष्टा बनना इसका एक निश्चित तरीका है। जीवन की अन्तिम मानसिक स्थिति अगले जन्म के लिये महत्त्वपूर्ण होती है। इसलिये अंतिम समय में मृत्यु का डर, किसी प्रकार की तड़प, लोभ, लालसा या भौतिक और मानसिक सम्बंधों (जैसे कि सगे सम्बंधियों या सांसारिक सम्पत्ति) से मोह का पूर्णतया उन्मूलन हो जाना चाहिये।

श्रेष्ट परिणाम के लिये उपवास की विभिन्न क्रियाओं के साथ ध्यान करना वांछनीय है। वास्तव में ध्यान में लीन होने से तप की विभिन्न क्रियायें स्वतः हो जाती हैं। उणोदरी तप, अर्थात प्रत्येक इन्द्रिय को उसकी आवश्यकता से कुछ कम मात्रा में पोषण देना, उसको नियंत्रित करने में सहायक होता है और शनैः शनैः उनको मन के नियंत्रण से स्वतन्त्र कर देता है। वृत्ति संकल्प प्रत्येक इन्द्रिय पर केन्द्रित होकर उसका विस्तार न्यूनतम सीमा तक संकुचित कर देता है और उससे वह दूसरी इन्द्रियों के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर पाती। रसपरित्याग मन और चेतना के सम्बंध तोड़ देता है क्योंकि मन इन्द्रियों का, बिना चेतना के सहारे, नियत्रंण नहीं कर सकता। मन और इन्द्रियाँ दोनों ही मृत्यु के समय अस्तित्वहीन हो जाती हैं पर चेतना अगले जन्म में उनका भी पुनरावृत कर देती है। उनका शारीरिक और मानसिक गुणों पर प्रभाव पड़ता है। जब मन को यह आभास हो जाता है कि काया ही सब क्लेशों का कारण है और काया को, जैसी भी हो, स्वीकार कर लेता है, और जब भी काया को क्लेश होता है तो भी मन स्थिर रहता है, तो उस अवस्था को काय:क्लेश कहा गया है। लौकिक ऊर्जा (Cosmic Energy) से संम्बध स्थापित कर, उस उर्जा को मोक्ष प्राप्ति का साधन बनाना संयम है। उर्जा को भीतर की ओर संचालित करना, और चाहे कुछ भी हो, अपने लक्ष्य से विचलित न होना ताकि अच्छे और बुरे कर्म मन में कोई स्पन्दन न कर पाये, स्थितिप्रज्ञ की दशा है, जो संयम के अभ्यास से उपलब्ध होती है। इन सब बाह्यान्तर तपों द्वारा जब शरीर या मन का कोई भी भाग, चेतना के निर्देश के बिना संचालित या क्रियाशील न हो अर्थात जब चेतना, मन और शरीर तादात्म्य से काम करें तो संलीनता की परम उपलब्धि प्राप्त होती है।

आभ्यन्तर तप प्रायश्चित (बुरे कर्मों के लिये पश्चाताप), विनय (शील), वैयावच्च (संचित कर्मों का क्षय करने के लिये दूसरों की सेवा), स्वाध्याय (अपने स्वयं का अध्ययन), ध्यान और कायोत्सर्ग (अपनी काया और आत्मा का पृथक्करण) द्वारा किया जाता है। ध्यान से स्मृति, प्रतिक्रमण (स्व में लौटना) और जाति स्मरण (पिछले जन्मों का ज्ञान) आदि उपलब्ध होते हैं। इन बाह्यान्तर और आभ्यन्तर तपों द्वारा शरीर और मन और मन और चेतना के बंधन टूट जाते हैं और नये कर्मो का प्रवाह रुक जाता है।

ध्यान :

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक एकात्मता के लिये ध्यान प्रमुख साधना है। सभी क्रियाओं में यह सबसे कम समझा गया है और यह साधना बहुत कठिन मानी जाती है जब कि वास्तव में यह सरल है। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति हर समय ध्यान ही करता रहता है क्योंकि मन चितंन के बिना नहीं रह सकता। आवश्यकता है तो केवल उस चिंतन को सही दिशा देने की। तो फिर ध्यान क्या है ? निस्सन्देह ध्यान विचार करना नहीं है। इसकी शुरूआत स्वयं के सम्मोहन से होती है, जिसमें स्वयं को विचारहीन मन की स्थिति में भरोसा दिलाना है। फिर यह भरोसा मन के पार ले जाता है।

चेतन मन में बहुआयामी क्षमता है। यह एक ही समय में, एक साथ, बहुत से विषयों के बारे में सोच सकता है। मन सदा बदलता रहता है और विभिन्न प्रश्नों, विषयों, घटनाओं, आशाओं, शंकाओं और डर के बीच भूतकाल और भविष्य काल में यहाँ वहाँ भटकता रहता है। मन की पूरी क्षमता को एक ही विषय पर केन्द्रित करना एकाग्रता है। इस एकाग्रता को आत्मा पर केन्द्रित करना ध्यान है। पहले तो सदा परिवर्तनशील, भटकते हुए चेतन मन के विभिन्न अंशों का ध्यान द्वारा एकीकरण करना, फिर चेतन और अवचेतन मन को जोड़ना और फिर शून्य मन की स्थिति में जाना और उसमें स्थिर रहना ही ध्यान है। चूंकि अवचेतन मन के अधिकांश भाग का उपयोग नहीं होता, चेतन और अवचेतन मन को जोड़ देने से अगाध सम्भावनाएं प्रकट होती हैं। शून्य मन ही मन की स्थाई दशा स्थिति है और गहन इच्छा द्वारा प्राप्त की जा सकती है। तब आत्मा को दृष्टा के रूप में देखा जा सकता है। संक्षेप में आत्मा को आत्मा द्वारा देखना ही ध्यान है।

ध्यान कई प्रकार के होते हैं और उन्हें विभिन्न पद्धतियों द्वारा किया जा सकता है। शारीरिक रूप से पीनियल ग्रन्थि को, जो तीसरा नेत्र है, सक्रिय करना ही ध्यान है। इनमें से कुछ पद्धतियां तालिका 6.2 में क्रमबद्ध की गई हैं। ध्यान की अनगिनत पद्धतियां इस बात का द्योतक है कि ध्यान सहज ही उपलब्ध किया जा सकता है।बुनियादी तौर पर ध्यान चार प्रकार का है। आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान। जब असहाय मन किसी व्यक्ति की आलोचना करता है और उसकी शिकायत करता है तो उसे आर्त ध्यान कहते हैं। इस क्रिया में मन इतना लीन हो जाता है कि वह सब कुछ, स्वयं

खुद को भी, भूल कर इसमें जुट जाता है। रौद्र ध्यान किसी पर क्रोध करने की या किसी का बुरा चाहने की इच्छा है, जिसे हम कोई अप्रिय घटना के लिए या अपने दुःख के लिए उत्तरदायी समझते हैं। जब हम अपने आप को किसी अप्रिय घटना के लिए उत्तरदायी नहीं मानते तो हम इसकी जिम्मेदारी किसी और के सर मढ़ देते हैं। इन विचारों में हम इतने डूब जाते हैं कि हम अपना लक्ष्य या स्वयं अपने आपको भी भूल जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्त या रौद्र ध्यान में जाने के लिए किसी विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं है। मन हर समय तीव्रता और लगन के साथ उन में व्यस्त रहता है पर यह दोनों प्रकार के भाव ऊर्जा खर्च कर देते हैं और हमें उच्चतर गुणस्थान को उपलब्ध करने में बाधक हैं। इनमें लगे रहने से सिवाय दुःख के कुछ भी हाथ नहीं लगता है।

धर्म ध्यान हमारी ऊर्जा को सकारात्मक दिशा में ले जाना है, जिससे ऊर्जा संचित होती है। केवल हमारी आर्त और रौद्र ध्यान की क्षमता को सही और सकारात्मक दिशा में लगाने की आवश्यकता है, जिससे हम धर्म ध्यान में प्रवेश कर सकें। शुक्ल ध्यान हमारा अन्तिम लक्ष्य है जिसमें हम किसी का बुरा या भला कुछ भी नहीं चाहते। इसमें मन शून्य हो जाता है और ऊर्जा नष्ट नहीं होती।

ध्यान की सब पद्धतियाँ तीन बुनियादी तकनीकों से विकसित की गई हैं : किसी वस्तु, मन्त्र या प्राण (सांस) पर ध्यान केन्द्रित करना। प्राण (श्वास व उच्छवास) या किसी मूर्ति या छवि (इष्टदेव, प्रतीक या चक्र इत्यादि) के अलावा किसी ध्वनि (जप), विचार और आत्मा पर मन एकाग्र करने से ध्यान की उपलब्धि हो सकती है। ध्यान की कुछ व्यवहारिक पद्धतियाँ तालिका 6.1 में क्रमबद्ध की गई हैं और जो भी जिसके अनुकूल हो उसे उसी पद्धति का चयन करना चाहिये। इन में महावीर स्वामी द्वारा अपनाए गए कायोत्सर्ग का विशेष महत्त्व है। सभी अच्छे या बुरे विचारों को बिना अवरोध के आने देने से वे तिरोहित हो जाते हैं और यह भी ध्यान में जाने की प्रारम्भिक क्रिया है। मन को स्थिति परिवर्तन अच्छा लगता है अतः जब सभी बुरी भावनाएं जो आर्त और रौद्र ध्यान में मन में आती हैं, समाप्त हो जाती है तब मन स्वयं धर्म और शुक्ल ध्यान की ओर मुड़ जाता है। पर यदि हम दूसरों के प्रति बुरे विचारों से भरे हुए हैं और उन को हमारे दुखों के लिए जिम्मेदार मानते हैं तो इसमें काफी समय लग सकता है। सच तो यह है कि हम स्वयं ही अपने दुखों के लिये जिम्मेदार हैं। जब हमें इसका ज्ञान हो जाता है तो मन शुक्ल ध्यान की ओर मुड़ जाता है। शुक्ल ध्यान की सिद्धि समाधि के लिये परम आवश्यक है।

हम यहाँ ध्यान की भिन्न भिन्न प्रणालियों की चर्चा नहीं करेंगे; केवल यह जानना आवश्यक है कि किसी भी पद्धति का एक ही स्थान और एक ही समय पर निरंतर अभ्यास करना चाहिये। कोई भी पद्धति अपनाई जाय, आरम्भ में चेतन मन को दो भागों में विभाजित कर लेना चाहियेः एक तो एकाग्र चित्त जो मन को एक विषय, जैसे कि इष्ट या प्राण, पर एकाग्र करता है और दूसरा वह निरीक्षक चित्त,

जो मन की एकाग्रता की जाँच कर के जब वह वहाँ से भटक जाय तो उसको फिर उस विषय पर वापस लाता है। अभ्यास के साथ मन विचलित होने का समय कम हो जाता है। कम होते होते यह समय जब शून्य हो जाय अर्थात लम्बे समय तक सम्पूर्ण और निरन्तर ध्यान (मिनटों या घंटों तक) स्थिर हो जाय, तब मन के दोनों भाग, एकाग्र चित्त और नियन्त्रक चित्त, मिलकर एक हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में कोई भी एक विषय या विचार पर इच्छानुसार एकाग्र हो सकता है। इसके पश्चात् शून्य मन या विचार विहीनता की स्थिति आती है। जब शून्य मन उपलब्ध हो जाय अर्थात् जब मन का उल्लंघन कर सीधा चेतना में प्रवेश हो जाय तब विश्लेषणात्मक मन को सक्रिय करना चाहिये और तब ध्यान के विषय के बारे में सब कुछ जाना जा सकता है। इससे उस विषय या वस्तु के बारे में नई अन्तर-दृष्टि प्राप्त होती है। ध्यान की उन्नत अवस्था में न तो शरीर से और न वाणी या मन से किसी प्रकार का प्रयास करना चाहिये। दर असल में उस व्यक्ति को पर्वत की तरह अचल, दृढसंकल्प, और उदासीन हो जाना चाहिये। इससे मन स्थिर हो जाता है और आत्मा स्वयं मे तल्लीन हो जाती है। यह परम ध्यान या समाधि की स्थिति है।

ध्यान की सफलता के लिए तीन शर्तें हैं। पूर्ण निष्टा (अपनाई हुई विधि में दृढ विश्वास), दृढ संकल्प (मैं इस बार ही समाधि प्राप्त कर लूंगा, चाहे जितना समय लगे या प्रयास करना पड़े) और पूर्ण समर्पण (अपना सब कुछ दाँव पर लगा देना), जैसा कि गौतम बुद्ध ने बोधिवृक्ष के नीचे बैठते समय निश्चय किया, "चाहे मेरा रक्त सूख जाय, चाहे शरीर जर्जर हो जाये, जब तक मैं परम ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता, मैं यहाँ से हिलूंगा भी नहीं"।

मन को ध्यान की ओर उन्मुख करने के लिये कुछ समय के लिये गहन ध्यान करना चाहिये पर ठोस परिणाम के लिये पृष्ठभूमि में यह साधना सतत चलती रहनी चाहिये। पहला चरण विभिन्न व्यक्तियों या परिस्थितियों के संदर्भ में अपने आप को, अर्थात अपने मन और अपने व्यवहार (क्रोध-लोभ, मोह, मद, अहंकार, आदि) का अवलोकन करना चाहिये और अपने मन की समीक्षा व वर्गीकरण करना चाहिये। अपने मन का आकलन करने से कोई भी शीघ्र ही इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि मन अपनी धारणा छिछले आधारों पर और सदैव अस्थिर, विरोधी, मतलबी, नकारात्मक, न कि सकारात्मक दृष्टिकोण से बनाता है जिन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। ये सब धारणाएं पूर्णतया भुला देने योग्य हैं। अपने मन की क्षमताएं और दुर्बलताएं जानने के बाद अगला चरण विचारों को दिशा देना है। सब से उत्तम पद्धति अपने इष्ट पर, यह जानते हुए भी कि वह केवल मन का प्रतिबिम्ब और अपनी ही चेतना की माया है, ध्यान केन्द्रित करना है।

जैन तन्त्र पद्धति इतनी शक्तिशाली है कि वह अपने इष्टदेव में प्राण फूंककर उसे सजीव कर देती है और उसको कल्पना के क्षेत्र से निकाल कर यथार्थ में प्रस्थापित कर देती है और ऐसा लगने

लगता है कि वह वास्तविक है। ध्यान केन्द्रित कर इष्टदेव की शीशे में प्रतिमा इतनी सजीव की जा सकती है कि उसे स्पर्शकर, उससे बात कर उसको महसूस किया जा सकता है।

ध्यान की राह पर होने वाले अनुभवों का शास्त्रों में वर्णन किया गया है। जब इष्टदेव पर अटूट ध्यान करने की क्षमता प्राप्त हो जाय तब उसके साथ एकात्मता स्थापित करनी चाहिये। मैं ही इष्टदेव हूँ, सोहम् या अहम ब्रह्मास्मि का भाव बिना कसी संशय के अनुभव में आता है। यह अद्वैत भाव सिद्ध होने से इष्टदेव की सभी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। इस स्थिति में मानसिक उष्मता अर्थात एक प्रकार की आन्तरिक अग्नि उत्पन्न होती है जो मानसिक बल का प्रतीक है। नियंत्रित श्वासोच्छवास और मानसिक एकाग्रता से एक प्रकार का प्रकाश शरीर में भर जाता है जो बढ़ते बढ़ते सारे ब्रह्माण्ड में फैल जाता है। शीशे में अपने प्रतिबिम्ब पर ध्यान करने से शरीर के मिथ्यात्व और जगत की सभी वस्तुओं के भ्रामक स्वरूप का भान होता है। इससे यह अहसास होता है कि मन की अनुभूति विश्वासजनक नहीं है। स्वप्न पर भी ध्यान किया जा सकता है जिससे इच्छानुसार स्वपनावस्था में और फिर बिना अन्तराल के जागृत अवस्था में जाना सम्भव हो जाता है। इससे जागृत, सुषुप्त और स्वप्नावस्था की भ्रामकता का अनुभव होता है। यह अहसास मन की चौथी तुर्यावस्था होती है। दिव्य प्रकाश पर ध्यान करने से चेतना का एक से दूसरे शरीर में या एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण करने की सिद्धि प्राप्त होती है। ये ध्यान के सब अभ्यास अन्ततः निर्मल मन, अकाल (वर्तमान और भविष्य से परे), समयातीत, समाधि को उपलब्ध करा देते हैं जो कि ध्यान का अन्तिम लक्ष्य है।

तालिका 6.1 ध्यान पद्धतियां

1. प्रेक्षाध्यान	2. कायोत्सर्ग
3. विपस्सना	4. उत्कृष्ट (Transcendental) ध्यान
5. पातंजली ध्यान	6. सहज ध्यान
7. निद्रा ध्यान	8. स्पन्द ध्यान
9. योग निद्रा	10. मन्त्र ध्यान
11. स्वप्न ध्यान	12. मृत्यु ध्यान

यह चर्चा समाप्त करने के पहले दो बातों का उल्लेख करना उचित होगा। पहला तो यह कि ध्यान की क्रिया ध्यान नहीं है। ध्यान क्रिया के अभ्यास के पश्चात जो स्वतः घटित होता है वही ध्यान है। दूसरा, ध्यान की प्रगति का आकलन करने के लिए कुछ परीक्षण करते रहना चाहिये। ध्यान करने से आचरण बदल जाता है और दूसरों के प्रति दयालुता, करुणा आदि में वृद्धि, क्रोध, ईर्षा, इच्छा, घमण्ड में कमी, मनोदशा (शांति, स्वप्नों की उत्तमता, व्याकुलता में कमी) आदि से ध्यान की प्रगति

आँकी जा सकती है। ध्यान की वास्तविक पुष्टि यह है कि यदि साधक ध्यान करना छोड़ भी देता है, तब भी ध्यान साधक को नहीं छोड़ता। ज्यों ज्यों साधक ध्यान को छोड़ने की चेष्टा करता है ध्यान उसको जकड़ता जाता है। वास्तव में प्रेम ही ध्यान है।

अणुव्रत :

अच्छे चारित्र को पाने का सब से उत्तम तरीका छोटे छोटे कदमों से शुरूआत करना है। ये सरल और छोटे प्रयास अणुव्रत के नाम से जाने जाते हैं। पांच मुख्य अणुव्रत निम्नलिखित हैं।

1. दो या उससे अधिक इन्द्रियवाले गतिशील जीवों को चोट न पहुँचाना और जान बूझ कर हिंसा न करना।
2. अत्याधिक स्नेह या घृणा के कारण असत्य कथन से बचना।
3. न दी हुई वस्तु को न लेना।
4. अपने सहचारी के अतिरिक्त किसी से यौन सम्बंध न रखना।
5. सब प्रकार की सम्पत्ति को स्वेच्छा से कम करना।

शनैः शनै : इनमें और भी अणुव्रत जोड़े जा सकते हैं जैसे कि पर्यावरण को जान बूझकर क्षति न पहुँचाना, कुछ पूर्वनिश्चित समय के लिए पाप क्रिया इत्यादि न करना, वस्तुओं का उपयोग सीमित रखना, भोजन बाँट कर खाना, सीमित क्षेत्र में विचरण करना। जब इन व्रतों से शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्वास्थ्य को लाभ होगा तब इन छोटे व्रतों का दूरगामी प्रभाव पड़ता है।

सामान्य जैन घरों में भोजन, पानी, विद्युत (और अन्य प्रकार की ऊर्जा) को बरबाद करना निषिद्ध है और लोग एक दूसरों की भावनाओं को मन, वचन और कर्म से कम से कम दुःख पहुँचाते हैं। प्रति वर्ष एक क्षमायाचना दिवस मनाया जाता है। आठ या दस दिनों तक व्रत, मौन, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि अनुष्ठानों द्वारा शरीर, मन और आत्मा के शुद्धिकरण के बाद, जिसे पर्युषण कहा जाता है, प्रत्येक व्यक्ति दूसरों से क्षमायाचना करता है और क्षमा भी करता है।यह केवल उन लोगों तक ही सीमित नहीं जिनके साथ वह सम्पर्क में आता है बल्कि ब्रह्माण्ड के सभी जीवों को भी इस क्षमापना में भावपूर्वक सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार पारस्परिक क्षमा मांगने और देने से बहुत से कर्म कट जाते हैं और विश्व में शांति स्थापित होती है।

ज्ञान:सामान्यतः जानकारी को ही ज्ञान मान लिया जाता है पर वास्तव में वह ज्ञान नहीं है। जब ध्यान द्वारा मन अवांछनीय जानकारियों से खाली हो जाता है तब शून्य मन में स्वतः ही विद्या का आविर्भाव होता है जो पहले से ही चेतन मन में मौजूद है पर ज्ञानावर्णीय कर्मों से ढ़की होने के कारण प्रकट नहीं हो पाती। विशुद्ध बोध ही ज्ञान है जो किसी की मनोस्थिति से, इन्द्रियक्षमता से या विषय वस्तु से प्रभावित नहीं होता।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, ब्रह्माण्ड जीव (ज्ञाता) और अजीव (ज्ञेय) से बना है। इस प्रकार तीन भिन्न भिन्न सत्ताएं, ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय हैं जो एक दूसरे से जुड़े हैं (चित्र 6.1)। ज्ञाता और ज्ञेय एक दूसरे को ज्ञान अर्थात प्रतिक्रिया द्वारा संशोधित करते रहते हैं। वैज्ञानिक प्रयोगों से यह पता चला है कि किसी सूक्ष्मकण के बारे में हम सभी गुणों को एक साथ परिशुद्धता से नहीं जान सकते। यह अनिश्चितता का सिद्धान्त कहलाता है जिसके बारे में हम अध्याय 7 में चर्चा करेंगे। किसी वस्तु का ज्ञाता पर मानसिक प्रभाव या ज्ञान में वृद्धि होना तो स्पष्ट ही है क्योंकि ज्ञान प्राप्ति का यह एक जाना माना तरीका है। यही डारविन के विकासवाद का भौतिक आधार है। जब जीव भौतिक जगत से प्रतिक्रिया करता है तो उसके ज्ञान में संशोधन होता है। यह विकास चरण बद्ध या क्रमिक रूपसे होता है। प्रत्येक बार जब जीव किसी पदार्थ या क्रिया का अध्ययन करता है, उसकी मानसिक दशा में कुछ परिवर्तन होता है। यही कारण है कि मूर्ति की पूजा करने से व्यक्ति के चित्त की दशा बदल जाती है। यह परिवर्तन चेतना को उन्नति या अवनति दोनों ही ओर ले जा सकती है जो उसकी भावना पर निर्भर करता है। यह प्रभाव अत्यन्त अल्प मात्रा में, पर निरंतर होता जा रहा है और इसका लंबे काल में संचित प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है जैसा कि अध्याय-3 में उल्लेख किया गया था। जब तीना(ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय) के बीच का भेद विलीन हो जाता है तब ज्ञाता और ज्ञेय लुप्त हो जाते हैं औरकेवल ज्ञान बचा रहता है। यह विशुद्ध ज्ञान की स्थिति है। कहा जाता है कि यही सिद्धों का शरीर है।

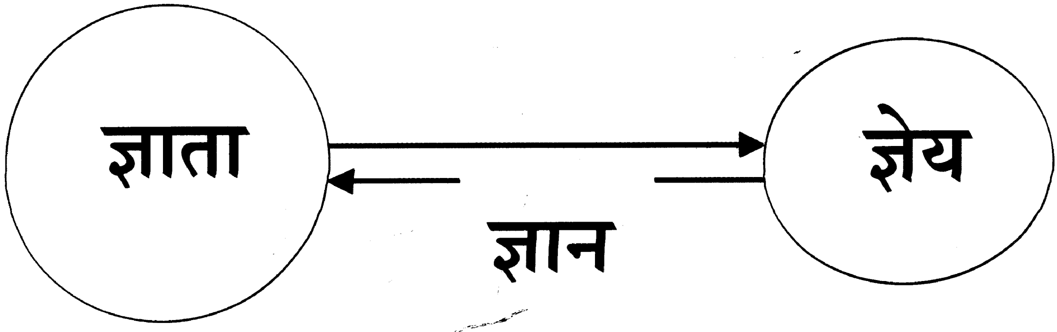

चित्र 6.1 : ज्ञाता और ज्ञेय, ज्ञान द्वारा सम्बंधित हैं। ज्ञाता द्वारा ज्ञेय के निरीक्षण से ज्ञाता और ज्ञेय दोनों परिवर्तित हो जाते हैं और किसी भी समय दोनों की तात्कालिक स्थिति का संपूर्ण रूप से वर्णन करना असम्भव है।

जैन दर्शन पाँच प्रकार के ज्ञान को मानता है: मतिज्ञान (इन्द्रिय ज्ञान), श्रुतज्ञान (धार्मिक ग्रन्थों या गुरू से प्राप्त ज्ञान), अवधिज्ञान (समयातीत, स्थानातीत ज्ञान), मनः पर्यायज्ञान (टेलीपैथी) और केवलज्ञान (सर्वज्ञता)। मति और श्रुत ज्ञान दोनों इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान हैं और अवधि, मनः पर्याय और केवल ज्ञान इन्द्रियातीत हैं।

प्रमुख ग्रंथियां और चक्र

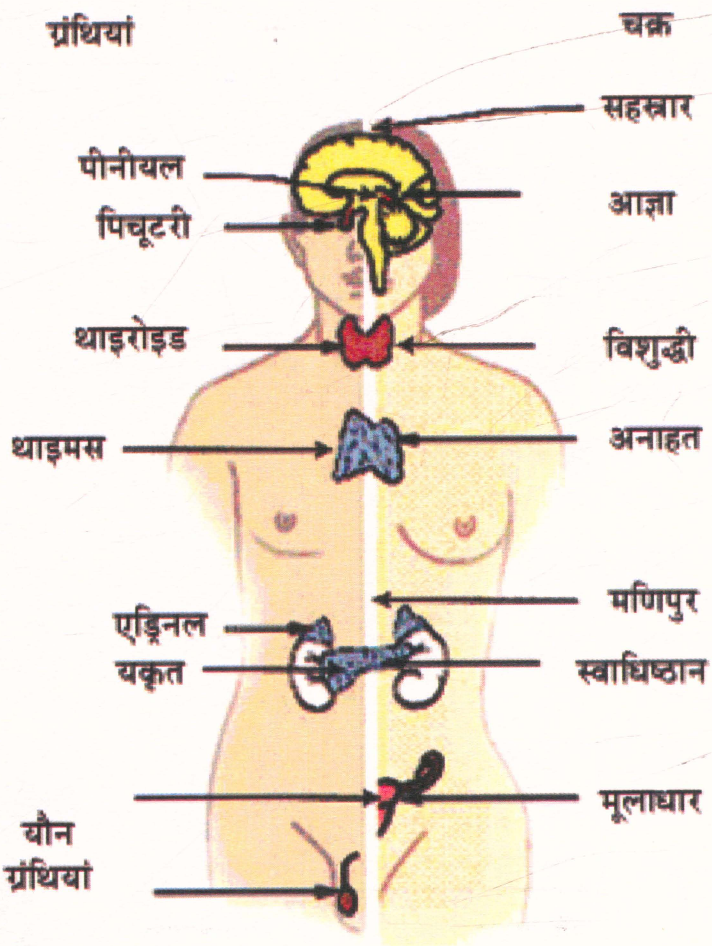

चित्र 6.2 : शरीर के विभिन्न चक्र (दायें), शारीरिक ग्रन्थियों (बायें), से मेल खाते हैं जो भिन्न भिन्न योगासनों द्वारा सक्रिय किये जा सकते हैं। चित्र में सात प्रमुख चक्र दर्शाये गये हैं।

मति ज्ञान : यह आदिम, सहज ज्ञान है जिसके साथ जीव जन्म लेता है, और जो इन्द्रियों का वातावरण से सम्पर्क में आने से उत्पन्न होता है। क्षुद्र प्राचीनतम जीवों जैसे एक कोषीय काई में भी यह किसी न किसी प्रमाण में पाया जाता है।

श्रुत ज्ञान : यह अन्य व्यक्तियों या शास्त्रों से सीखा जा सकता है। इससे चेतना का विकास होता है और धीरे धीरे यह मतिज्ञान का अंग बन जाता है। अधिकतर जीव वातावरण से प्रक्रिया द्वारा और कुछ उच्च श्रेणी के जीव इसे गुरू या शास्त्रों के अध्ययन से सीखते हैं।

अवधि ज्ञान (दिव्य दृष्टि) : यह समयातीत और स्थानातीत ज्ञान है। कुछ सीमा तक यह इन्द्रियज्ञान है जो मन अभ्यास द्वारा सीख लेता है और कुछ सिद्धियाँ प्राप्त होने से उपलब्ध होता है। बहुत से वैज्ञानिक भूत और भविष्य काल में जगत में क्या होने वाला है उसका अनुमान या गणना सुनने या देखने के इन्द्रिय शक्तिवर्धक यंत्रों के उपयोग से कर सकते हैं पर अधिकांश रूप से यह इन्द्रियातीत ज्ञान है।

मन:पर्याय ज्ञान: यह पूर्णतया चेतना की क्षमता है। जब कोई पूर्णरूप से अहिंसा का पालन करता है तो वह दूसरों के विचार जान सकता है। जब कोई शरीर और मन से, ज्ञान के अतिरिक्त, सभी सम्बंध तोड़ लेता है तब वह ऐसी चैतन्य अवस्था को उपलब्ध हो जाता है जिसमें मनःपर्याय ज्ञान स्वतः अवतरित होता है। यह ज्ञान अतिन्द्रीय है और इन्द्रियों से नहीं बल्कि सीधे चेतना से ग्रहण किया जाता है।

केवल ज्ञान: यह ऐसी अवस्था है जिसमें सभी द्रव्यों (जीव, अजीव) के सभी स्वरूप, भूत, भविष्य और वर्तमान में और पूरे जगत में सभी स्थानों पर एक साथ "दृष्टि गोचर" होते हैं। यह समाधि की अवस्था में उपलब्ध होता है। इसकी उपलब्धि के लिये सभी कर्मों (द्रव्य और भाव कर्म) का उन्मूलन होना आवश्यक है और उनकी लेश मात्र उपस्थिति भी इसकी उपलब्धि में बाधा पहुँचाती है। यही सर्वज्ञता है।

भावना

जो व्यक्ति जिन पथ का अनुसरण करता है उसकी अपने, दूसरों के और जगत के प्रति भावना बदल जाती है। वह किसी भी कार्य में लगा हो, हर समय उसका ध्यान जैन धर्म के बुनियादी सिद्धान्तों में लगा रहता है जो बारह भावनाओं में निहित है। इन भावनाओं का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार किया जाता है।

"ए आत्मा ! जो भी तुम्हें आस पास दिखाई देता है वह क्षण भंगुर है। यह सब कुछ संयोगों के कारण अस्तित्व में आता है और अनित्य है। तू नितान्त अकेला है और इस जगत में तुम्हें शरण देने वाला कोई भी नहीं। तुम्हारा कर्म ही तुम्हारा संरक्षक है और तुम्हें बचा सकता है। इस संसार में कोई सुख नहीं है और यहाँ सभी पराये हैं। यह शरीर जिसमें तुम निवास करते हो, हड्डी, मांस, रक्त और मल का घर है। यह जीवित और सुन्दर इसीलिए लगता है क्योंकि इसमें तुम्हारा निवास है। यहाँ सब कोई तुम्हें राग, द्वेष, मोह और क्रोध में लिप्त करने में लगा है। इस सबको मिथ्या मानकर तू स्वयं पर ध्यान लगा। तपस्या द्वारा सांसारिक बंधन से मुक्त होकर और जप, तप, शील, संयम और त्याग का अभ्यास कर अपनी चेतना में विचरण कर और इस प्रकार सम्यक-दर्शन, सम्यक-ज्ञान और सम्यक-चारित्र को प्राप्त कर, अनेकान्त से युक्त होकर, धर्म की राह पर चल कर, स्यादवाद का अनुसरण कर,

सब कर्म बन्धन का नाशकर, पूर्णतया मुक्त होकर सिद्ध शिला में निवास कर।"

जीवन अनित्य है यह सबको पता है। हम यह भी जानते हैं कि मृत्यु अवश्यम्भावी है पर वह कब और कैसे आयेगी इसका कुछ निश्चय नहीं। यह धारणा निरंतर ध्यान में रखने से जिनत्व प्राप्ति के प्रयास में प्रेरणा मिलती है।

मोक्ष

जैन पथ का अनुसरण करने से आत्मा अच्छे और बुरे सब कर्म बंधनों से मुक्त हो जाती है और उसका सब द्रव्याणुओं से, यहाँ तक कि सूक्ष्म कर्माणुओं से भी विच्छेद हो जाता है। इस अवस्था में आत्मा, भूत, भविष्य और वर्तमान को बिना इन्द्रियों की सहायता से, एक साथ "देखने" में समर्थ होती है। तब आत्मा पूर्णतः शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर चेतना के उच्चतम शिखर पर पहुँच जाती है। यह अहोभाव अंधे व्यक्ति के देखने की क्षमता पा जाने जैसा है। प्रत्येक वस्तु का तत्त्व स्वरूप जान लेना, यह एक कारण ही सर्वज्ञता प्राप्ति के प्रयास की ओर और मोक्ष की राह पर अग्रसर होने के लिए काफी है। सर्वज्ञता की इस स्थिति में आत्मा सम्यक दर्शन को उपलब्ध हो जाती है और साथ ही उसको अनन्त शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। आत्मा अनन्त मात्रा में ज्ञान, आनन्द, चैतन्य और वीर्य का स्वामी हो जाती है। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति के पश्चात आत्मा को जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिल जाती है और वह परमानन्द की अवस्था में, सनातन रूप से ब्रह्माण्ड के ऊपरी भाग में स्थित सिद्ध शिला में निवास करती है। ऐसा लगता है कि प्रकृति का परम लक्ष्य आत्मा और पदार्थ को पृथक कर उन्हें विशुद्ध रूप में लाना है। शुद्ध आत्माएं सिद्धशिला में जाकर वहाँ स्थित हो जाती हैं और पदार्थ लोक में व्याप्त रहता है।

जैन साधना के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रभाव:

जैन दर्शन के अनुसार शरीर एक बहुस्तरीय तन्त्र है। पिछले अध्याय में उल्लेखित तप आदि भोजन सम्बधी क्रियायें, ध्यान, मौन, सामायिक आदि मानसिक क्रियायें जो कर्म से मुक्ति के लिए निर्देशित की गई हैं, शरीर, मन और आत्मा को सभी स्तरों पर प्रभावित करती हैं। ये प्रभाव निश्चित रूप से प्रमाणित किये जा चुके हैं पर इनका कोई रिकार्ड उपलब्ध नहीं है। शारीरिक स्तर पर ये साधनाएँ चक्रों को सक्रिय करती हैं और पाचन क्रिया को संवर्धित करती है (चित्र 6.2) और ऑक्सीजन का उपयोग, रक्तचाप, मधुमेह आदि शारीरिक मापदंडो में सुधार करती है; मानसिक प्रभावों में ईईजी (electroencephalogram) जिससे अल्फा (Alpha) और थीटा (Theta) तरंगें स्थिर हो जाती है, ध्यानावस्था में प्रगति और विषम परिस्थितियों का शान्त मन से सहने की शक्ति आदि हैं। आध्यात्मिक प्रभावों में कई प्रकार की सिद्धियां और उच्चतर गुणस्थानों की उपलब्धि शामिल है। इन सभी विषयों पर विस्तृत अध्ययन और उनको वैज्ञानिक दृष्टि से प्रमाणित करने की आवश्यकता है।

7

जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के पहले धर्म (नियम)था।
भौतिक विज्ञान के नियमों के अतिरिक्त जगत में कुछ भी शाश्वत नहीं है।
न तो आकाश और न ही काल निरपेक्ष है। सभी संदर्भ पर आश्रित हैं।

जैन दर्शन का वैज्ञानिक आधार
द्रव्य का स्वरूप, वैज्ञानिक सूत्र,
जैन दर्शन और आधुनिक भौतिकशास्त्र

विज्ञान सही अर्थ में सार्वजनिक है क्योंकि वह कुछ नियमों पर आधारित है जो व्यक्तिनिष्ठ नहीं है। यह नियम सभी स्थान पर, सभी काल में लागू होते हैं और सर्वमान्य हैं। हमने इस पुस्तक का आरम्भ ऐसे ही कथन के साथ किया कि जैन धर्म भी सार्वजनिक है, कुछ शाश्वत नियमों पर आधारित है जो व्यक्तिनिष्ठ नहीं हैं। इस अर्थ में जैन दर्शन का दृष्टिकोण विज्ञान संगत है। इसलिये यह उचित होगा कि हम विज्ञान और जैन दर्शन के बीच कुछ समानताएं ढूंढें। इस अध्याय का उद्देश्य ऐसी समानताओं का समीक्षा करना है।

जैन दर्शन विश्व को दो द्रव्यों में विभक्त करता है, जीव और अजीव और दोनों ही विज्ञान का विषय है। जीव और अजीव दोनों का सच्चा स्वरूप बहुमुखी, अनन्त गुणों से युक्त, अनेकान्तवाद द्वारा प्ररूपित और स्यादवाद द्वारा वर्णित सांदर्भिक सम्बंधवाला है जिसे सप्तभंगी नयों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। यह नियम कई जैन शास्त्रों (जैसे कि भगवती सूत्र) में दिये गये हैं पर भौतिक धारणाएं उमास्वाति रचित तत्त्वार्थ सूत्र में, जो लगभग 1800 वर्ष पूर्व लिखा गया था, सर्वश्रेष्ठ रूप में सूत्रबद्ध की गई हैं। तत्त्वार्थ सूत्र का पाँचवा अध्याय भौतिक विज्ञान को सम्बोधित करता है। हम इस पुस्तक के आधार पर विज्ञान और जैन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

जहाँ तक भौतिक जगत का सम्बंध है, विज्ञान की यह दृढ धारणा है कि सब कुछ नियमों के आधीन संचालित होता है। विज्ञान ब्रह्माण्ड के तत्त्वों में पदार्थ (ऊर्जा और पदार्थ परस्पर परिवर्तनीय हैं), तीन प्रकार के बल: गुरुत्वाकर्षण, विद्युतीय (जिसमें चुम्बकीय और दुर्बल नाभिकीय (weak nuclear) बल शामिल हैं), और सबल नाभिकीय (strong nuclear) और उनके क्षेत्र, आकाश और काल के अस्तित्व को स्वीकार करता है। यह सम्भव है कि दोनों, आकर्षक और विकर्षक बल,

एक ही मूल बल के रूप हों, जैसे कि विद्युतीय, चुम्बकीय और दुर्बल नाभिकीय बलों का एक ही इलेक्ट्रोवीक बल में एकीकरण कर दिया गया है जो पहले स्वतन्त्र समझे जाते थे। इस प्रकार भौतिक जगत के चार तत्त्व आकाश, पदार्थ (और ऊर्जा), बल-क्षेत्र और काल माने जाते हैं। इसकी तुलना में जैन दर्शन की धारणा है कि अजीव जगत पाँच द्रव्यों: आकाश, पदार्थ, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और काल से बना है।

इस प्रकार विज्ञान और जैन दर्शन में जगत के तीन द्रव्यों में, अर्थात आकाश, पदार्थ और काल में तो सहमति है, पर उन्नीसवीं सदी में माईकलसन और मोरले नाम के वैज्ञानिकों ने "गति के माध्यम" जैसा प्रस्तावित सर्वव्यापी द्रव्य का जो कि कुछ विद्वानों द्वारा धर्मास्तिकाय के अनुरूप समझा जाता है, प्रयोगों द्वारा न होना सिद्ध कर दिया था। और अधर्मास्तिकाय, (स्थिरता का माध्यम) क्या है इसका हमें कुछ भी भान नहीं है।

विज्ञान ने पिछले चार सौ वर्षों में जबरदस्त प्रगति की है और पदार्थ के गुण अच्छी तरह समझे जा चुके हैं। विज्ञान के अनुसार पदार्थ को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: स्थूल एवं सूक्ष्म, जहाँ क्रमशः क्लासिकल और क्वान्टम फिजिक्स लागू होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म के इस प्राकृतिक विभाजन को समझने के लिये हम यहाँ क्वान्टम मिकेनिक्स के विकास के ऐतिहासिक पहलुओं, महत्वपूर्ण धारणाओं और सिद्धान्तों पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

स्थूल और सूक्ष्म पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण

ब्रह्माण्ड में पदार्थ लघुत्तम (प्राथमिक कण) अदृश्य कणों से विशालतम अपरिमेय पिंडों में बिखरा पड़ा है। अब तक सबसे लघुत्तम तत्त्वाणु क्वार्क माने जाते हैं पर उनसे भी छोटे कणों की सम्भावना पर अनुसंधान जारी है। सबसे बड़ा तो, परिभाषा के अनुसार, युनिवर्स या ब्रह्माण्ड ही है पर आजकल वैज्ञानिक मल्टीवर्स की बात कर रहे हैं जो कि युनिवर्स का समूह है। खगोलिक अनुसंधान से पता चला है कि हमारा युनिवर्स लगभग चौदह अरब वर्ष पहले एक महान विस्फोट से, जिसे बिग बेंग (Big Bang) का नाम दिया गया है, उत्पन्न हुआ था। इसमें लगभग 200 अरब निहारिकाएँ हैं, और प्रत्येक निहारिका में 100 अरब से भी अधिक तारे और उससे भी कहीं अधिक ग्रह पिण्ड हैं (चित्र 7.1)।

ब्रह्माण्ड का सब द्रव्य हजारों रासायनिक यौगिकों, सैकड़ों खनिजों और सौ से अधिक तत्त्वों से बना है। दृश्यमान ब्रह्माण्ड के अनेकानेक विविध घटक 118 तत्त्वों से बने हैं। इन में 92 स्थाई और दीर्घायु रेडियोधर्मी तत्त्व और 26 लघुआयु तत्त्व जो विभन्न तारों में नाभिकीय क्रियाओं से संश्लेषित होते हैं पर अब पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से अनुपस्थित हैं। जगत में पदार्थ और जीव की विशाल

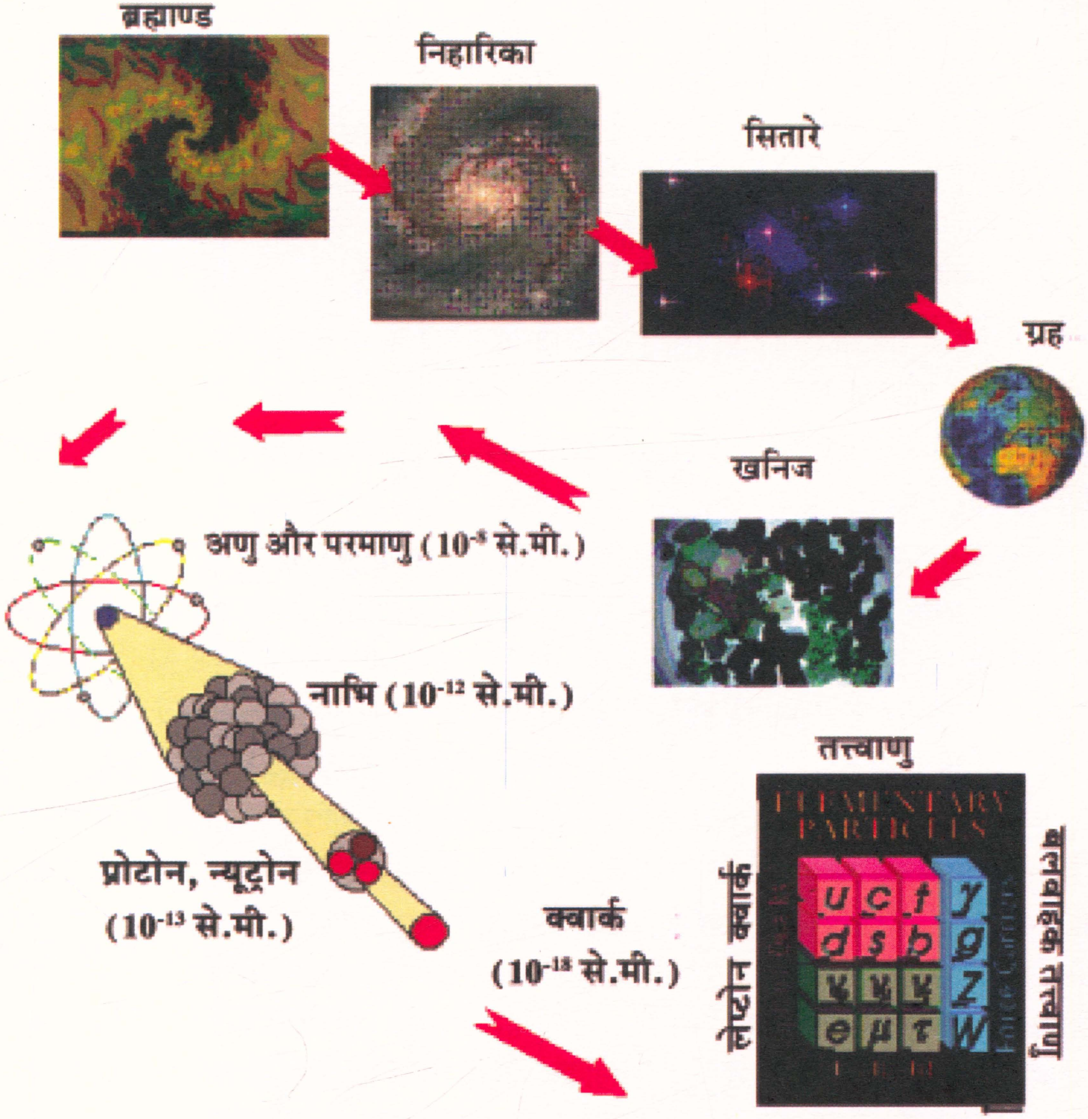

चित्र 7.1 स्थूल से सूक्ष्म जगत के विभिन्न घटक। साठ तत्त्वाणु (क्वार्क, ग्लूओन और बलवाहक कण और उनके प्रतिरोधी कण नीचे दाहिने डिब्बे में उनके गुणों के क्रमानुसार उनके संकेताक्षरों (u, c, t, γ आदि) से दर्शाये गये हैं। अब तक सबसे लघुत्तम तत्त्वाणु क्वार्क माना जाता है।

विविधता का वटवृक्ष केवल एक सौ तत्त्वों से गठन होने की सम्भावना ने दाशर्निकों को यह सोचने पर मज़बूर किया कि शायद इन सब का मूल केवल एक ही तत्त्वाणु हो। यह धारणा डाल्टन के अणुवाद का मूल कारण था। इस तत्त्वाणु की प्रारम्भिक खोज काफी संतोष जनक रही और ऐसी धारणा बनी कि सब पदार्थों का बुनियादी तत्त्व शायद हाईड्रोजन ही है जिससे सभी तत्त्व बने हैं। जैसे जैसे इस

आधारभूत तत्त्व की खोज में प्रगति हुई, ऐसे तीन तत्त्वाणु अर्थात प्रोटोन, इलेक्ट्रोन और न्यूट्रोन मिले जिनसे सारे के सारे 118 तत्त्व और उनके लगभग 2000 आइसोटोप निर्मित किये जा सके। अलग अलग अनुपातों में यह त्रिमूर्ति जगत को निर्मित करने में सक्षम थी। इससे एकान्तवाद अर्थात एक से अनेक बनने की धारणा की पुष्टि होने में सहायता मिली। परन्तु जैसे जैसे यह अनुसंधान आगे बढ़ा, गम्भीर समस्याएं उठने लगी। उच्च ऊर्जा वाली गतिवर्धक मशीनों की सहायता से वैज्ञानिकों ने 1960 तक सैंकड़ों तत्त्वाणु खोज निकाले। केवल 100 तत्त्वों को बनाने में इतने अधिक तत्त्वाणुओं की आवश्यकता कुछ अजीब सी लगी और इसलिए यह विचार उठा कि ये तत्त्वाणु कुछ थोड़े से आधारभूत कणों से बने होंगे। शीघ्र ही कुछ क्वार्क और ग्लुओन खोज लिए गये और अब ऐसा लगता है कि पूरे जगत का केवल 61 तत्त्वाणुओं से निर्माण किया जा सकता है जो चित्र 7.1 में दर्शाए गये हैं। इनकी हम बाद में विस्तार से चर्चा करेंगे।

लौकिक जगत अर्थात पत्थर, खनिज, ग्रह-उपग्रह, तारालोक, निहारिकाएं और स्थूल ब्रह्माण्ड क्लासिकल फिजिक्स के नियमों का पालन करता है। मूल रूप से स्थूल जगत की दशा हम उसके विभिन्न अवयवों की दशा के योग से जान सकते हैं। यदि सभी अवयवों या अंशों की पिण्डमात्रा (mass, m), गति (velocity, v) और स्थान निर्देशांक (coordinate, x) पता हो तो उस पूर्ण तन्त्र की स्थिति योग द्वारा की जा सकती है अर्थात पूर्ण = योग $(m, v, x)_{\text{अंश}}$।

स्थूल पदार्थ के कुछ ही गुण होते हैं जैसे रूप, पिण्डमात्रा, ऊर्जा आदि जो समय के साथ बदलते रहते हैं। पिण्डमात्रा का उद्भव कैसे होता है यह अभी तक समझा नहीं जा सका है। जर्मन भौतिक शास्त्री अर्नष्ट माक ने यह प्रस्ताव रखा कि किसी वस्तु का पिण्ड, ब्रह्माण्ड के बाकी सभी पिण्डों की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होता है। अर्थात् यह एक प्रतिक्रियावादी गुण है। हैलर ने इसको परिभाषित करते हुए लिखा कि "ब्रह्माण्ड में सभी पदार्थों का वितरण व गति स्थानीय जड़ता का संदर्भ निर्धारित करते हैं।" आइन्स्टीन ने इसे सूत्रान्वित करते हुए लिखा कि "किसी पिण्ड की मात्रा ब्रह्माण्ड के सभी पिण्डों की मात्रा का प्रभाव है और एक प्रकार की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होती है।" माक के इस सिद्धान्त को अभी तक सिद्ध नहीं किया जा सका है पर कहा जाता है कि आइन्स्टीन के सापेक्षतावाद के सिद्धान्त के विकास में इससे बहुत प्रेरणा मिली।

जैसे जैसे हम अणु या तत्त्वाणुओं के स्तर पर जाते हैं, कुछ और नए सिद्धान्त प्रभाव में आने शुरू हो जाते हैं। सामान्य क्लासिकल फिजिक्स काम नहीं करती और क्वान्टम फिजिक्स का सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकार भौतिक नियमों को स्थूल (अणु से बड़े) पदार्थों के लिए क्लासिकल फिजिक्स व सूक्ष्म (तत्त्वाणुओं आदि) पदार्थों के लिए क्वान्टम फिजिक्स में विभक्त किया जा सकता है। क्लासिकल फिजिक्स में यह अवधारणा कि "एक कण एक स्थान x पर है" या तो सत्य या असत्य

होता है । इसकी तुलना में क्वान्टस फिजिक्स में हम केवल यही कह सकते है कि यदि स्थान x पर देखें तो उस कण के वहाँ स्थित होने की संभावना शून्य और पूर्ण के बीच होगी। अर्थात वह वहाँ हो भी सकता है, और नहीं भी हो सकता है। सामान्य धारणाएं क्वान्टम की दुनिया में लागू नहीं होती। इस प्रकार क्वान्टम की दुनिया सामान्य, यांत्रिक, न्यूटन की दुनिया नहीं है जहां क्रियायें यांत्रिक नियमों का अनुसरण करती हैं पर वहाँ ऐसे गुण प्रकट होते हैं जो उनका परीक्षण करने से भी प्रभावित हो जाते हैं। इस प्रकार तत्त्वाणुओं का व्यवहार उनको परखने से बदल जाता है। यह जीव और अजीव की परस्पर होनेवाली प्रतिक्रियाओं को समझने का पहला चरण है।

क्वान्टम यांत्रिकी (Quantum mechanics)

क्वान्टम यांत्रिकी ज्ञान की निश्चयता पर गंभीर प्रश्न उठाता है। इसमें दो सिद्धान्त जो इस प्रसंग में समझने योग्य हैं उनका मोटे तौर पर इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है। पहला सिद्धान्त ब्रह्माण्ड का अस्तित्व तब तक नहीं है जब तक उसको देखा न जाय, "श्रोडिन्गर की बिल्ली" की पहेली पर आधारित है (लोकप्रिय वर्णन के लिए ग्रिबिन (1993) की पुस्तक देखें)। इसका सांराश यह है कि ज्ञेय और ज्ञाता युगल रूप में एक साथ अस्तित्व में आते हैं अर्थात एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। दूसरा सिद्धान्त यह है कि तवाणु भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भिन्न भिन्न समय पर भिन्न भिन्न प्रकार से आचरण करते हैं। यह सुप्रसिद्ध दो दरारों वाले प्रयोग से स्पष्ट हो जाता है जो क्वान्टम यांत्रिकी और कण-तरंग द्वंद्व का आधार है।

क्वान्टम अंक

सामान्य गुण जैसे पिण्डमात्रा (mass), विद्युत (electric charge), गति आदि के अलावा तत्त्वाणुओं में और कई गुण होते हैं जो क्वान्टम अंकों से लक्षित किये जाते हैं। ये अंक (ढलान की तरह) निरंतर सतत रूप से नहीं बदलते पर सीढ़ी के पायदान की तरह पूर्णांक से बदलते हैं अर्थात 1/2 या 1 के गुणांकों से ही बढ़ते-घटते हैं जो कि क्वांटम यांत्रिकी की प्रमुख अवधारणा है। इस सूक्ष्म जगत में चूंकि हम भौतिकशास्त्र के अज्ञात क्षेत्र में विचरण कर रहे हैं जिसमें गुणों का नामकरण अनुसंधानकर्ता की कल्पना के अनुसार किया गया है अतः हमें उसके शाब्दिक अर्थ को गम्भीरता पूर्वक नहीं लेना चाहिये। इस प्रकार चक्रण (spin) का अर्थ भौतिक रूप से धुरी पर घूमना आवश्यक नहीं है। और भी कई प्रकार के क्वान्टम अंक हैं जैसे आइसोस्पिन और स्थानिक (कक्षीय) क्वान्टम अंक।

क्वार्क, लेप्टोन और ग्लूओन आजकल पदार्थ के आधारभूत निर्माण-घटक जाने जाते है जिनसे भौतिक जगत के सभी द्रव्यों का गठन किया जा सकता है। प्रोटोन, इलेक्ट्रोन और न्यूट्रोन तीनों ही छः

क्वार्क और छः ग्लूओन से बनाए जा सकते हैं। अमरीकी वैज्ञानिक गेलमेन आदि द्वारा दिया गया तत्त्वाणुओं का आधुनिक मोडल तीन प्रणाली के क्वार्क और लेप्टोन का होना मानता है। लेप्टोन समूह में इलेक्ट्रोन जैसे तत्त्वाणु, जिन्हें मेसोन और उनसे सम्बधित पिण्डविहीन या कम पिण्डवाले न्यूट्रीनो शामिल हैं।

प्रथम प्रणाली

क्वार्क : डाउन और अप क्वार्क

लेप्टोन : इलेक्ट्रोन (e) और उसका न्यूट्रीनो (ν_e)

द्वितीय प्रणाली

क्वार्क : स्ट्रेन्ज और चार्म क्वार्क

लेप्टोन : म्यु मेसोन (μ) और उसका न्यूट्रीनो (ν_μ)

त्रितीय प्रणाली

क्वार्क : बोटम और टॉप क्वार्क

लेप्टोन : टाउ (τ) और उसका न्यूट्रीनो (ν_τ)

ये छः क्वार्क तीन रंगों (एक प्रकार का क्वान्टम अंक) के होते हैं जिनके लिये सांकेतिक रूप से लाल, नीला और पीला रंग का प्रयोग किया जाता है, यद्यपि ये वास्तव में रंगीन नहीं हैं। इस प्रकार ये सब मिलकर 18 हुए। 18 क्वार्क और छः लेप्टोन और उनके प्रतिरोधी (anti) तत्त्वाणु कुल मिलाकर 48 तत्त्वाणु हुए। आठ प्रकार के ग्लूओन जो वाहक तत्त्वाणु का कार्य करते हैं जिनमें W बोसोन, Z^0 और प्रकाश का कण (फोटोन) जो विद्युत चुम्बकीय वाहक तत्त्वाणु है इस प्रकार कुल साठ तत्त्वाणुओं की खोज की जा चुकी है, जिनसे सारे ब्रह्माण्ड की रचना की जा सकती है। इनमें एक वाहक अणु ग्रेवीटोन जोड़ा जाना चाहिये जो गुरुत्वाकर्षक क्षेत्र का प्रत्याशित वाहक तत्त्वाणु है पर जिसकी अभी तक खोज नहीं हो पाई है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के 61 तत्त्वाणु हुए।

छः प्रकार के क्वार्कों का नाम अप, डाउन, टॉप, बोटम, स्ट्रेन्ज और चार्म रखा गया है पर अप (up : ऊपर) का वास्तव में अर्थ ऊपर नहीं है और बोटम का अर्थ नीचे नहीं है। ये केवल नाम हैं जो यह इंगित करते हैं कि इनके कुछ गुण भिन्न हैं। इसलिए इन का भाषाई अर्थ नहीं मानना चाहिये। इसी प्रकार रंग और गंध (colour and flavour) आदि क्वांटम अंको का उनके भाषाई अर्थ से कोई सम्बंध नहीं है। कलर (रंग) वास्तव में एक प्रकार का बल है और गंध एक गुण। इसलिए जब हम विशिष्ट रंगों की बात करते हैं, (सामान्यतः लाल नीला या पीला क्वार्क), तो इसका केवल यह अर्थ है कि वे एक प्रकार के शक्तिशाली नाभिकीय (strong nuclear) बल से विभिन्न सीमा तक प्रभावित

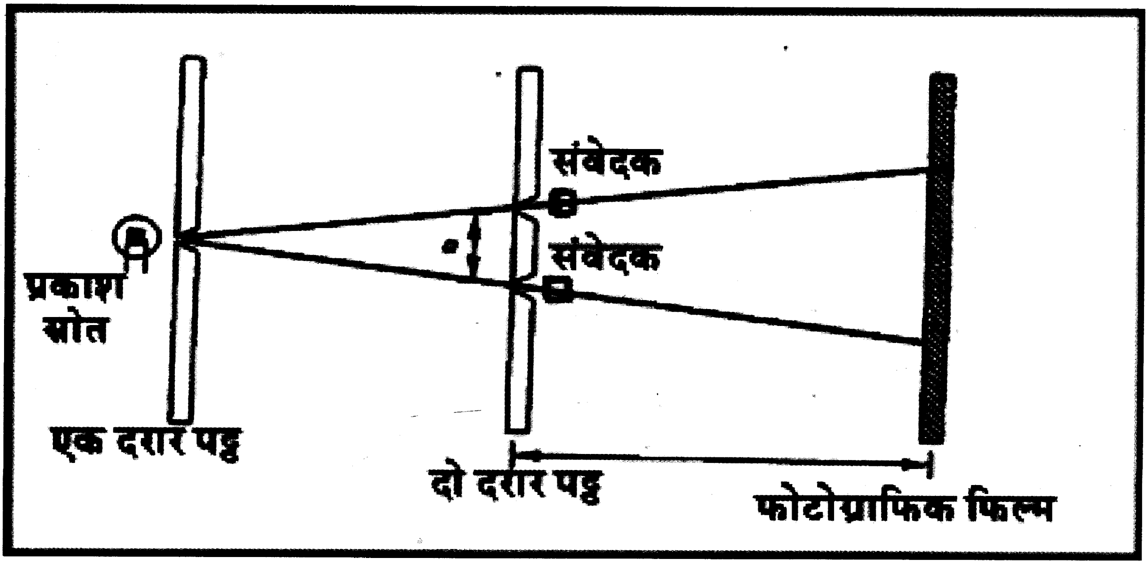

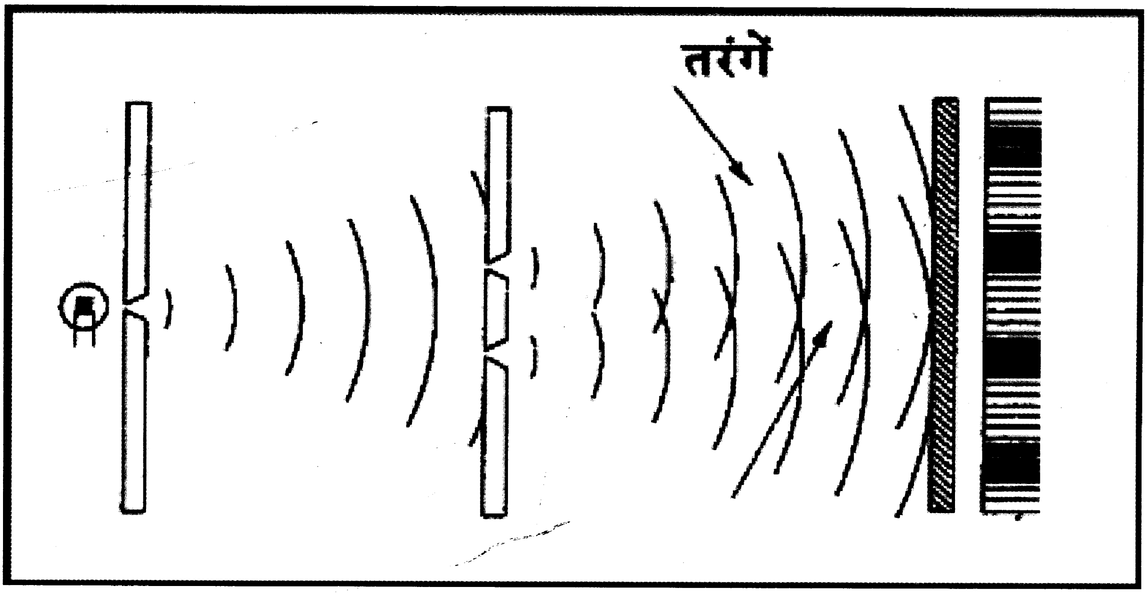

चित्र 7.2: दो दरारों (या दो छिद्रों) वाला प्रयोग जो तत्त्वाणुओं के द्वन्द्वात्मक गुण को सिद्ध करता है जिसमें एक गुण पदार्थ का है और दूसरा तरंग का। प्रकाश के तत्त्वाणु फोटोन (या विद्युत के तत्त्वाणु, इलेक्ट्रोन) जब एक दरार में से गुजर कर दूसरी ओर रखी फिल्म पर गिरते हैं तो एक उज्ज्वल रेखा बनाते हैं। जब दूसरी दरार खोल दी जाती है तो वह रेखा गायब हो जाती है और काली और उज्ज्वल समानान्तर रेखाओं का एक पेटर्न बन जाता है, जैसा तरंगों की इन्टरफेरेंस से अपेक्षित है। जब दरारों के पीछे संवेदक लगा दिये जाते हैं तो फिल्म पर फिर उज्ज्वल रेखाएं बन जाती हैं जो तत्त्वाणु के पदार्थ कण होने के द्योतक हैं (ऊपर का चित्र), और जब संवेदक हटा दिये जाते हैं तो फिर वे तरंगों जैसा व्यवहार करने लगते हैं।

होते हैं क्योंकि वह तीनों भिन्न भिन्न प्रकृति के हैं। इसी प्रकार ग्लूओन की गंध (flavour) को उनके अलग अलग गुणों के संदर्भ में समझना चाहिये। ये गुण सामान्यज्ञान के संदर्भ में क्या हैं उसकी न तो व्याख्या की जा सकती है न ही कल्पना। यह विवादास्पद विषय है। इनको अव्यक्त कहना ही उचित होगा। इस विवेचना का प्रमुख ध्येय यह बतलाना है कि जैसे जैसे हम सूक्ष्मतर तत्त्वाणुओं की बात करते हैं तो उनके नये नये गुण प्रकट होते हैं और उन गुणों की संख्या सूक्ष्मता के साथ बढ़ती जाती है। यह अनेकान्तवाद के सिद्धान्त के अनुरूप प्रतीत होता है।

कुछ क्वान्टम प्रक्रियायें भाषा द्वारा वर्णित नहीं की जा सकती और तर्क संगत नहीं लगती। वे सामान्य तर्क से नहीं समझी जा सकती। हम केवल यह कह सकते हैं कि कदाचित इस संदर्भ में ऐसा होता है। यह कथन स्यादवाद के अनुरूप है। कुछ स्थितियाँ निश्चयात्मक रूप से वर्णित नहीं की जा सकती और जैन दर्शन के सप्तभंगी नय के अनुरूप हैं।

सूक्ष्म जगत में तत्त्वाणुओं के आचरण को परिभाषित करने के लिये कुछ नए सिद्धान्तों को विकसित करना पड़ा। समरूपता (Symmetry) और पूरकता (Complementarity) के सिद्धान्तों की सूक्ष्म जगत में महत्वपूर्ण भूमिका तो है ही पर इनके अतिरिक्त हाइज़नबर्ग का अनिश्चितता का सिद्धान्त (Principle of Uncertainty), पौली का बहिष्कार का सिद्धान्त (Pauli's Exclusion Principle), उलझत्व का सिद्धान्त (Entanglement) आदि प्रमुख हैं। क्वान्टम आचरण का विवेचन करने से पहले हम इन सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे जो ब्रह्माण्ड का स्वरूप समझने में सहायक हुए हैं।

1. पूरक सिद्धान्त (Principle of Complementarity)
2. समरूपता का सिद्धान्त (Principle of Symmetry)
3. अनिश्चितता का सिद्धान्त (Principle of Uncertainty)
4. बहिष्कार का सिद्धान्त (Exclusion Principle)
5. उलझत्ववाद (Entanglement)

पूरक सिद्धान्त

पूरक सिद्धान्त के अनुसार पूर्णता के लिये विरोधी गुणों का समावेश करना आवश्यक है। इसके अनुसार विरोधी गुण एक दूसरे के पूरक होते हैं और दोनों मिलकर विश्व के स्वरूप का पूर्ण रूप से वर्णन करते हैं। नील्स बोह्र को, जिसने क्वान्टम यांत्रिकी को प्रस्तावित किया, विरोधाभासी गुणों की व्याख्या करने में बहुत कठिनाई हुई और उसने पूरकता के सिद्धान्त का सहारा लिया जो कि आधुनिक भौतिक शास्त्र की अत्यन्त क्रान्तिकारी और महत्वपूर्ण अवधारणा मानी जाती है। पश्चिमी दार्शनिकों और वैज्ञानिकों को इसे समझने में और क्वान्टम यांत्रिकी का विकास करने में बहुत कठिनाई हुई। जैसा

कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, कुछ प्रयोगों ने विरोधाभासी परिणाम दिये और इस ओर इशारा किया कि प्रकाश के तत्त्वाणु (फोटोन या ईलेक्ट्रोन आदि) कभी एक सघन कण या ठोस गेंद की तरह और कभी एक तरंग, जैसी कि तालाब में उठती लहर, की तरह आचरण करते हैं।

उस सुप्रसिद्ध दोहरी दरार (slit) वाले प्रयोग में (चित्र 7.2) फोटोन की एक किरण दो दरारों को प्रकाशित करती है और दरारों के पीछे रखी फिल्म से जा टकराती है। यह प्रयोग दो तरह से किया जा सकता है: एक तो फोटोन संवेदक दरारों के ठीक पीछे रखकर ताकि जैसे ही फोटोन दरार में से गुजरें, उनका परीक्षण किया जा सके और दूसरा बिना फोटोन संवेदकों के, ताकि फोटोन बिना अवलोकन के दरार में से गुजर सकें। जब संवेदकों का उपयोग किया गया तो प्रत्येक तत्त्वाणु एक या दूसरी दरार में से गुजरता हुआ देखा गया और इससे लगा कि प्रकाश के तत्त्वाणु सघन कण की तरह आचरण करते हैं। परंतु जब संवेदक हटा दिये गये, तब फिल्म पर बारी बारी से उज्जवल और काली रेखाओं का पैटर्न बन गया जो कि प्रकाश तरंगो के इन्टरफेरेंस से बनता है। यह पैटर्न दर्शाता है कि फोटोन तरंगों की तरह बर्ताव कर रहे हैं जिसमें एकाकी फोटोन फैलकर दोनों दरारों पर एक साथ गिरता है (चित्र 7.2)। इस प्रयोग का परिणाम वैज्ञानिकों की इच्छा पर निर्भर है कि वे फोटोन को किस रूप में देखना चाहते हैं, कण या तरंग। परन्तु अजीव फोटोन यह कैसे जान पाते हैं कि उनको किस प्रकार का आचरण करना है, या कि उनका संवेदकों से परीक्षण किया जा रहा है या नहीं। यह एक रहस्य बना हुआ है। जीवों की निगरानी रखने पर उनके आचरण में परिवर्तन एक जानी मानी मानसिक प्रक्रिया है पर अवलोकन करने पर पदार्थ के आचरण में परिवर्तन चौंकाने वाला है। क्या इसका अर्थ यह है कि पदार्थ में भी मानसिकता है? वैज्ञानिक इस धारणा से सहमत नहीं हैं और इसे गुणों की विविधता का परिणाम मानते हैं।

प्रकाश की इस द्विविधता में सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाया क्योंकि कणों और तरंगों को एक दूसरे से विपरीत माना जाता है। बोह्र ने इसको "विरोधाभास में पूरकता है" कह कर समझाया और यिन और यांग की चीनी अवधारणा (चित्र 3.1) को अपनाया जिसमें यिन और यांग दोनों सब गुणों में विरोधी हैं पर सहअस्तित्व में रहते हैं और पूर्णता के लिये दोनों ही आवश्यक हैं। यह अनेकान्तवाद के सिद्धान्त के अन्तर्गत समझा जा सकता है जो स्वीकार करता है कि विरोधाभासी और चरम गुण प्रकृति के सच्चे स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि जैन दर्शन में प्रतिपादित किया गया है वास्तविकता भिन्न भिन्न गुणों के रूप में भिन्न भिन्न समय पर प्रकट होती है। यह ध्यान में लाने योग्य है कि उसकी तुलना में बौद्ध धर्म में चरमता को त्यागकर, बुद्ध ने "स्वर्णिम मध्यमार्ग" द्वारा विरोधाभासी दृष्टिकोणों में सामंजस्य स्थापित किया था।

समरूपता का सिद्धान्त

प्रकृति समरूपता (Symmetry) को पसन्द करती है, इसलिये समरूपता प्रकृति को समझने के लिये उपयोगी सिद्ध हुई है। सभी जीव, निहारिकाएं, ग्रह, पेड़, खनिज, अणु आदि समरूप हैं। समरूपता के कई प्रकार हैं। दायें-बायें, दर्पण में प्रतिबिम्ब, काल समरूपता आदि। संरक्षण का नियम (Law of conservation) जिस पर दोनों, स्थूल और सूक्ष्म भौतिक विज्ञान, निर्भर करते हैं समरूपता के सिद्धान्त का ही परिणाम हैं। तत्त्व सारणी (मेंडलीव की पीरियोडिक टेबल) में तत्त्व अष्टम चक्र में व्यवस्थित हैं। सभी 118 तत्त्व अष्टम क्रम (octet) आवर्त से संयोजित किये जा सकते हैं और उनके गुण आठवें तत्त्व के बाद फिर पुनरावृत होते हैं और उसी प्रकार तत्त्वाणु भी व्यवस्थित किये जा सकते हैं। वास्तव में नोबल पुरस्कार विजेता और गहन विचारक 'गेलमेन' द्वारा समरूपता का सिद्धान्त अज्ञात तत्त्वाणुओं की खोज में एक प्रबल साधन की तरह उपयोग में लाया गया था। उन्होंने विभिन्न तत्त्वाणुओं को अष्टम चक्र में व्यवस्थित किया जिसकी सहायता से वे क्वार्क की संभावना और अन्ततः उसकी खोज करने में सफल हुए, जो आज सूक्ष्मतम तत्त्वाणु के रूपमें जाना जाता है। अब यह माना जाता है कि हेड्रोन (hadrons) तत्त्वाणु अष्टचक्र में या दशम-चक्र में और लेप्टोन्स (leptons) नवम् चक्र में संयोजित किये जा सकते हैं। यथार्थ में प्रकृति में अधिकतर तत्त्वाणु, क्वान्टम अंक और क्रियायें समरूप हैं फिर भी कुछ समरूपताओं का उल्लंघन होता हुआ भी दिखाई देता है जैसे कि दर्पणीय समरूपता का कुछ नाभिकीय क्रियाओं में उल्लंघन होता है। इस प्रकार समरूपता और उसका उल्लंघन, दोनों ही तत्त्वाणुओं की बुनियादी क्रियाओं को समझने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। भौतिक शरीर भी सभी प्रकार से समरूप है, जैसा अध्याय-1 में उल्लेख किया गया था।

अनिश्चितता का सिद्धान्त

सूक्ष्म जगत में उपयुक्त हाईज़नबर्ग का अनिश्चितता का सिद्धान्त यह निर्दिष्ट करता है कि किसी तत्त्वाणु के सभी गुणों को एक साथ परिशुद्ध रूप से परिमाणित करना असम्भव है। यदि किसी भौतिक पैरामीटर को नापा जाय तो सूक्ष्म भौतिक विज्ञान के अनुसार नापने की क्रिया से ही उस तत्त्वाणु की स्थिति तत्काल भिन्न स्थिति में परिवर्तित हो जाती है। तत्त्वाणुओं की भौतिक स्थिति को नापने में अनिश्चितता का कारण उपकरणों की अक्षमता नहीं है बल्कि वास्तविक कारण यह है कि कोई भी माप तत्त्वाणु की स्थिति बदले बिना नहीं किया जा सकता। उदाहरण के तौर पर ऊर्जा (E) और काल (t) या स्थान (x) और वेग (momentum, p) के सजातीय युगलों में दोनों पेरामीटर कुछ न्यूनतम अनिश्चितता में ही नापे जा सकते हैं। यह अनिश्चितता $E. \ t \ \hbar$ or $x. \ p \ \hbar$ जहाँ प्लेन्क कान्सटेंट $\hbar = \hbar / 2\pi$ (कार्य की न्यूनतम इकाई) जिसकी

मात्रा 6.625 x 10^{-34} जूल.सेकण्ड है, द्वारा परिभाषित की जा सकती है। यह अनिश्चितता का सिद्धान्त सूक्ष्म जगत का एक बुनियादी सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त चैतन्य जगत पर भी लागू किया जा सकता है क्योंकि ज्ञाता की चेतना भी ज्ञेय की प्रतिक्रिया से निरंतर बदलती रहती है (चित्र 6.1)। ज्ञेय से ज्ञाता को ज्ञान का स्थानान्तरण, ज्ञेय और ज्ञाता, दोनों को ही बदल देता है। अनिश्चितता के सिद्धान्त के अनुसार वास्तव में ऐसा होता है कि प्रत्येक परीक्षण के साथ ही वस्तु स्थिति बदल जाती है और किसी एक समय पर उसकी सम्पूर्ण स्थिति परिमाणित नहीं की जा सकती। हाईज़नबर्गका सिद्धान्त ज्ञाता के बारे में कुछ नहीं बतलाता। विज्ञान किसी वस्तु के गुणों का परीक्षण करने वाले जीव की चेतना पर क्या प्रभाव होता है इसका अनुसंधान नहीं करता पर जैन दर्शन यह दावा करता है कि कोई परीक्षण, परीक्षक की चेतना को तत्काल परिवर्तित कर देता है।

हम यह प्रश्न दूसरी तरह से भी पूछ सकते हैं। यदि मैं किसी वस्तु या धारणा को किसी विशेष परिपेक्ष्य से ही समझता हूँ तो क्या यह मेरी चेतना की सीमित क्षमता के कारण है या वह वस्तु स्वयं को इसी प्रकार प्रकट करती है ? मैं यह दृष्टिकोण लेता हूँ कि मानव चेतना की क्षमता असीम है और वह किसी वस्तु को सभी परिपेक्ष्य में एक साथ समझने में सक्षम है। यह तो वस्तु का गुण ही है कि वह अपने भिन्न भिन्न परिपेक्ष्य अलग अलग परिस्थितियों में अलग अलग समय में प्रस्तुत करती है। दूसरें शब्दों में बहुमुखी परिपेक्ष्य वस्तु का अंतर्निहित स्वभाव है। इस प्रकार अनेकान्तवाद एक बहुदृष्टिकोणीय अनुभूति का सिद्धान्त नहीं है पर यह दर्शाता है कि प्रकृति अपने आपको भिन्न भिन्न रूप में कभी कभी एक ही समय में और कभी भिन्न भिन्न समय में प्रस्तुत करती है।

इन्द्रियां भले ही अक्षम हो, यह चेतना की अक्षमता नहीं कि वह भौतिक जगत के विविध रूपों की अनुभूति नहीं कर सकती और न ही वह पदार्थ को स्वनिर्धारित भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से देखती है पर पदार्थ स्वयं ही बहुमुखी गुणों का धारक है जो सर्वज्ञ केवली द्वारा भी एक ही काल में एक साथ नहीं देखे जा सकते। इस प्रकार भौतिक क्षेत्र में अनेकान्तवाद उतना ही बुनियादी सिद्धान्त है जितना कि अनिश्चितता का सिद्धान्त जो यह प्रतिपादित करता है कि कुछ गुण सटीक रूप से नहीं मापे जा सकते क्योंकि यह सूक्ष्म जगत में प्रकृति का अंतर्निहित स्वभाव है।

व्यापक परिपेक्ष्य में अनिश्चितता का सिद्धान्त, सीमित ही सही, पर एक विकल्प प्रस्तुत करता है। जीव विज्ञान के क्षेत्र में इस प्रकार की अनिश्चितता क्रमबद्ध डारविनीयन विकास को संभव कर सकती है। उदाहरण के तौर पर ऊर्जा स्तरों की अनिश्चितता रासायनिक क्रियाओं के प्रसारण की गुंजाईश के कारण विभिन्न उत्पाद बनाकर विकासात्मक परिवर्तन ला सकता है।

बहिष्कार या अपवर्जन का सिद्धान्त

सर्व प्रथम वोल्फ गेंग पौली के द्वारा प्रतिपादित किये गए इस सिद्धान्त के अनुसार दो तत्त्वाणु

जो पूर्णतया एक से हों, एक स्थान पर नहीं रह सकते। इस सिद्धान्त को कबीर से बेहतर या विशिष्ट रूप से कोई वर्णन नहीं कर सकता। जब उन्हें परमज्ञान का बोध हुआ और वे ईश्वर जैसे हो गए तो उन्होंने कहा,

जब मैं था तब तुम नहीं, जब तुम हो मैं नाहिं,
प्रेम गली अति सांकरी, या में दो न समाहिं।

विभिन्न क्वान्टम अंक सच्चे स्वरूप का केवल आंशिक रूप से ही वर्णन करते है पर जब वे एक साथ जोड़ दिये जायें तो वे पूर्ण रूप का वर्णन करते हैं। सूक्ष्म जगत में हम दो और क्रियायों का अनुभव करते हैं जो इस विवेचन से सम्बंधित हैं : सीमित अस्तित्व या सीमितत्व (Confinement) और उलझत्ववाद (Entanglement)। क्वार्क का क्वार्क-ग्लूओन प्लाज्मा में ही सीमित रहना देखा गया है अर्थात क्वार्क का पृथक अस्तित्व नहीं है और वह स्वतंत्र रूप से एक कण की तरह नहीं पाया जाता। वह ग्लूओन प्लाज्मा के भीतर ही सीमित रहता है जिस प्रकार आत्मा प्राणी के शरीर में सीमित रहती है और अलग से नहीं देखी जा सकती। जब हम क्वार्क से सूक्ष्मतर अवयवों को जानेंगे तब और कौन से गुण प्रकट होंगे यह कल्पनातीत ही है।

उलझत्ववाद

उलझत्ववाद का अर्थ यह है कि ब्रह्माण्ड के वे सभी तत्त्वाणु जो एक ही प्रक्रिया में उत्पन्न हुए हों, एक दूसरे से सम्बंधित रूप में आचरण करते हैं। संक्षेप में, दो तत्त्वाणुओं की प्रणालियां, जिन की स्थिति (state) सुपरिभाषित है, अस्थाई रूप से किसी भौतिक प्रक्रिया में भाग लें और कुछ समय के लिए परस्पर प्रभावित करके वे प्रणालियां फिर पृथक हो जायें तो उनकी स्थिति पहले जैसी नहीं रहती।ऐसी प्रक्रिया में उन तत्त्वाणुओं की क्वान्टम स्टेट्स एक दूसरे से उलझ जाती है और उनके गुण एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। ब्रह्माण्ड के सब कण बिग बेंग के समय एक साथ उत्पन्न हुए थे और इस लिए वे एक दूसरे से किसी न किसी प्रकार उलझे हुए हैं। भावात्मक रूप से यह परतन्त्र उत्पत्ति (dependent origination) या ऊपर उल्लेखित शून्यवाद के बौद्ध सिद्धान्तों से मेल खाता है। विश्व में किसी का भी स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। यही हम भौतिक विज्ञान से सीखे हैं कि ब्रह्माण्ड में कोई भी वस्तु, या कोई भी क्रिया कितनी भी तुच्छ क्यों न हो, एक दूसरे को (या सारे ब्रह्माण्ड को ही कुछ न कुछ सीमा तक) प्रभावित करती है और रसायन विज्ञान से सीखे हैं कि प्रत्येक पदार्थ में प्रत्येक अन्य पदार्थ का कुछ न कुछ अंश मौजूद रहता है।

ग्रीनस्टाईन और झजोंक ने उनकी पुस्तक "क्वान्टम चेलेंज" में सूक्ष्म जगत के एक और पहलू का उदाहरण दिया है। स्थूल जगत में यदि हम दो खिड़कियों वाले एक कमरे में एक गेंद को दीवार पर मारें तो वह गेंद एक या दूसरी खिड़की से बाहर जा सकती है। सूक्ष्म जगत में जब एक इलेक्ट्रोन,

प्रोटोन या न्यूट्रोन एक दो या अधिक छिद्रोंवाले अवरोध से टकराते है तो वे सभी छिद्रों से एक साथ बाहर जाते हैं। कार्य-कारण सम्बंध (करणीयता) और एक साथ एक से अधिक स्थानों पर एक ही समय में उपस्थिति की असंम्भावना क्वांटम सिद्धान्तों से चकनाचूर हो गई हैं। किसी को दो स्थानों पर एक साथ प्रक्षेपण करने की यह प्रक्रिया उलझत्व के सिद्धान्त से सम्बंधित है। यह हमारे स्थानीय अन्तराल की धारणा को भंग कर देता है।

क्वान्टम यांत्रिकी हमें शून्य से सारे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की अनुमति देती है क्योंकि अवास्तविक कण युगल (कण (matter) और प्रतिकण (antimatter)) शून्य ऊर्जा से उत्पन्न किये जा सकते हैं। शंकराचार्य के अनुसार संपूर्ण ब्रह्माण्ड अवास्तविक, माया या भ्रम है और शून्य से उत्पत्ति के कारण, कम से कम सैद्धान्तिक रूप से, विज्ञान इस धारणा से सहमत है। फिर भी क्वान्टम क्रियाओं के कुछ नियम और कुछ सिद्धान्त हैं जिनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। यह विचारणीय है कि वे सिद्धान्त जो उपपरमाणिक (Subatomic) क्रियाओं पर लागू होते हैं, आत्मा जो अपदार्थ होने के साथ ही अतिसूक्ष्म है, पर भी लागू हो सकते हैं या नहीं।

इस प्रकार हमने देखा कि सूक्ष्म जगत में, जहाँ पदार्थ कण-तरंग का द्वैत प्रदर्शित होता है, क्वान्टम फिजिक्स लागू होती है। तरंग विज्ञान किसी स्थान पर एक कण के उपस्थित होने की संभावना बतलाता है पर जब उस का वहाँ अवलोकन किया जाय तभी वह कण अस्तित्व में आता है। एक व्यापक तरंग का जब निरीक्षण किया जाय तब वह स्थानीयकृत हो जाती है और कण बन जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निरीक्षण संभावना को यथार्थ में बदल देता है। उदाहरण के तौर पर प्रकाश के क्वान्टम का कोई गुण नहीं होता जब तक कि उसका परीक्षण न किया जाय। क्वान्टम गैर-स्थानीयता केवल स्थान तक ही सीमित नहीं पर काल पर भी उसका नियंत्रण है। इसलिये हम कह सकते हैं कि सूक्ष्म जगत में न तो प्रदेश (स्थान) ही है न काल ही, जब तक चेतना एक घटना को घटित करने का प्रयास नहीं करती। हम विलम्बित विकल्प के प्रयोग, जिसमें एक तत्त्वाणु अपना आचरण अपने पथ पर रवाना होने के बाद भी अन्तिम क्षण में बदल देता है, को समझने के लिये चेतना का आह्वान कर सकते हैं परन्तु चेतना का कोई भौतिक प्रमाण अब तक नहीं मिला है। हम ने यह भी देखा कि दो अन्तर-सम्बंधित प्रकाश के तत्त्वाणुओं (फोटोन) का फ़ेज (phase) उलझा हुआ (entangled) होता है। गैर स्थानीयता का अर्थ बिना संकेतों के आदान प्रदान किये, स्थान और काल में संवाद करना या एक दूसरे को प्रभावित करना है। यद्यपि अन्तरसम्बंधित फोटोन की गैर-स्थानीयता का उपयोग सूचना के स्थानान्तरण के लिये नहीं किया जा सकता, उनमें कुछ तरह का सम्पर्क तो होता ही है।

पदार्थ और जीव की कुछ क्रियाओं में समानता पाई गई है। यह जाहिर है कि जीवों का आचरण उनके अवलोकन से बदल जाता है। यह भी दावा किया गया है कि सामूहिक ध्यान करने से मानसिक

अन्तरसम्बंध स्थापित हो जाता है और मन एक दूसरे से उलझ जाते हैं और फलस्वरूप एक के मनोविचार दूसरे से प्रभावित होते हैं। अन्तरसम्बंधित मस्तिष्क के मामले में चेतना दोनों के बीच सह-सम्बंध स्थापित कर देती है। ऐसी परिस्थिति में विचारों का स्थानान्तरण या टेलीपेथी संभव है। सहमति का अर्थ क्वान्टम-सह सम्बंध में एक ही प्रकार से साथ साथ तरंगित होना है।

क्वान्टम फिजिक्स ने हमें सूक्ष्म जगत समझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है पर यह शायद फिजिक्स की चरम उपलब्धि न हो। कल्पना की जा सकती है कि जैसे जैसे विज्ञान प्रगति करेगा और भी सूक्ष्म कण खोजे जायेंगे जहाँ द्विविधता ही नहीं पर कणों, तरंगों और चेतना के बीच त्रिविधता भी कुछ क्रियायें समझने के लिए प्रस्तावित की जायें। या जब अनकानेक गुण प्रकट हों तो विविधता (अनेकान्तवाद) भी शायद क्रियान्वित की जाये।

वैज्ञानिक सूत्र :

यह उल्लेख करने के बाद कि स्थूल और सूक्ष्म जगत पर भिन्न भिन्न नियम लागू होते हैं, और प्रकृति कुछ सिद्धान्तों का अनुसरण करती है, हम भौतिक विज्ञान के कुछ तथ्यों को सूत्रों के रूप में प्रस्तुत करेंगें ताकि उनकी जैन दर्शन से सीधे तुलना की जा सके।

1. भौतिक जगत की सभी क्रियायें कुछ सुपरिभाषित नियमों के अन्तर्गत ही होती हैं अर्थात जगत नियमात्मक है।
2. ये नियम सार्वभौमिक हैं, जो सब स्थान और काल में, सब वक्त सभी क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।
3. भौतिक जगत दो भागों में विभक्त किया जा सकता हैः स्थूल और सूक्ष्म। दोनों भागों को नियंत्रित करने वाले कुछ नियम भिन्न हैं।
4. स्थूल और सूक्ष्म जगत की प्रकृति लगभग सभी गुणों में समरूप है ।
5. स्थूल जगत (दृष्टिगोचर और दूरबीन से देखे जा सकने वाले सभी विशालकाय स्कन्ध) क्लासिकल यांत्रिकी के नियमों का पालन करते हैं। इसमें सामान्य नियम कि पूर्ण अंशों का योग है, लागू होता है। यह योग का नियम स्थूल जगत के सभी गुणों, जैसे पिण्डमात्रा, आयतन, गति आदि पर लागू होता है ।
6. दोनो क्षेत्रों में पिण्डमात्रा m और ऊर्जा E एक -दूसरे में परिवर्तित होते हैं और $E=mc^2$ द्वारा सम्बंधित हैं जहां c प्रकाश की गति है । मात्रा और ऊर्जा कई रूप ले सकती है पर वे लुप्त नहीं होती अर्थात उनका योग प्रत्येक प्रणाली में सतत (स्थिर) रहता है । यह संरक्षण का नियम है।

7. सभी रूपांतरणों में संरक्षण का नियम पालन किया जाता है । ऊर्जा न कभी उत्पन्न की जा सकती है न कभी नष्ट; केवल उसका रूप बदलता है ।

8. संरक्षण का नियम ऊर्जा, वेग, धन या ऋण विद्युत, समरूपता और कई गुणों पर लागू होता है।

9. काल सदा आगे की दिशा में बढ़ता है । काल परिवर्तन की दिशा एनट्रोपी (विकार या अव्यवस्थता) की वृद्धि से मापी जा सकती है ।

10. सूक्ष्म जगत (अणु, तत्त्वाणु, और सूक्ष्मतर पदार्थ के रूप) क्वान्टम फिजिक्स से नियंत्रित होता है । क्लासिकल फिजिक्स के कुछ नियम इस क्षेत्र में लागू नहीं होते।

11. सूक्ष्म जगत में नए नए गुण प्रकट होते हैं । एक महत्वपूर्ण गुण द्विविधता है । अर्थात कुछ तत्त्वाणु जैसे प्रोटोन, इलेक्ट्रोन, फोटोन आदि कभी पदार्थ और कभी तरंग का रूप ले लेते हैं। ऐसा सम्भव है कि जैसे हम सूक्ष्मतर कणों को परखेंगे नये नये गुण (क्वान्टम स्थितियाँ) प्रकट होंगी।

12. सूक्ष्म जगत में कण कुछ असतत (discrete) स्थितियों में ही रहते हैं। एक स्थिति से दूसरी स्थिति में रूपान्तरण सतत (continuous) रूप से नहीं होता परन्तु कोई भी परिवर्तन क्वांटम छलांग से होता है।

13. सूक्ष्म जगत के कुछ गुण विरोधाभासी होते हैं। विरोधाभासी गुण एक दूसरे के पूरक होते हैं और प्रकृति को पूर्ण रूप से समझने में सहायक होते हैं।

14. सूक्ष्म जगत की क्रियायें कुछ सिद्धान्तों का पालन करती हैं। इनमे अनिश्चितता,बहिष्कार, उलझत्व आदि के सिद्धांत है।

15. अनिश्चितता के सिद्धांत के अनुसार तत्त्वाणुओं के कुछ गुण (जैसे स्थान और वेग या ऊर्जा और समय) एक साथ निश्चित रूप से नहीं नापे जा सकते। यह ज्ञाता या मापक यंत्रों की सीमित क्षमता के कारण नहीं है पर एक आधारभूत नियम है। द्विविधता के कारण कुछ युगल गुणों को सटीकता से नापना असम्भव है।

16. बहिष्कार का सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि दो सर्वथा समान कणों का एक ही प्रदेश या काल में सहअस्तित्व नहीं हो सकता।

17. उलझत्व का सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि एक ही क्रिया में उत्पन्न दो तत्त्वाणु, चाहे कहीं भी हों, परस्पर सम्बंधित होते हैं।

18. सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड 61 तत्त्वाणुओं से बनाया जा सकता है जो पदार्थ के बुनियादी अंश है। इनमें चार वाहक कण (फोटोन, ग्रेवीटोन, W बोसोन और Z तत्त्वाणु) हैं। क्वार्क और ग्लूओन अभी तक खोजे गये सब से सूक्ष्मतम कण हैं।

19. कुछ बल जगत के सभी पदार्थों को प्रभावित करते हैं। कुल मिलाकर सात बल हैं। विद्युत, चुम्बकीय और गुरुत्वाकर्षण बल व्युत्क्रम वर्ग के नियम का पालन करते हैं। नाभिकीय बल दो प्रकार के होते हैं सबल और दुर्बल। विद्युत, चुम्बकीय और दुर्बल नाभिकीय बल, एक ही आधार भूत बल के तीन रूप हैं, जिसे विद्युतीय-दुर्बल बल (electroweak force) का नाम दिया गया है । इस प्रकार हमें तीन बुनियादी बलों का पता है : विद्युतीय दुर्बल, प्रबल नाभिकीय, और गुरुत्वाकर्षण । सम्भव है कि ये तीनों भी एक ही बल के विभिन्न रूप हों जिनसे प्रकृति के सभी बलों का एक भव्य एकीकरण सिद्धांत (Grand Unification Theory) बन पाये ।

20. प्रबल नाभिकीय बल के प्रभाव में तत्त्वाणु मिल कर स्कंध बनाते हैं। वे क्रम से मिलकर प्रोटोन, इलेक्ट्रोन और न्यूट्रोन बनाते है, जिन से परमाणु[1] (atoms) और परमाणु के मिलने से अणु (molecules) बनते हैं । अणु विद्युत-चुम्बकीय बल के प्रभाव से मिलकर यौगिक (compounds) बनाते हैं और योगिकों के मेल से खनिज बनते हैं। खनिज चट्टानें बनाते हैं और चट्टानें, गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभाव से ग्रह, उपग्रह, तारे और निहारिकाएं गठित करते हैं। (अध्याय 9 में स्कंध के गठन और विच्छेदन के बारे में चर्चा की गई है)।

21. तात्कालिक ब्रह्माण्ड 4% पदार्थ, 21% अदृश्य पदार्थ (dark matter) और 75% अदृश्य ऊर्जा (dark energy) से बना हुआ माना जाता है ।

22. काल और आकाश मिलकर चार आयामी ब्रह्माण्ड बनाते हैं पर ब्रह्माण्ड में और भी आयाम हो सकते हैं ।

23. पदार्थ की अधिकतम गति प्रकाश की गति (3×10^8 मीटर प्रति सेकन्ड) हो सकती है । यह विशेष सापेक्षतावाद का बुनियादी सिद्धांत है ।

24. ब्रह्माण्ड जिस का विस्तार सतत बढ़ रहा है , एक अति विशाल विस्फोट (Big Bang) से 14 अरब वर्ष पहले उत्पन्न हुआ था । इस के पहले के इतिहास के बारे में कुछ भी पता नहीं है, पर यह ब्रह्माण्ड एक चक्रीय ब्रह्माण्ड, जो क्रमश घटता- बढ़ता रहता है, से तर्क सम्मत होगा । यह भी सम्भव है कि ब्रह्माण्ड एक प्रकार के अपरिवर्तनीय, सनातन, स्थिर, अविचल ब्रह्माण्ड का रूप हो।

संक्षेप में विज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड के बुनियादी अवयव पिण्डमात्रा (Mass-Energy), आकाश, काल और तीन बल (विद्युत- दुर्बल, गुरुत्व और प्रबल नाभिकीय) माने जाते हैं।

---

1. यह जैन दर्शन का परमाणु नहीं है जिस की हम बाद में चर्चा करेंगे।

हमने महत्वपूर्ण वैज्ञानिक धारणाओं को सूत्रों के रूप में प्रस्तुत किया ताकि उन की जैन दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष तुलना की जा सके । अब हम तत्त्वार्थ सूत्र के पंचम अध्याय की चर्चा करेंगे जहाँ इन में से कुछ पहलुओं का वर्णन है ताकि हम देख सकें कि जैन दर्शन और विज्ञान में कितना समन्वय है ।

जैन दर्शन की धारणा है कि भौतिक जगत वास्तविक है, मन से इन्द्रियों (जिनकी क्षमता सीमित है और जो अब भी विकसित हो रही हैं) के द्वारा अनुभव किया जाता है ।

जब मन किसी वस्तु या क्रिया को देखता है तो सत्य क्या है ? वस्तु, मन जो दृष्टा (दर्पण की तरह) है, देखने की क्रिया, या वस्तु की अनुभूति। गहन विश्लेषण के अनुसार पदार्थ के कई रूप (गुण या धर्म) हैं और अनेकान्तवाद के अनुसार वे सब एक साथ नहीं अनुभव किये जा सकते। मन किसी वस्तु और क्रिया को अपने पिछले अनुभवों के अनुसार ही देखता है अर्थात मन पूर्व प्रशिक्षित है और पूर्वानुभवों से बंधित है इस लिये अपूर्ण है और सत्यानुभूति नहीं कर सकता। जैसे जैसे मन का अनुभव बढ़ेगा, उसका प्रशिक्षण भी प्रगति करेगा। अनुभूति दृष्टा पर निर्भर करती है और जैसे जैसे दृष्टा की चेतना विकसित होती है, अनुभूति सत्य के निकटतर पहुँचती है (जैसे चींटी से हाथी और फिर मानव की अनुभूति)। केवल केवलज्ञानी या सर्वज्ञ की अनुभूति ही, जो इन्द्रियातीत है, इन्द्रियों पर निर्भर न होने के कारण सत्यानुभूति है।

जैन दर्शन के अनुसार सीमित लोक (ब्रह्माण्ड) अनन्त अलोक में स्थित है। ब्रह्माण्ड दो तत्त्वों से बना है, जीव और अजीव। अजीव में पाँच द्रव्य हैं : आकाश, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गल और काल। इन छः द्रव्यों का विस्तार ही लोक की सीमा है और ये सभी द्रव्य शाश्वत और अविनाशी हैं। जीव (मानसयुक्त और संवेदनशील प्राणी), पदार्थ (पुद्गलास्तिकाय) सक्रिय हैं, अर्थात क्रियाशील, मूर्त, गतिशील और परिवर्तनशील हैं और अन्य (आकाश, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और काल) निष्क्रिय, जड़, सहअस्तित्त्व वाले हैं और एक दूसरे से हस्तक्षेप नहीं करते। यहाँ द्रव्य का अर्थ पदार्थ से नहीं पर "तत्त्व" से है। आकाश का अर्थ अन्तरिक्ष से नहीं पर इसकी परिभाषा में कहा जाता है कि आकाश वह शून्य (void) है जो दूसरे द्रव्यों को जगह देता है। पुद्गल संशोधित होते रहते हैं और कई पयार्यों में पाये जाते हैं। आकाशास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और काल, स्वयं में अमूर्त (निराकार) और स्थिर (गति विहीन) हैं। आकाश, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय एक (अखण्ड), समरूप (homogeneous), समदिशी (isotropic), एकसार (uniform), स्वाश्रित (self supporting) और अभेद (indivisible) हैं। आकाश, पुद्गल और काल अत्यन्त सूक्ष्म, अखण्ड इकाइयों से बने हैं और आकाश सभी दिशाओं में एक रूप हैं। आकाश की न्यूनतम इकाई को प्रदेश कहा गया है और पुद्गल की सूक्ष्मतम इकाई परमाणु है। परमाणु आयाम रहित है। एक से अनन्त परमाणु एक प्रदेश में रह सकते हैं। परमाणु या उनके समूह पदार्थ बनाते हैं जिनमें मूर्त

गुण जैसे कि स्पर्श, गंध, स्वाद और रंग होते हैं। परमाणु मिलकर वर्गणा बनाते हैं (जिसकी अध्याय-9 में चर्चा करेंगे) और उनसे सभी प्रकार के पदार्थ, उनके गुण और शक्तियों का उद्भव होता है।

विज्ञान आकाश, काल और पदार्थ के अस्तित्व से सहमत है और मानता है कि ब्रह्माण्ड का विस्तार बढ़ता जा रहा है। हम पूछ सकते हैं कि यह विस्तार किस में बढ़ रहा है ? ब्रह्माण्ड के चारों तरफ मौजूद आकाश में? और यदि ब्रह्माण्ड चिर काल तक फैलता ही जायेगा तो वह आकाश अनन्त होना चाहिये। पर आधुनिक विज्ञान का आकाश गुरुत्व द्वारा विकृत हो जाता है जैसा आइन्सटीन का सापेक्षता का सामान्य सिद्धान्त (General Theory of Relativity) बतलाता है। आकाश (space) फैलता जा रहा है जैसा कि ब्रह्माण्ड की आधुनिक धारणाएं बतलाती हैं, तो विज्ञान का स्पेस, जैन धर्म का आकाश नहीं हैं। जैन दर्शन का आकाश निष्क्रिय है और न तो किसी तरह उसका फैलाव बढ़ सकता है, न वह सिकुड़ सकता है, न किसी प्रकार से विकृत हो सकता है। वह तो केवल शून्यवत (void) है। यह विज्ञान के स्पेस और जैन दर्शन के आकाश का सूक्ष्म अन्तर महत्त्वपूर्ण है।

अन्य दो तत्त्व धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय हैं, जिन्हें जैन दर्शन में पारम्परिक रूप से गति और विराम का माध्यम माना जाता है। इनका विज्ञान में कोई अनुरूप नहीं है। इनके अस्तित्व से कदाचित जड़त्व की उत्पत्ति समझी जा सकती है जो न्यूटन द्वारा परिभाषित गति के प्रथम नियम का मूल कारण हो सकती है। इस नियम के अनुसार एक वस्तु समान गति या विराम की स्थिति बनाये रखती है जब तक कि उस पर कोई बाहरी बल न लगाया जाय। धर्मास्तिकाय गति कायम रखने की सुविधा देगा और अधर्मास्तिकाय विराम की स्थिति बनाये रखने में। यदि ऐसा हो तो हम विज्ञान और जैन दर्शन में सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं।

पदार्थ रूपी है और ऊर्जा अरूपी पर तत्त्वार्थसूत्र के श्लोक 5.3 और 5.4 का विरोधाभास दूर हो सकता है यदि पदार्थ रूपी भी हो और अरूपी भी, जब हम आधुनिक विज्ञान की धारणा के अनुसार पदार्थ और ऊर्जा का अन्तरपरिवर्तन होना ध्यान में रखें।

नित्यावशितानि अरूपानी चा (5.3)

रुपिणाह पुद्‌गलाह (5.4)

क्या धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ऐसे तत्त्व हैं जिनसे विभिन्न बलों की उत्पत्ति हो सकती है ? विज्ञान और जैन दर्शन में सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास को जारी रखते हुए हम यह कल्पना कर सकते हैं कि तीनों बल (गुरुत्व, विद्युतीय-दुर्बल और प्रबल नाभिकीय), इन दोनों तत्त्वों, धर्मास्तिकाय (जो गति का प्रेरक है) और अधर्मास्तिकाय (जो विराम का प्रेरक है) से उत्पन्न हो सकते हैं। चूंकि वैज्ञानिक सब बलों के एकीकरण के लिए प्रयास कर रहे हैं, इस प्रस्ताव का आगे अध्ययन किया जा सकता है।

जैन धर्म पदार्थ को बादर (स्थूल) और सूक्ष्म की छः श्रेणियों में विभाजित करता है। शास्त्रों में पृथ्वी, जल, प्रकाश और उसका छाया, गंध और रस, कर्माणु और परमाणु यह उदाहरण क्रमशः इन श्रेणियों के लिये दिये गए हैं। विज्ञान की दृष्टि से सूक्ष्मता के इस क्रम में कुछ विवाद नज़र आता है पर हम इसके दोनों छोर के उदाहरण पृथ्वी और सूक्ष्मतम परमाणु से सहमत हो सकते हैं।

अब हम परमाणु के बारे में पुनः विचार करेंगे। जैसा कि ऊपर लिखा गया है एक से अनन्त परमाणुओं को एक प्रदेश में स्थान दिया जा सकता है। परमाणु जो पदार्थ का सूक्ष्मतम अंश है और प्रदेश जो आकाश का न्यूनतम अंश है उनमें क्या व्यवस्था हो सकती है ? परमाणु आयामरहित है - इसका क्या अर्थ है ? यदि परमाणु एक सघन कण है तो वह आयाम रहित किस प्रकार है और अनन्त परमाणु किस प्रकार आकाश के न्यूनतम अंश, एक प्रदेश में एक साथ एकत्रित हो सकते हैं। इस कथन में परमाणु की द्विविधता निहित लगती है तभी जब वह कण रूप में है तो आकाश के एक प्रदेश में रहेगा और जब वह तरंग रूप में है तब असंख्य परमाणु भी एक साथ एक प्रदेश में रह पायेंगे। इस प्रकार हम जैन दर्शन और क्वांन्टम फिजिक्स (कण-तरंग द्विविधता) में सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं।

जैन दर्शन में भूगोल अर्थात जम्बू द्वीप (तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय 2) या खगोल अर्थात सूर्य, चन्द्र या ब्रह्माण्ड (तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय-3 और सूर्य प्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि) में किये गये वर्णन और आधुनिक विज्ञान में काफी विवाद है। जहाँ तक पृथ्वी के भूगोल या सूर्यमण्डल के ग्रहों या आकाशगंगा का विषय है, इनका दूरसंवेदकों या सशक्त दूरबीनों द्वारा अध्ययन किया गया है। इनके त्रुटिपूर्ण होने का या उनमें संशोधन करने का कोई औचित्य ही नहीं है इसलिये शास्त्रों में सुधार करने की आवश्यकता है। इनमें कुछ पहलुओं का परिशिष्ट 1 में उल्लेख किया गया है।

भौतिक जगत का आधुनिक विज्ञान और जैन दर्शन की दृष्टि से विचार करने के बाद हम जीव की बात करेंगे। जो नियम सूक्ष्म जगत पर लागू होते हैं, वे किसी न किसी रूप में आत्मा, जो अति सूक्ष्म है, पर भी लागू होते हैं, यह स्पष्ट नहीं है। हम यहाँ तीन सिद्धान्तों पर विचार करेंगेः अनेकान्तवाद, माक का सिद्धान्त और उलझत्व। अनेकान्तवाद सूक्ष्म जगत और जैविक जगत दोनों पर ही लागू होता है। हम अनेकान्तवाद और स्यादवाद की क्वान्टम यांत्रिकी धारणाओं की समानता के बारे में पहले ही अध्याय 3 में चर्चा कर चुके हैं।

माक का सिद्धान्त और अहिंसा

यद्यपि न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के नियम पूर्णरूप से सूत्रबद्ध किये और समझे जा चुके हैं हम अब तक यह नहीं जानते कि किसी पदार्थ में जड़त्व की मात्रा (Inertial Mass) का किस प्रकार उद्भव

होता है। जर्मन वैज्ञानिक अर्नष्ट माक ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर कुछ अवधारणा प्रस्तुत की है, जिस के अनुसार किसी वस्तु की जड़त्व की मात्रा ब्रह्माण्ड के अन्य सब पिण्डों की मात्रा की प्रतिक्रिया से उत्पन्न होती है (बारबौर और फ्फिस्टर, 1995)। इस का निहित अर्थ यह हुआ कि जड़त्व मात्रा का अलग से कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। यदि कोई वस्तु पूर्णतया पृथक कर दी जाये कि और कोई वस्तु का उस पर किसी प्रकार का प्रभाव ही न रहे तो उसमें जड़त्व मात्रा होगी ही नहीं। अब हम यह विचार करें की क्या यह सिद्धांत जीव पर भी लागू किया जा सकता है ? हम एक परस्पर और सम्पूर्ण रूप से प्रतिक्रियावादी जगत में रहते हैं और कुछ भी दूसरे से पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं है। यह जीव और आत्मा के विषय में भी सही है। निश्चय ही जीव का पृथक रूप में कोई अस्तित्व नहीं है। यदि जगत के, या पृथ्वी के ही, एक को छोड़ कर बाकी सभी जीव नष्ट हो जायें तो वह अन्तिम जीव भी जीवित नहीं रहेगा। यदि हमारे शरीर में सभी बेक्टीरिया मर जायें तो हम भी जीवित नहीं रहेंगे। प्रत्येक बेक्टीरिया, प्रत्येक कोषाणु, हमारे अस्तित्व के लिये महत्वपूर्ण है। हमारा अस्तित्व उनके ही कारण है। इसलिये जीवन परस्पर प्रतिक्रिया और निर्भरता के कारण ही है। यह नागार्जुन के शून्यवाद का सार है और इसका निहितार्थ यह है कि बिना अन्यत्र जीवन के प्रत्येक जीवन शून्य है। शून्य वृताकार है, पूर्ण और आत्मा की तरह सब दृष्टि से परिपूर्ण है पर बिना अन्य के, इसका मूल्य भी शून्य है। पर जब इसके पहले कोई अंक लगा देते हैं तभी इसका कुछ मूल्य होता है। इसलिये इसका मूल्य सांदर्भिक है। जीवन भी इसी प्रकार है। यह पूर्ण है पर इसका कोई अर्थ या अस्तित्व नहीं जब तक अन्यत्र कोई जीवन न हो। भौतिक जगत में माक का सिद्धान्त जैविक जगत में शून्यवाद जैसा ही है। इस विवेचन से तत्काल ही अहिंसा का सिद्धांत प्रतिपादित होता है, क्योंकि सम्पूर्ण ही अंश के अस्तित्व का मूल कारण है, और इसका प्रतिकूल भी, अर्थात अंश ही संपूर्ण अस्तित्व का कारण है, सत्य है। और दोनों सम्पूर्ण और अंश, अभिन्न है। वास्तव में जब कोई, किसी भी जीव को चाहे वह कितना भी क्षुद्र, तुच्छ या निम्न स्तर का हो, हानि पहुँचाता है या नष्ट करता है तो वह अपने ही एक अंश को नष्ट करता है क्योंकि अस्तित्व का स्वरूप प्रतिक्रियावादी है और दूसरों पर निर्भर है। यह एक प्रकार से कुछ सीमा तक आत्महत्या जैसा है। इस प्रकार जड़त्व मात्रा जो एक मौलिक गुण है और चेतना, जो एक आत्मिक लक्षण है, दोनों की प्रकृति प्रतिक्रियावादी है और उनका उद्भव पूरे ब्रह्माण्ड की प्रतिक्रिया से होता है। हम इस पर उलझत्व के संदर्भ में पुनः विचार करेंगे।

परस्परोग्रहो जीवानाम और आत्माओं का जाल या प्रतिक्रियावाद

दो या उससे अधिक तत्त्वाणुओं की स्थिति का, जो एक ही प्रणाली के भाग रहे हैं, एक दूसरे पर प्रभाव उलझत्व है। ऐसे दो तत्त्वाणुओं का गुण या आचरण जो मीलों दूर हो या ब्रह्माण्ड के भिन्न भिन्न छोरों पर हो, एक दूसरे पर आश्रित होता है। एक के साथ कुछ भी घटना घटे तो वह दूसरे के गुणों को,

दूरी पर निर्भर न होते हुए, तत्काल प्रभावित करती है। उलझत्व आकाश को लांघ सकता है। यही सिद्धान्त जीवों पर लागू होता है क्योंकि जीव भी एक दूसरे के जाल में उलझे हुए हैं। व्यवहार की दृष्टि से अपनी सहायता करने का श्रेष्टतम उपाय दूसरों की सहायता करना है।

अब तक हम ने जैनदर्शन और आधुनिक विज्ञान के कई पहलुओं पर चर्चा की और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कुछ सिद्धान्त दोनों पर लागू होते हैं। ऐसा लगता है कि जैन दर्शन और भौतिक विज्ञान की धारणाओं को मिलाकर हम प्रकृति का सच्चा स्वरूप जानने में सफल हो सकते हैं और कुछ ऐसी उद्धघोषणा कर सकते हैं, जिन्हें अनेकान्तवाद द्वारा परखा जा सके और वे विज्ञान द्वारा प्रस्तुत सम्भावनाओं में सें कुछ सही विकल्प चुनने में सहायक हों। हम इस अध्याय के अन्त में विज्ञान और जैन दर्शन के बीच सहमति और असहमति की संक्षेप में पुनः समीक्षा करेंगे।

जैन दर्शन ब्रह्माण्ड को जीव और अजीव में विभाजित करता है और ब्रह्माण्ड को उनकी परस्पर क्रिया का परिणाम मानता है। जगत में सब कुछ, कितना भी तुच्छ क्यों न हो, जीव को अवलम्बन देने के लिये है। जीव के दृष्टिकोण से ब्रह्माण्ड में कुछ भी व्यर्थ या निष्प्रयोजन नहीं है। जैन दर्शन की धारणा है कि जीव और अजीव, दोनों ही, कुछ नियमों से नियंत्रित होते हैं जो शाश्वत और सार्वभौमिक हैं और जिनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। विज्ञान का, जो केवल पदार्थ से सम्बंधित है, आधार यह है कि भौतिक जगत भौतिक नियमों से परिचालित होता है। जैन दर्शन का अनेकान्तवाद जीव और अजीव दोनों पर लागू होता है, और उसकी विज्ञान के पूरकवाद से तुलना की जा सकती है जो सूक्ष्म जगत में उपयोगी है और क्वान्टम फिजिक्स की एक आधारभूत धारणा है। वास्तव में अनेकान्तवाद पूरक वाद के भी आगे जाता है और द्विविधता की जगह विविधता और अनन्त लक्षणों की बात करता है।

जैन दर्शन जगत को ज्ञाता और ज्ञेय में विभाजित करता है। दोनों ज्ञान की मध्यस्थता से परस्पर क्रिया करते हैं, जो दोनों को प्रभावित करता है। भौतिक विज्ञान निरीक्षण या परीक्षण द्वारा जानने योग्य द्रव्यों का ज्ञान प्राप्त करता है और यह मानता है कि निरीक्षण करने से पदार्थ संशोधित हो जाता है। इस आधार पर हाइज़नबर्ग द्वारा अनिश्चितता का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया था। इसकी तुलना में जैनदर्शन की धारणा है कि ज्ञान या परीक्षण ज्ञाता और ज्ञेय दोनों को संशोधित करता है जैसा कि सैदव अनुभव में आता है। जैन दर्शन का बुनियादी सिद्धान्त कर्मवाद है जो भौतिक विज्ञान के कार्य-कारण सम्बंध (Causality) के समान है: केवल यह सिद्धान्त जीव, और अजीव दोनों को नियंत्रित करता है। कर्मवाद के अनुसार बिना कारण के कोई प्रभाव (या परिवर्तन) नहीं होता और प्रत्येक क्रिया के पीछे कोई न कोई कारण होता है। दूसरे शब्दों में संयोग जैसी कोई भी घटना नहीं होती। यह इस नियम की एक बहुत ही शक्तिशालि अभिव्यक्ति है जिसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक घटना के पीछे प्रकृति का कुछ ध्येय है। इस धारणा ने नियतत्व वाद को जन्म दिया कि प्रत्येक घटना

पूर्व निर्धारित है क्योंकि सब घटनाएं नियमानुसार होती हैं। यह धारणा जैन दर्शन के क्रमबद्ध पर्याय के समान है, जो कि जैविक जगत में नियतत्ववाद पर आधारित है। भौतिक विज्ञान में "जड़त्व की मात्रा" की उत्पत्ति के प्रश्न ने अर्नष्ट माक को यह प्रतिपादित करने पर बाध्य किया कि किसी वस्तु में पिण्डमात्रा बाकी सारे ब्रह्मांण्ड की पिण्डमात्रा की प्रतिक्रिया का परिणाम है। इनका अस्तित्व पारस्परिक है। यह जैन दर्शन में जैविक जगत के बुनियादी सिद्धान्त "परस्परोग्रहो जीवानाम" के अनुरूप है। जिसकी हमने पुनः व्याख्या इस प्रकार की है कि कोई भी जीव का अस्तित्व बाकी ब्रह्माण्ड में जीवन पर निर्भर है। किसी भी जीव का अस्तित्व दूसरे जीवों के कारण ही है अन्यथा नहीं।

यह सूत्र उलझत्व के सिद्धान्त के समकक्ष है जो आत्मा पर लागू होता है। इसे हम प्रतिक्रियावाद भी कह सकते हैं। यह तत्काल अहिंसा के सिद्धान्त की ओर इशारा करता है कि हमारा जीवन दूसरों पर आधारित है और सभी जीव एक दूसरे से उलझे हुए हैं। इस लिये सभी जीवों की रक्षा करनी चाहिये।

जैन दर्शन और विज्ञान की धारणाओं की तुलना

जैन दर्शन	विज्ञान
कर्मवाद	कार्य-कारण सम्बंध (Causality)
क्रमबद्धपर्याय	नियतत्ववाद (Determinism)
अनेकान्तवाद	पूरकवाद (Complementarity)
स्यादवाद	अनिश्चितता (Uncertainty)
परस्परोग्रह जीवानाम	उलझत्ववाद (Entanglement) या प्रतिक्रियावाद

यद्यपि जगत जीव और अजीव की प्रतिक्रिया है पर जीव ही अजीव को नियंत्रित करता है और उसका आचरण निर्धारित करता है। आत्मा अजीव शरीर में उपस्थित है और शारीरिक गतिविधियों को केवल उसे जीवित रखने के उद्देश्य से, नियंत्रित करती है। ऐसी धारणा भी है कि पूरी पृथ्वी या ब्रह्माण्ड भी इसी ध्येय के लिये अर्थात आत्मा को अभिव्यक्त करने के लिये बने हैं। ऐसी कल्पना की जाये की सारी पृथ्वी एक बड़ा जीव है जिसमें हमारे शरीर की भांति ही जीव और अजीव दोनों मौज़ूद हैं। पृथ्वी का विकास, जैसे कि अमोनिया, मीथेन, कार्बन डाई ऑक्साईड आदि से बने प्रारम्भिक रिड्यूसिंग वायुमण्डल को, जो आदि जीवन के लिये आवश्यक था, ऑक्सीडाईज़िंग वायुमंडल में परिवर्तन करना, जिसमें 22 प्रतिशत ऑक्सीजन है और जो विकसित जीवों के लिये आवश्यक है, एक उदाहरण है। इसी से पता चलता है कि चेतना या जीवन के विकास के लिये पृथ्वी पर

आवश्यकतानुसार और समयानुसार परिवर्तन हुए हैं। यह धारणा कि समग्र पृथ्वी एक जीवाणु है, "गाईआ" (Gaia) के नाम से अंग्रेजी खगोलशास्त्री लवलोक द्वारा प्रस्तावित की गई है और इसके जीव और अजीव की प्रतिक्रियाओं लिये बहुत गम्भीर परिणाम हैं। यही धारणा पूरे ब्रह्माण्ड के लिये भी की जा सकती है जिसके अनुसार सारे ब्रह्माण्ड को एक विशालकाय जीवाणु माना जा सकता है, जिसका प्रत्येक अंश उसके विकास के लिये कार्यरत है। इसमें ब्रह्म (आत्मा) सभी भौतिक और रसायनिक क्रियाओं को अपनी आवश्यकतानुसार नियंत्रित करता है। बौद्ध ब्रह्माण्ड विज्ञान तो इससे भी एक कदम आगे जाता है जब वह घोषणा करता है कि कर्म अत्यन्त शक्तिशाली है और जीवों के कर्मानुसार ऐसे ब्रह्माण्ड की स्वतः अनायास ही रचना होती है जहाँ जीव अपने संचित कर्मों को यथायोग्य भोग सके।

यहाँ हमने विभिन्न विषयों का विवेचन किया और ऐसा लगता है कि विज्ञान और जैन दर्शन के कुछ सिद्धान्तों में कुछ सीमा तक समानता है। इनमें से कुछ तालिका 7.1 में दर्शाए गए हैं। इस तालिका से हमें पता चलता है कि भौतिक विज्ञान और जैन दर्शन के कौन से बुनियादी दृष्टिकोण एक से हैं और उनमें सहमति दिखाई देती है। उदाहरण के तौर पर, जैन दर्शन के अनुसार ब्रह्माण्ड सनातन है और मोटे तौर पर अपरिवर्तनीय है अर्थात "स्टेडी स्टेट युनिवर्स" स्थिर ब्रह्माण्ड के समान है और विज्ञान की धारणा है कि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति "बिग बेंग" में हुई। यह ब्रह्माण्ड "बिग बेंग" द्वारा उत्पन्न फैलते हुए विस्तार वाला ब्रह्माण्ड है या स्टेडी स्टेट या चक्रित, साइक्लिक (cyclic), ओसिलेटरी (oscillatory), घटता-बढ़ता ब्रह्माण्ड है, यह एक विवादास्पद विषय है और इसकी हम अगले अध्याय में चर्चा करेंगे। विज्ञान ने ब्रह्माण्ड के बुनियादी अवयवः आकाश, पदार्थ (ऊर्जा), काल, बल, और बलक्षेत्र माने हैं। जैनदर्शन पहले तीन (आकाश, पदार्थ और काल) से सहमत है पर जीव के अतिरिक्त दो अन्य द्रव्यों (धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय) को मानती है। इन छः द्रव्यों से ब्रह्माण्ड बना है। जैन दर्शन पदार्थ को स्थूल (बादर) से लगाकर सूक्ष्मतम छः भागों में विभाजित करती है और विज्ञान स्थूल और सूक्ष्म दो भागों में। स्थूल पदार्थ क्लासिकल मिकेनिक्स के और सूक्ष्म क्वांन्टम मिकेनिक्स के नियमों का पालन करती है। भौतिक विज्ञान और जैनदर्शन दोनों संरक्षण के नियम में विश्वास करते हैं। उदाहरणार्थ जैन दर्शन इन छः द्रव्यों को, जिनसे ब्रह्माण्ड बना है, शाश्वत और सब स्थितियों में अपरिवर्तनीय मानता है। विज्ञान पदार्थ (+ऊर्जा), वेग, और अन्य कई पेरामीटर्स को प्रत्येक क्रिया में संरक्षित मानता है। विज्ञान की मान्यता है कि जीव की उत्पत्ति अजीव से हुई है परन्तु जैन दर्शन दोनों को स्वतंत्र तत्त्व मानता है और इस के अनुसार कोई भी तत्त्व एक दूसरे से उत्पन्न नहीं किये जा सकते और दोनों सनातन और शाश्वत हैं। विज्ञान की धारणाएं प्रयोगों पर आधारित होने के कारण बुनियादी रूप से सत्य हैं पर यदि यह भी माना जाय कि वे अपूर्ण हो सकती

हैं और भविष्य में संशोधित की जा सकती हैं, तो भी उनका जैन दर्शन से पूर्णतया सहमत होना नामुमकिन है ।

जैन दर्शन के भूगोल, खगोल, समय और स्थान की इकाईयों में वास्तव में गुम्भीर समस्याएं हैं, क्योंकि वह आधुनिक विज्ञान, जिसने पिछली सदियों में अत्यधिक प्रगति की है, से मेल नहीं खाती। दोनों में सामंजस्य स्थापित करना असम्भव है और जैनदर्शन में संशोधन की आवश्यकता है । इनमें कुछ समस्याओं का हम परिशिष्ट 1 में वर्णन करेंगे।

8

जैन दर्शन, गणित और ब्रह्माण्ड विज्ञान

परमात्मा को प्रत्येक वस्तु को बनाने की आवश्यकता नहीं है।
उन्हें केवल नियम बनाने की आवश्यकता है
और फिर सब अपने आप बन जाता है ।

दर्शन, संस्कृति और गणित का परस्पर गहरा सम्बंध है और इसमें प्रत्येक एक दूसरे से प्रभावित होता है जैसा कि प्राचीन भारतीय विचारधारा से स्पष्ट है । जैन शास्त्रों में उल्लेख है कि अंकशास्त्र और ब्राह्मी लिपि का विकास प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने किया। प्राचीन अंक गणित और भूमिति की जड़ें बेबीलोनिया (5700 ई.पू.), मिश्र (4000 ई.पू.), सुमेरु (2500 ई.पू.) और ग्रीस (600 ई.पू. जहाँ केलेन्डर, नाप और तोल की शुरूआत हुई), में पायी गई हैं। परन्तुं अंक (0 से 9 तक), जैसा कि हम आजकल प्रयोग करते हैं, और दशमलव प्रणाली भारत में सोची गई। शून्य की खोज का श्रेय भारतीय गणितज्ञ पिंगल (200 ई.पू.) को दिया जाता है। बेबीलोनिया में शून्य का उपयोग एक स्थानक के रूप में और माया ने केलेन्डर में किया पर भारत में शून्य का प्रयोग एक अंक रूप में किया गया और उसकी पूर्ण अंकगणित विकसित की गई जिसमें आर्यभट (लगभग 500 ई.), ब्रह्मगुप्त (628 ई.), महावीराचार्य और भाष्कराचार्य (बारहवीं सदी) का बहुत महत्वपूर्ण योग रहा है । शून्य और दशमलव के विकास से प्राचीन भारतीय गणितज्ञों को बहुत महत्वपूर्ण तकनीक मिली जिससे उन्होंने कई नई विचारधाराऐं विकसित की और उन्हें बहुत उच्चस्तरीय गणना की क्षमता प्राप्त हुई। शून्य और दशमलव प्रणाली ने आधुनिक भौतिक और खगोल विज्ञान, ब्रह्माण्ड विज्ञान और कम्प्युटर्स की नींव रखी । कुछ विद्वानों का मत है कि शून्य के कारण ही बौद्ध और हिन्दू दर्शन में शून्यवाद की महत्वपूर्ण धारणा की उत्पत्ति हुई। जैन गणितज्ञों ने सर्वप्रथम अनन्त की धारणा विकसित की और कई प्रकार के अनन्त की खोज की। भारतीय वैज्ञानिकों ने शून्य और अनन्त की धारणा को, न केवल खगोल, भूगोल और ब्रह्माण्ड विज्ञान में, बल्कि दर्शन और संस्कृति (जैसी नवीं शताब्दी में महावीराचार्य की गणितसार नामक पुस्तक में लिखा है), में उपयोग किया। उदाहरणार्थ, अनन्त का प्रयोग आध्यात्मिक क्षेत्र में विशुद्ध आत्मा के कई गुण जैसे कि अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, आदि के लिये किया गया (अध्याय 2)।प्राचीन समय में गणना के लिये दशमलव और दस के गुणांक (power of ten) की प्रणाली ने बड़े अंकों का प्रयोग सरल कर दिया और ब्रह्माण्ड की विशालता को समझने की क्षमता दी। इससे कई मामलों में, जैसे कि ब्रह्माण्ड के आयाम और आयु निर्धारित करने

में और बड़े पिण्डों जैसे निहारिका, सितारों, ग्रह आदि के बारे में यथार्थ धारणाएं बन पायी । फिर भी आधुनिक विज्ञान और अवलोकन की तकनीकों द्वारा प्राप्त ज्ञान से पता चलता है कि भूगोल, सूर्यमण्डल, ग्रहों आदि की गणनाओं में कई त्रुटियां हैं(परिशिष्ट 1)। इस अध्याय में हमारा ध्येय अंक गणित और भूमिति के बारे में ऐतिहासिक प्राथमिकताएं तय करना नहीं बल्कि ऐसी धारणाओं को प्रस्तुत करना है जो अब भी उचित और प्रासंगिक हों। जैन दर्शन की अंकगणित में काल चक्र और दूरी मापने की व्यापक पद्धतियां विकसित की गई पर उन्होंने दशमलव का उपयोग न कर द्विआधारी (**binary**), या कुछ विशेष प्रकार की (छ के गुणांक की) पद्धति विकसित की। जैनों ने अंकों को तीन श्रेणियों में बांटा: संख्यात (गण्य, जो गिना जा सके), असंख्यात (अगण्य, जो गिना न जा सके), और अनन्त। मुनि महेन्द्रकुमार ने लघुत्तम संख्यात अंक (2) से लगाकर असंख्यात-असंख्यात तक सारे अंकों की व्याख्या अपनी पुस्तक "एनिग्मा आफ दि युनिवर्स" में की है। हमारे विचार से अनन्त वह है जिसकी कोई सीमा नहीं होती । असंख्यात जैन दर्शन की एक अनोखी धारणा है और वह अंक है जिसकी सीमा बदलती रहती है। यह अजीब लगता है कि कोई अंक असंख्य (अगण्य) होगा जब कि शक्तांक प्रणाली किसी भी अंक की, चाहे वह कितना ही बड़ा या छोटा क्यों न हो, गणना करने में सक्षम है। इसलिए तर्कानुसार दो ही प्रकार के अंक होने चाहियेः गण्य और अनन्त, जैसा कि आजकल माना जाता है। जैन ग्रथों में शीर्ष प्रहेलिका का उल्लेख मिलता है जिसका मान 10^{250} है और उसकी 70 अंकों तक गणना की गई है, यद्यपि हमें इसके पीछे क्या अभिप्राय है इसका पता नहीं है। असंख्यात का काल की इकाई (समय, अवलिका) के सम्बंध में भी उपयोग किया जाता है जिनका मान बहुत कम है। तत्त्वार्थ-राजवर्तिका में कहा गया है कि अंसख्यात की गणना करने की क्षमता सर्वज्ञ केवलियों में भी नहीं है। हम असंख्यात का बहुत गहन दार्शनिक और वैज्ञानिक अर्थ मानते हैं। हमारा विचार है कि यदि कोई मान उसकी सीमाएं बदलने के कारण सतत बदल रहा हो तो ही वह अगण्य या अंसख्य हो सकता है। इसके भौतिक विज्ञान में कई उदाहरण मिलते हैं। कण-तरंग द्विविधता के कारण एक डिब्बे में रखे तत्त्वाणुओं की सख्या सतत बदलती है और उनकी सही गणना की ही नहीं जा सकती, जैसा अध्याय 7 में उल्लेख किया गया है। उसकी केवल सम्भावना (**probability**) बतलाई जा सकती है। उसे हम असंख्यात कह सकते हैं। इससे हमारा ध्यान हाइज़नबर्ग की अनिश्चितता के सिद्धान्त की ओर जाता है जिसकी पिछले अध्याय में चर्चा की गई थी। उसके अनुसार तत्त्वाणु के कुछ पेरामीटर (समय और ऊर्जा, स्थान और वेग) परिशुद्धता से नहीं नापे जा सकते पर कुछ सीमा में ही उनका आकलन किया जा सकता है। इस त्रुटि का सम्बंध प्लेंक कोन्सटेंट से है और यह उपकरणों की अक्षमता के कारण नहीं बल्कि तत्त्वाणुओं के स्वभाव के कारण है । असंख्यात का एक और उदाहरण प्रोटोन और न्यूट्रोन की न्युक्लीयस में संख्या से है जो औसतन रूप से जानी जाती है। जैसे कि ऑक्सीजन में औसतन 8 प्रोटोन और 8 न्यूट्रोन होते हैं। यथार्थ में तो प्रोटोन और न्यूट्रोन निरंतर एक दूसरे में

परिवर्तित होते रहते हैं। जापानी वैज्ञानिक युकावा ने उनके बीच विनिमय के तत्त्वाणु पाई मेसोन (π meson) की खोज की। इसके अनुसार किसी क्षण तात्कालिक न्युक्लियस में प्रोटोन या न्यूट्रोन की संख्या जानना असम्भव है और इसे असंख्यात मानना चाहिये। इकाईयों की परिभाषा के संदर्भ में जैन शास्त्रों में कालाणु, परमाणु और प्रदेश एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। असंख्यात की यही व्याख्या काल की इकाई "अवलिका" और "समय" पर भी लागू होती है। नथमल टाटिया के अनुसार 1 अवलिका = असंख्यात समय और 1 अवलिका = 1.717×10^{-4} सेकण्ड। यह विचारणीय बात है कि जैन काल की इकाई अवलिका तक तो सटीक गुणांक में चलती है और फिर सबसे कम माने जाने वाले ''समय'' की इकाई पर छलांग लगा देती है और उसे असंख्यात घोषित कर देती है। प्लेन्क टाइम (10^{-43} सेकंड) की तुलना में, जहां बिग बेंग के बाद भौतिक क्रियाओं में कुछ अनिश्चितता आ जाती है, अवलिका काफी बड़ी है। इसका क्या रहस्य है? आइन्सटीन के सापेक्षता के सिद्धान्त के अनुसार काल ''फ्रेम आफ रेफरेन्स" पर निर्भर करता है अत: गतिशील "फ्रेम ऑफ रेफरेन्स" में कालाणु या "समय" का मान भी बदल जाता है । अत: यह तय करना असम्भव है कि अवलिका में कितने समय होंगे। वे उस के फ्रेम ऑफ रेफरेन्स की गति पर निर्भर करेंगे। यही टाइम डिलेटेशन (time dilatation) का कारण है। असंख्यात को हम इसी संदर्भ में समझ सकते हैं। दूसरी ओर असंख्यात का उल्लेख ब्रह्माण्ड की विशालता के संदर्भ में भी किया गया है । जैन दर्शन में ब्रह्माण्ड को 343 घन रज्जु माना गया है पर एक रज्जू में असंख्यात योजन $\times 10^{14}$ होते हैं। इस प्रकार रज्जू का सही आकलन असम्भव है, हाँलाकि कुछ विद्वान रज्जू को 10^{15}-10^{22} कि.मी. मानते हैं। इसे भी हम ब्रह्माण्ड की सीमा के घटने-बढ़ने के संदर्भ में समझ सकते हैं।यदि ब्रह्माण्ड की सीमा घटती बढ़ती रहे तो उसमें कितने योजन हैं तय करना असम्भव होगा और हम कह सकते हैं कि वह असंख्यात है ।

असंख्यात का प्रयोग लम्बाई की इकाई के संदर्भ में भी किया जाता है। जैन दर्शन में माना जाता है कि एक प्रदेश में कम से कम एक परमाणु (जो आयाम रहित है) और अधिक से अधिक असंख्यात परमाणु रह सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि एक प्रदेश में एक साथ असंख्यात परमाणु होते हैं। भगवती सूत्र के अनुसार अनन्त परमाणु जितना स्थान ग्रहण करते हैं वह एक प्रदेश (स्थान की न्यूनतम इकाई) है और उसका माप (उत्शलक्षण - श्लक्षणा = अनन्त परमाणु) है। उत्शलक्षण-श्लक्षणा के पश्चात सभी इकाइयां (रेणु आदि) की गणना निश्चित रूप से की गई है। यह भी सापेक्षवाद के संदर्भ में समझा जा सकता है जिसके अनुसार दूरी फ्रेम ऑफ रेफरेंस की गति पर निर्भर करती है जिसे भौतिक विज्ञान में फिट्झेराल्ड कान्ट्रेक्शन के संदर्भ से समझा जाता है। दूसरे छोर पर दूरी की सबसे बड़ी इकाई रज्जू के लिये भी असंख्यात का प्रयोग किया गया है,जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है ।

ब्रह्माण्ड विज्ञान

उत्पत्ति के प्रश्न अर्थात जीव की उत्पत्ति, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और पृथ्वी की उत्पत्ति आदि विषय दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी में महत्वपूर्ण हैं। विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि सब भौतिक क्रियायें कुछ नियमानुसार चलती हैं, जो पूर्ण रूप से परिभाषित किये जा चुके हैं और इन नियमों को गणित के फार्मूलों के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इन नियमों का कभी भी उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु ने इन नियमों का पालन किया है, इसलिए कुछ भी वस्तु बनने के पहले नियम आवश्यक थे। इससे दो प्रश्न खड़े होते हैं, पहला तो आरम्भ में यह नियम किस प्रकार प्रभाव में आये और दूसरा, यह नियम हैं वैसे क्यों हैं, उनसे भिन्न क्यों नहीं। यदि सभी वस्तुएं नियमों का सहज परिणाम है तो ये नियम कैसे बने और क्या ऐसे अन्य ब्रह्माण्ड भी हैं जहाँ नियम हमारे ब्रह्माण्ड से भिन्न हैं।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति[1] को समझने के लिए और ब्रह्माण्ड या नियम कौन पहले बना, इसकी तीन सम्भावनाएं हैं।

1. नियम, ब्रह्माण्ड बनने से पहले थे।
2. नियम, ब्रह्माण्ड और समय तीनों एक साथ अस्तित्व में आये ।
3. नियम और ब्रह्माण्ड सनातन हैं। उनकी उत्पत्ति नहीं हुई और दोनों सदैव थे और रहेंगे अर्थात वे अनादि और अनन्त हैं।

प्रथम विकल्प के अनुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति नियमानुसार हुई, न कि मनमाने, अराजक, बेतरतीब या नियम विरुद्ध ढंग से, और यह अब भी उन्हीं नियमों द्वारा संचालित हो रहा है। यदि नियम पहले से थे तो वे सनातन हैं और फिर ब्रह्माण्ड भी किसी न किसी रूप में सनातन होगा जो कि स्टेडी स्टेट थ्योरी के अनुकूल है। यदि काल और नियमादि की उत्पत्ति एक साथ हुई तो प्रश्न ही नहीं उठेगा की उनके पहले क्या था।

(1) ऋग्वेद में नासदीय सूक्त में इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि सबसे पहले, अर्थात जल, वायु, प्रकाश, ब्रह्माण्ड और ईश्वर के अस्तित्व में आने से भी पहले, कौन था। ये सभी सम्भावनाएं अनिश्चितताओं और विरोधाभास से पूर्ण हैं। जैसे कि सर्वप्रथम न तो अस्तित्व ही था और न अनस्तित्व ही, न तो मृत्यु ही थी न अमरत्व ही, न दिन था न रात, न तो ऊपर की दिशा थी, न नीचे की आदि। यह सूक्त पूछता है कि कौन वास्तव में यह जान सकता है ? कदाचित उसी ने स्वयं की रचना की और कदाचित नहीं भी की। कदाचित आरम्भ में आदि हिरण्यगर्भ था। कदाचित जो सर्वोत्तम स्वर्ग से निहार रहा है वह जानता होगा और कदाचित वह भी नहीं जानता। आज भी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के बारे में यह अत्यंत प्रभावशाली और दार्शनिक ढंग माना जा सकता है क्योंकि जैन दर्शन के अनुसार अनिश्चितताओं, विरोधाभासी धारणाओं की पूरकता ब्रह्माण्ड की प्रकृति है और वह अव्याख्य है।

इस विकल्प में लगता है कि नियम अनायास ही स्वयंभू उत्पन्न हुए और फिर यदि नियम अनायास उत्पन्न हो सकते हैं तो फिर स्वयंभू उत्पत्ति प्रकृति का एक बुनियादी सिद्धान्त हुआ। एक बार यह स्वीकार कर लिया जाय कि नियम शून्य में से स्वयंभू प्रकट होते हैं तो फिर सब कुछ शून्य में से उत्पन्न होने में कोई कठिनाई नहीं है। यदि नियम और जगत साथ साथ उत्पन्न हुए हैं, तो तर्कानुसार नियम भी वैसे ही परिवर्तित होंगे जैसे ब्रह्माण्ड परिवर्तित हो रहा है। वे अन्तर-निर्भर हैं और एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। परीक्षण से हम यह पाते हैं कि ब्रह्माण्ड समय के साथ परिवर्तित हो रहा है पर भौतिक शास्त्र के नियम अपरिवर्तनशील हैं। बुनियादी सिद्धान्तों जैसे गुरुत्वाकर्षण के नियम में बदलाव की खोज असफल रही। परीक्षण से ऐसा लगता है कि नियम सार्वभौमिक है, सब काल और स्थान पर समान प्रभाव से लागू होते हैं। तीसरा विकल्प यह है कि नियम शाश्वत हैं। फिर यदि नियम शाश्वत हैं तो क्यों न सभी, अजीव और जीव भी, शाश्वत हो सकते हैं। यही ब्रह्माण्ड की स्टेडी स्टेट थ्योरी का आधार है। पहले दोनों विकल्पों की कठिनाइयां हल करने के लिये जैन दर्शन में छः द्रव्यों (जीव, अजीव, काल आदि) को शाश्वत माना जाता है और ब्रह्माण्ड को यथावत अर्थात स्टेडी स्टेटी थ्योरी के अनुरूप। जीव और अजीव सदैव ऐसे ही रहे हैं और रहेंगे जैसे अब हैं। किसी की उत्पत्ति या रचना नहीं हुई है। पर हम यह जानते हैं कि ब्रह्माण्ड, पृथ्वी और जीवन की उत्पत्ति हुई है और वे सतत रूप से परिवर्तित या विकसित होते जा रहे हैं (अध्याय 1) और एक न एक दिन ये सभी नष्ट हो जायेंगे। इस संदर्भ में बौद्ध धारणा काफी आकर्षक है। उसका प्रस्ताव है कि जीवों में कर्म ही वह प्रेरक शक्ति है जो भौतिक जीवन को (कम से कम आवासीय ग्रहों को, जैसे कि पृथ्वी) उत्पन्न करता है। ऐसे आवासीय ग्रहों और उनके वातावरण की अनायास, स्वतः ही, संचित कर्मों के अनुरूप रचना हो जाती है ताकि जीव अपने कर्मों को यथायोग्य तरीके से भोग सकें। अर्थात संक्षेप में कर्म अति प्रबल है और जीवों के कर्मानुसार ब्रह्माण्डों की रचना करने में भी सक्षम है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, विनाश और उसमें होने वाले परिवर्तन की समस्या को दूर करने के लिये जैन दर्शन संतुलित स्थिति वाली स्टेडी स्टेटी थ्योरी में कई प्रकार के काल चक्र होने की धारणा को मानता है। इस काल चक्र में ब्रह्माण्ड के विकास, अवलंबन, परिवर्तन और ह्रास की पुनरावृति होती रहती है। इसमें कुछ शाश्वत पहेलियों और प्रश्नों का, जिनका ऊपर विवेचन किया गया है, संतोषजनक उत्तर नहीं है। इनका हल कभी भी मिलेगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

जैन दर्शन के अनुसार ब्रह्माण्ड में लोक है जो सीमित है और अनन्त अलोक से घिरा हुआ है। जैन दर्शन में ब्रह्माण्ड के रूप, आकृति, विस्तार और समय (काल) और स्थान की इकाइयों[1] के बारे में बहुत विचार किया गया है। जैन अंकों की धारणा (अनन्त, असंख्यात और संख्यात) और सूक्ष्मतम और महत्तम अंकों की गणना और इस में परिशुद्धता अद्भुत है, पर उस देश में जहाँ अंक और

दशमलवमलव प्रणाली विकसित हुई है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। दुर्भाग्यवश स्थान और काल की इकाईयों में बहुत भ्रान्तियाँ हैं, क्योंकि उनका भिन्न भिन्न ग्रन्थों में उल्लेख एक सा या तर्क युक्त नहीं है और उनको कण्ठस्थ कर हजारों वर्षों तक हस्तांतरण करने में कई त्रुटियों का समावेश हो गया है। फिर भी आधारभूत धारणाएं अभी तक सुरक्षित हैं। आधुनिक खगोल शास्त्र से तुलना कर उनका मान स्थापित किया जा सकता है और विरोधाभास दूर किये जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक भ्रान्तियाँ, उन्हीं इकाइयो में गति और योजन के स्थान पर देव गति या देव योजन के प्रयोग करने से, जिनका नाम एक सा है, उत्पन्न हुई हैं। इन कठिनाइयों के उपरान्त भी हम यहाँ कुछ जैन और आधुनिक धारणाओं की तुलना करने का प्रयास करेंगे।

ब्रह्माण्ड विज्ञान की आधुनिक धारणाओं की एक महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि ब्रह्माण्ड मोटे तौर पर, काल और आकाश की दृष्टि से, समदिशी (isotropic) और समरूप (homogeneous) है। इसे आदर्श ब्रह्माण्ड सम्बंधी सिद्धान्त (Perfect Cosmological Principle) कहा जाता है। इसके अनुसार ब्रह्माण्ड जैसा है वैसा ही सदैव था और रहेगा और समय के साथ नहीं बदलता। थ्योरी के अनुसार स्थिर ब्रह्माण्ड संभव नहीं है अतः गतिवान ब्रह्माण्ड के कई मोडलों, जैसे कि विस्तरण (expanding), चक्रित (cyclic), ओसिलेटिंग (oscillating) आदि का विकास किया गया। इसके पहले कि हम ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की चर्चा करें, ब्रह्माण्ड क्या है इसे समझना आवश्यक है। इसकी एक परिभाषा तो यह है कि समग्र आकाश, पदार्थ, काल और उर्जा, जहाँ सभी तीन प्रकार के बलों (गुरुत्व, इलेक्ट्रो-वीक और प्रबल नाभिकीय) का प्रभाव हो, वही ब्रह्माण्ड है। सब से पहले तो यह ध्यान में ले लेना चाहिये कि आइन्सटीन के अनुसार पदार्थ और ऊर्जा एक ही तत्त्व के दो रूप हैं और दोनों एक दूसरे में परिवर्तनशील हैं। फिर आकाश और काल एक दूसरे से सम्बंधित हैं और एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। इसे मिनकोवस्की के चतुर्आयामी ब्रह्माण्ड के रूप में समझा जा सकता है, जिसमें तीन आयाम दिक (स्थान) के और एक समय का, चारों आयाम, एक दूसरे से सम्बंधित हैं, जिसे हम दिक्काल कह सकते हैं । आइन्स्टीन ने उसका उपयोग सापेक्षतावाद की विशेष थ्योरी को विकसित करने में किया। सापेक्षतावाद की सामान्य थ्योरी में आकाश और पदार्थ को जोड़ा गया जिसमें दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जॉन व्हीलर ने इसे बहुत ही सुचारू रूप से यह कह कर प्रस्तुत किया कि पदार्थ आकाश को कहता है कि उसे किस प्रकार वक्रित होना चाहिये और आकाश पदार्थ को कहता है कि उसे किस प्रकार गतिमान होना चाहिये। इस प्रकार हम देखते हैं कि काल और आकाश, आकाश और पदार्थ, पदार्थ और उर्जा एक दूसरे से सम्बंधित हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। ब्रह्माण्ड की वैज्ञानिक धारणओं में जीव का कोई स्थान नहीं है, यद्यपि जैन ब्रह्माण्ड विज्ञान में जीव

1. काल और दूरी की जैन इकाईयों के बारे में नथमल टाटिया, मुनि कनकनन्दी जी या महेन्द्र मुनि की पुस्तकें देखें।

अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दूसरा मुख्य अंतर यह है कि जैन दर्शन के चार तत्त्व (जीव और पदार्थ के सिवाय) निष्क्रिय हैं और जैसा पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, एक दूसरे को प्रभावित नहीं करते और जीव और अजीव को उनकी क्रिया के लिए सुविधा प्रदान करते हैं अर्थात वे केवल क्रिया के माध्यम हैं।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के लिये तथ्यों पर आधारित बिग बेंग थ्योरी सबसे अधिक मान्य है, पर कई अन्य मोडल भी सम्भव हैं। बिग बेंग थ्योरी के अनुसार 14 अरब वर्ष पहले ब्रह्माण्ड एक विशाल विस्फोट से उत्पन्न हुआ। इसके पहले कुछ भी नहीं था, काल की उत्पत्ति भी तभी हुई। आरंभ में ब्रह्माण्ड बहुत छोटा और बहुत अधिक गर्म था तत्पश्चात मोडल गणना के अनुसार चरणबद्ध रूप से बढ़ते हुए समय के अंतराल से, क्रमशः क्वान्टम ग्रेविटी, इलेक्ट्रोवीक, और प्रबल नाभिकीय बलों के प्रभाव में वह फैलता जा रहा है और ठंडा होता जा रहा है और उसमें पदार्थ विकसित होता जा रहा है। शुरू के 10^{-43} सेकन्ड, जिसे प्लेंक टाइम कहा जाता है, क्वान्टम ग्रेविटी का युग था, जब तापक्रम 10^{32} केल्विन से भी अधिक था। फिर उसने ग्रान्ड युनिफिकेशन युग में प्रवेश किया जो 10^{-34} सेकन्ड तक चला। इलेक्ट्रोवीक बल का प्रभाव 10^{-10} सेकन्ड तक चला और उसके बाद विकीरण का युग आया जिसमें प्रकाश या किरणों का वर्चस्व रहा। इस प्रकार आरम्भ में केवल प्रकाश ही था जो, जैसे जैसे ब्रह्माण्ड का विस्तार हुआ और तापक्रम कम होता गया, पदार्थ में परिवर्तित हो गया। ब्रह्माण्ड को पदार्थ के युग में आने में 100 सेकन्ड लगे जब तत्त्वाणु बनने लगे। सबसे पहले क्वार्क-ग्लूओन प्लाज़्मा बना (अध्याय 7) जिनसे शीघ्र ही प्रोटोन, न्यूट्रोन और इलेक्ट्रोन का गठन हुआ, जिनसे फिर हाइड्रोजन, हीलियम और लीथियम नाम के तत्त्व बने। इन तत्त्वों के योग से धीरे धीरे अन्य तत्त्व बने और फिर पदार्थ का गठन हुआ। जैसे जैसे ब्रह्माण्ड का विस्तार बढ़ा, तापक्रम कम होता गया और पदार्थ समूहबद्ध हो गया। यह पदार्थ मुख्यतः बेर्योनिक था (अर्थात तीन क्वार्कों के योग से बना था जैसे कि प्रोटोन, न्यूट्रोन आदि) और ब्रह्माण्ड में अभी भी मौजूद है। तत्त्वों के गठन के साथ ही ब्रह्माण्ड तेजी से ठंडा होता गया और रेडियेशन (किरणें) और पदार्थ का पृथक्करण हो गया और पदार्थ के समूह बनने से अन्तरिक्ष पारदर्शी हो गया। फिर पदार्थ-समूह (Clusters) में अणु के बादलों (molecular clouds) के गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से संकुचन होने से निहारिकाओं में विभिन्न तारों का निर्माण हुआ जिनमें उच्च तापक्रम और दबाव के कारण नाभिकीय संलयन (nuclear fusion) से सब भारी तत्त्व और उनके आइसोटोप बन गये। जैसे जैसे ब्रह्माण्ड का विकास हुआ, तारे बन गये, विकसित होते गये, नष्ट होते गये और उनका पुनःनिर्माण होता गया। तारों की पीढ़ी, दर पीढ़ी में विभिन्न तत्त्व बनते और नष्ट होते गये अर्थात पकते और रूपान्तरित होते गये। इस प्रकार हमारे सूर्यमण्डल, जीवन और अन्य पदार्थ समूहों का निर्माण हुआ। रेडियेशन और पदार्थ का पृथक्करण बिग बेंग के विस्फोट के तीन लाख वर्ष बाद हुआ और धीरे धीरे अब तापक्रम 2.7 डिग्री केल्विन पर

पँहुच गया। इसकी खोज 1964 में ब्रह्माण्ड में चारों ओर अवरक्त विकीरण (infrared radiation) के रूप में हुई जो लगभग समदिशी (isotropic) मापी गई है।

इस दृश्य में मुख्य समस्या यह है कि भौतिक विज्ञान के नियमों के अनुसार पदार्थ और प्रतिपदार्थ (matter और antimatter) समान मात्रा में उत्पन्न होने चाहिए पर हमें चारों और पदार्थ ही नज़र आता है। प्रश्न यह है कि प्रतिपदार्थ गया कहाँ? कदाचित उससे अलग से कोई अन्य ब्रह्माण्ड बना है क्योंकि पदार्थ और प्रतिपदार्थ एक साथ नहीं रह सकते, वे एक दूसरे से मिलकर ऊर्जा में विलीन या लुप्त हो जाते हैं अर्थात विकीरण में परिवर्तित हो जाते हैं।

ब्रह्माण्ड शुरू से ही ठंडा हो रहा है और उसका विस्तार बढ़ता ही जा रहा है। इस थ्योरी में पदार्थ बिग बेंग के बाद ही (10^{-35} सेकन्ड से 3 मिनिट तक) बन गया और तब से ब्रह्माण्ड के विकास की गति क्रमशः धीमी होती जा रही है। निहारिकाएं बिग बेंग के एक अरब वर्ष बाद बननी शुरू हुई। यह थ्योरी एडविन हबल द्वारा निहारिकाओं के अध्ययन पर आधारित है जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड की सभी निहारिकाएं एक दूसरे से दूर होती जा रही हैं। उन्होंने यह खोज की कि निहारिका से आने वाला प्रकाश लाल रंग की ओर, निहारिका जितनी अधिक दूर हो, उतनी ही अधिक गति से खिसकता जाता है। प्रकाश का लाल रंग की ओर खिसकना निहारिका के दूर जाने की गति से सम्बंधित है। हबल के अनुसार निहारिकाएं एक दूसरे से दूर जा रही हैं, अर्थात ब्रह्माण्ड का विस्तार बढ़ता ही जा रहा है।

यद्यपि ब्रह्माण्ड के विस्तार से सभी सहमत हैं क्योंकि निहारिकाओं का एक दूसरे से दूर जाना दिखाई देता है, बिग बेंग की प्रतिस्पर्धा में कई थ्योरियाँ हैं। फ्रेड होयल, थोमस गोल्ड और हरमन बोंडी ने स्टेड स्टेटी कोस्मोलोजी का प्रस्ताव 1948 में रखा था पर हबल की खोज ने उसका खण्डन कर दिया। स्टेडी स्टेट थ्योरी में ब्रह्माण्ड के फैलाव के लिये पदार्थ की निरंतर उत्पत्ति आवश्यक है ताकि प्रसार की क्षतिपूर्ति की जा सके पर अभी तक उसका कोई प्रमाण नहीं मिला है। बिग बेंग को स्टेडी स्टेटी थ्योरी के अनुकूल करने के लिये फ्रेड होयल, ज्योफरी बरबिज और जयन्त नार्लीकर ने स्टेडी स्टेट थ्योरी संशोधित कर एक "क्वासी स्टेडी स्टेट थ्योरी" का विकास किया। यह भी संभ्भव है कि ब्रह्माण्ड घट-बढ़ रहा है और हाल ही का विस्तार कुछ समय बाद अनन्त संकुचन में बदल जायेगा इस लिहाज से बिग बेंग थ्योरी इस चक्रीय ब्रह्माण्ड का केवल आखरी चरण है।

संक्षेप में ब्रह्माण्ड का आकार विस्तार के वेग और गुरुत्व के बीच संतुलन पर निर्भर है। विस्तार की गति हबल स्थिरांक (हबल कोन्सटेंट, H_0) पर और गुरूत्व उसके घनत्व पर निर्भर है। यदि ब्रह्माण्ड का घनत्व एक निर्णायक घनत्व से, जो हबल स्थिरांक के वर्ग H_0^2 के अनुपात में होता है, कम है तो ब्रह्माण्ड अनन्तकाल तक फैलता रहेगा। यदि ब्रह्माण्ड का घनत्व उस निर्णायक घनत्व से अधिक हो तो गुरुत्व अन्ततः जीत जायेगा और ब्रह्माण्ड पुनः संकुचित होना शुरू हो जायेगा और बिग क्रन्च (Big Crunch) में परिवर्तित हो जायेगा। हाल ही में किये गये अध्ययन से पता चला है कि विस्तार

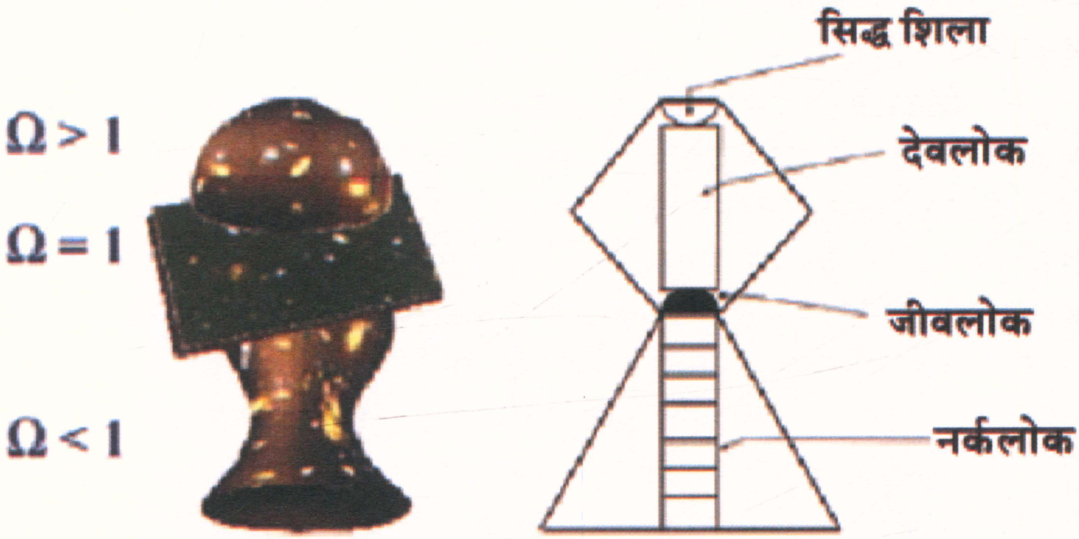

चित्र

और असीम हाइपरबोलिक ब्रह्माण्ड ($\Omega_0 < 1$), जैन ब्रह्माण्ड (ब) के अनुकूल बनाने के लिये एक के उपर एक स्थापित किये गये हैं। ब्रह्माण्ड का घनत्व इसकी ज्योमिती निर्धारित करती है। यदि ब्रह्माण्ड का घनत्व एक निर्णायक घनत्व Ω_0 से अधिक हो तो ज्योमिती सीमित हो जाती है और उसकी वक्रता धनरूपी, गोलाकार होती है। यदि ब्रह्माण्ड का घनत्व निर्णायक घनत्व Ω_0 से कम हो तो वह ऋण वक्रता वाला, काठी की तरह, असीमित ज्योमिती का और यदि निर्णायक घनत्व के एकदम बराबर हो तो वह समतल ज्योमिती वाला ब्रह्माण्ड होता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड की ज्योमिती और उसका भविष्य परस्पर सम्बंधित हैं।

की गति वास्तव में बढ़ती ही जा रही है और उसके कम होने का कोई प्रमाण नहीं है। इसका एक तरीका तो यह है बहुत सा पदार्थ इस रूप में हैं जो प्रबल विपरीत दबाव डालता है। इस प्रकार के पदार्थ को अदृश्य ऊर्जा (dark energy) का नाम दिया गया है। यदि अदृश्य ऊर्जा ब्रह्माण्ड के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती है तो ब्रह्माण्ड सदैव के लिये फैलता ही जायेगा।

हाल ही में ब्रह्माण्ड का तापमान अन्तरिक्षयान से मापा गया है। माइक्रो वेव तापक्रम में बदलाव पर आधारित नापा गया घनत्व निर्णायक घनत्व Ω_0 के लगभग बराबर (2 प्रतिशत की सीमा में) ही है और इसलिये लगता है कि ब्रह्माण्ड की ज्योमिती समतल है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्माण्ड के बारे में अभी तक कोई निर्णायक वैज्ञानिक धारणा नहीं बनी है और इसके अध्ययन की बहुत सम्भावनाऐं हैं। खगोलीय निरीक्षण से दो बातें स्पष्ट हैंः पहली तो, ब्रह्माण्ड में प्रत्येक पिण्ड चाहे वह ग्रह, तारे या निहारिका हो, अपनी धुरी पर और कोई केन्द्र के चारों ओर घूम रही है। दूसरा, प्रत्येक पिण्ड (पृथ्वी, सूर्य और तारे) किसी भी कारण से चाहे कितना भी कम मात्रा में हो (श्वाच्छोस्वास की तरह) घट-बढ़ रहा है। जब ब्रह्माण्ड के जैन सिद्धान्तों के बारे में बात करेंगे तो यह दो

बातें ध्यान में रखनी पड़ेगी क्योंकि इन का जैन शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है।

जैन ब्रह्माण्ड

जैन दर्शन में ब्रह्माण्ड को दो भागों में विभाजित किया गया है, लोक और अलोक। लोक सीमित है और जहाँ तक छः तत्त्वों (जीव, पदार्थ, आकाश, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और काल) का अस्तित्त्व है वहीं तक उसका विस्तार है। उसके चारों ओर अदृश्य और अनन्त विस्तार वाला अलोक है। श्री महेन्द्र मुनि ने जैन ब्रह्माण्ड का विवेचन किया है और गहनता से आधुनिक ब्रह्माण्ड विज्ञान से अपनी पुस्तक "एनिग्मा आफ द युनिवर्स" में तुलना की है। संक्षेप में जैन ब्रह्माण्ड स्टेडी स्टेट युनिवर्स है। इसकी धारणा है कि ब्रह्माण्ड अनादि है और सदैव ऐसा ही था जैसा अभी है। इस प्रकार जैन दर्शन में स्टेडी स्टेटी ऑसिलेटिंग (Steady State Oscillating) ब्रह्माण्ड की धारणा है।

जैन ब्रह्माण्ड की आकृति बड़ी विचित्र है (चित्र 8.1 ब) इस प्रकार की आकृति यदि वह अपनी धुरी पर नहीं घूमेगी तो अस्थिर होगी परन्तु किसी पिण्ड के घुमाव का पता किसी स्थिर फ्रेम ऑफ रेफरेंस से ही चल सकता है। यदि वह प्रणाली या फ्रेम ब्रह्माण्ड के साथ ही घूम रहा है तो हम उस घुमाव को नहीं जान सकते। इसके अलावा पुराने और बड़े ढाँचों मे तीव्र कोणों और किनारों की भौतिक विज्ञान अनुमति नहीं देता। यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि ब्रह्माण्ड में कोई दिशा ऊपर या नीचे नहीं होती। ऐसे कई कारणों से जैन ब्रह्माण्ड और बिग बेंग में सामन्जस्य स्थापित करना कठिन है। जैन ब्रह्माण्ड के आकार में और आधुनिक विज्ञान में कुछ हद तक सहमति हो सकती है यदि हम मानें कि तीनों प्रकार का ब्रह्माण्ड जिसमें घनत्व निर्णायक घनत्व (Ω_0 , चित्र 8.1 अ) से अधिक, बराबर और कम हो, एक साथ बने जैसा कि एन. एल. कछारा का प्रस्ताव है। इस प्रकार गोलाकार, चपटा और हाइपरबोलिक, तीनों प्रकार के ब्रह्माण्ड को एक के नीचे एक रखने से हम जैन ब्रह्माण्ड की आकृति प्राप्त कर सकते हैं। हमारा चपटा ब्रह्माण्ड ऋण आकृति वाले असीम ब्रह्माण्ड, जिसे जैन नर्क लोक कहते हैं और धन आकृति वाले सीमित ब्रह्माण्ड जिसे जैन देवलोक मानते है के बीच का मध्यस्थ लोक होगा (चित्र 8.1 अ)।

दूसरा विकल्प यह भी है कि शायद चतुर्यामी जैन ब्रह्माण्ड का त्रिआयामी आकाश (Space) पर (देखिये पी.डी. ओसपेंस्की) ऐसी आकृति में ही चित्रण कियाजा सकता है। पर कुछ आधुनिक प्रस्ताव ब्रह्माण्ड को ग्यारह आयामी मानते है जिसको कि हमारे त्रियामी यूक्लीडियन आकाश में चित्रित करना अत्यन्त कठिन है।

जैन ब्रह्माण्ड सतत रूप से एक चक्र में चलता रहता है जिसे जैन दर्शन में कालचक्र के नाम से जाना जाता है। एक पूर्ण चक्र दो अंगों में विभाजित हैः उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। इस प्रत्येक अर्धचक्र का समयांकन दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम माना गया है, जिसका वर्षों में आकलन करना

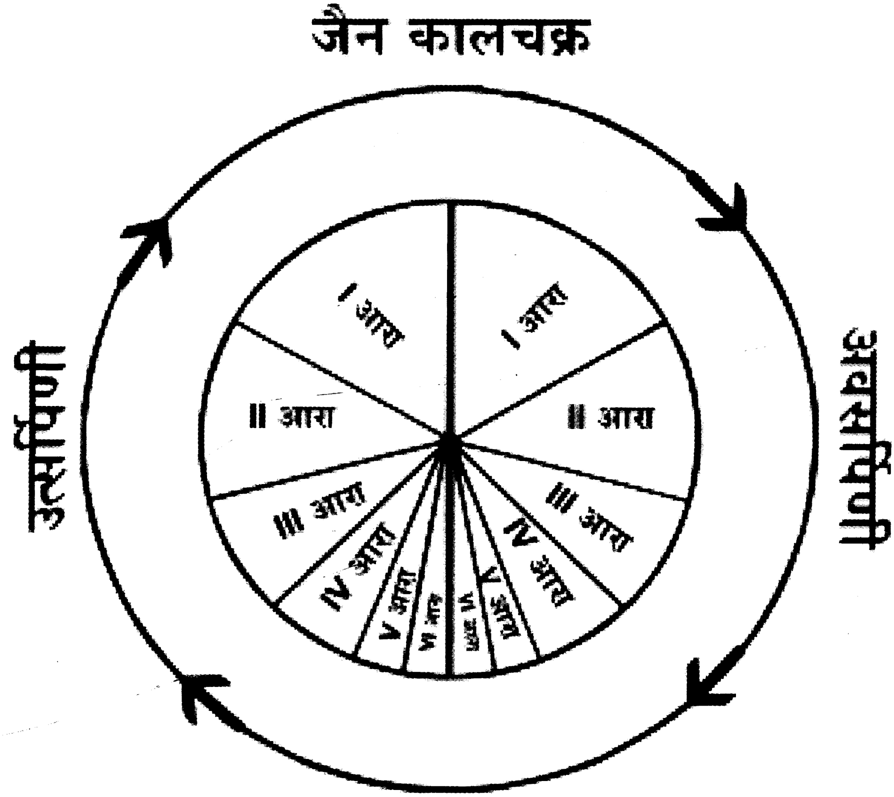

चित्र : 8.2 जैन काल चक्र जो उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के चक्र में चलता है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी, प्रत्येक को छः आरा में विभाजित किया गया है।

कठिन है पर यह बहुत दीर्घ है और कई ग्रन्थ 1 कोड़ा कोड़ी सागरोपम को 10^{14} वर्ष के बराबर मानते हैं। यह बात तर्क संगत नहीं लगती क्योंकि बिग बेंग थ्योरी के अनुसार ब्रह्माण्ड केवल 14×10^{9} वर्ष पहले बना था। उसका दूसरा अर्थ यह हुआ कि जैन ब्रह्माण्ड विज्ञान बिग बेंग से भी पीछे जाता है और एक बहुत बड़े चक्र में बिग बेंग केवल अन्तिम परिस्थिति दर्शाता है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी प्रत्येक छ: युग या आरा में बांटा गया है। पहले आरा का काल 4 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम, दूसरे और तीसरे आरा का क्रमशः 3 और 2 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम और चौथे, पाँचवें और छठे आरा का मिलाकर 1 कोड़ा-कोड़ी सागरोपम बतलाया गया है। पांचवा और छटा आरा, प्रत्येक 21000 वर्ष के चक्र से आरम्भ होता है। इन सब आराओं का नामकरण सुख-दुःख की दशा के अनुसार रखा गया है जिसका इशारा अनुकूल या प्रतिकूल जलवायु की तरफ भी हो सकता है। वास्तव में प्रत्येक आरा कोई चक्र नहीं है जो बारबार पुनरावृत होता रहे जैसा कि पृथ्वी पर जलवायु, भूगर्भीय या खगोलीय चक्र होते हैं जो निरंतर पुनरावृत होते रहते हैं, बल्कि उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी बार बार पुनरावृत होते हैं।

सबसे छोटे, पाँचवे और छटे आरा का 21000 वर्ष का काल मिलांकोविच चक्र से , जो सूर्य के प्रकाश के पृथ्वी पर गिरने की राशि से सम्बंधित है, मेल खाता है जिसका हम बाद में वर्णन करेंगे। आधुनिक जलवायु परिवर्तन के चक्र कई काल सीमा में पाये गये हैं। यदि हम उन चक्रों की बात करें जो पृथ्वी पर जीवन को प्रभावित करते हैं तो उन्हें वातावरण, भूगर्भीय और खगोलीय चक्रों में, जिनकी काल सीमा क्रमशः बढ़ती जाती है, कर सकते हैं। उनमें मुख्य रात्रि दिवस चक्र, मासिक चन्द्र चक्र और वार्षिक सूर्य चक्र हैं जो पृथ्वी की धुरी पर घूमने की और सूर्य के चारों ओर चक्र गति पर निर्भर हैं। पृथ्वी पर मौसम सूर्य-प्रकाश की गिरनेवाली मात्रा पर निर्भर करता है। मिलांकोविच के अनुसार सूर्य-प्रकाश की मात्रा तीन गतियों से निश्चित होती है, विषुवों के अग्रगमन (Precession of Equinoxes, जो पृथ्वी की धुरी की दिशा बदल देते हैं) जिसका औसत काल 21000 वर्ष (19 और 23 हजार वर्ष) है जो क्रमशः उत्तरी गोलार्ध की सूर्य से महत्तम दूरी पर, सूर्य से विपरीत या सूर्य की ओर झुकाव पर निर्भर करता है। पृथ्वी की धुरी का एक्लिप्टिक (ecliptic plane) तल से झुकाव जिसमें पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है, 41000 वर्ष के काल चक्र में बदलता है। इसके अलावा पृथ्वी की कक्षा की सनक (eccentricity) 100,000 वर्ष के काल चक्र में बदलती है। यह सब काल चक्र प्रयोगों द्वारा सिद्ध किये जा चुके हैं क्योंकि इनका प्रभाव समुद्रों की तह पर जमने वाली मिट्टी में आइसोटोपों के रूप में मौजूद है। यह कहना तो कठिन है कि जैन काल चक्र, जलवायु के काल चक्रों से सम्बंधित है और यह भी सम्भव है कि मिलान्कोविच के चक्र और पांचवें और छठे आरा का एक ही समय होना एक संयोग मात्र ही हो। परन्तु एक लाख वर्ष का जलवायु चक्र चौथे आरे से, जिसका समय काल बहुत अधिक है, मेल नहीं खाता। इससे जैन समय की इकाइयों में सन्देह उत्पन्न होता है। इसलिये इसके और अध्ययन की आवश्यकता है। पृथ्वी पर एक और 3.3 करोड वर्ष का कालचक्र, जो कदाचित ज्वालामुखी घटनाओं की पुनरावृत्ति से सम्बंधित है, काफी महत्त्वपूर्ण है। सूर्यमण्डल भी आकाशगंगा के तल के ऊपर-नीचे झूलता रहता है और उसका कालचक्र 6 करोड़ वर्ष है। फिर सूर्यमण्डल के आकाशगंगा में चक्कर की अवधि लगभग 25 करोड़ वर्ष है। सूर्य की जीवन अवधि 10 अरब वर्ष है जिसके बाद इसकी सब नाभिकीय इंधन समाप्त हो जायेगी और यह ठंडा हो जायेगा। अभी सूर्य के जीवन का आधा समय बीत चुका है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति 14 अरब वर्ष पूर्व हुई और हम उसके विकास के बारे में काफी कुछ जानते हैं, यद्यपि बिग बेंग के पहले क्या था और ब्रह्माण्ड का भविष्य में क्या होगा इसका हमें अधिक ज्ञान नहीं है। यह सब मोडल पर निर्भर करता है।

यह अध्याय समाप्त करते हुए हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक ब्रह्माण्ड विज्ञान तथ्यों पर आधारित है और उसके कई सिद्धान्त सिद्ध किये जा चुके हैं। जैन ब्रह्माण्ड विज्ञान में भी कई आकर्षक धारणाएं हैं और दोनों में कुछ समन्वय स्थापित करने की सम्भावनाएं हैं। फिर भी इसमें कोई सत्य नहीं कि दोनों में कई विवाद, असहमतियां और विरोधाभास मौजूद है और यही कारण है कि इस विषय पर आगे अनुसंधान वांछनीय है।

9

गठन और विघटन के सिद्धान्त

विश्व में प्रत्येक जीव और वस्तु संलयन और विलयन का परिणाम है। ब्रह्मांड कुछ आधार भूत तत्त्वों के संगठन और इस प्रकार बने हुये स्कन्धों के विघटन का परिणाम है। ये दोनों संगठन और विघटन की क्रियायें आदि काल से निरंतर चल रही हैं। जैन दर्शन में इन क्रियाओं का बहुत महत्व है। विभिन्न कर्माणु आत्मा से जुड़कर, जीव को विभिन्न योनियों में उत्पन्न करता है और उन कर्माणुओं का विघटन मोक्ष प्राप्ति का साधन है, जो कि प्रत्येक जीव का परम उद्देश्य है । भौतिक जगत में, भौतिक विज्ञान के अनुसार, पदार्थ का गठन और विघटन भिन्न भिन्न स्तरों पर होता है। मोटे तौर पर दो प्रकार के भौतिक तत्त्व ब्रह्माण्ड में उपस्थित हैंः पदार्थ और विकीरण। ये दोनों कुछ नियमों के अनुसार, कुछ बलों के कारण, वे सभी स्कंद बनाते हैं जो हमें दिखाई देते हैं । पदार्थ और ऊर्जा एक दूसरे में परिवर्तित हो सकते हैं। पदार्थ पिण्डमात्रा और बिना पिण्डमात्रा (mass and massless), दोनों रूपों में विद्यमान है। तत्त्वाणुओं, जैसे कि क्वार्क-ग्लूओन प्लाज़्मा (जो ब्रह्मांड के लघुतम कण हैं) और प्रोटोन, न्यूट्रोन और इलेक्ट्रोन का संगठन और विघटन नाभिकीय बलों द्वारा अर्थात प्रबल और निर्बल नाभिकीय प्रतिक्रियाओं द्वारा नियंत्रित होते हैं। इससे फिर अणु बनते हैं जो फिर यौगिक और खनिजों का गठन करते हैं। अणु और तत्त्वों के स्तर पर स्कंधों का गठन और विघटन विद्युत-चुम्बकीय बल के प्रभाव से होता है जो रसायन शास्त्र के अंतर्गत आता है। रासायनिक क्रियाओं के लिये कई प्रकार के विद्युतीय बंधन (bonds) की धारणा है, जो तत्त्वों की प्रकृति (उनकी वेलेन्सी (Valency) या उसकी कक्षा में इलेक्ट्रोन के नम्बर) पर और उनके बन्धन की क्षमता पर निर्भर है । कार्बन से बने साधारण अणु (molecules) अन्य अणुओं (हाईड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन इत्यादि) से मिलकर विशाल और जटिल अणु बनाते हैं। ऐसा विश्वास है कि यह अणु अन्ततः जैविक अणु और साधारण जीव कोष बना पायेंगे। ये कोशिकायें फिर डारविन के विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार पर्यावरण से प्रतिक्रिया कर अन्य जीवों का विकास कर सकती हैं। आधुनिक विज्ञान में जीव की अजीव से संश्लेषण होने की धारणा है पर यह अभी तक सिद्ध नहीं हो पायी है । इसलिये इसे अभी तक परिकल्पना ही मान सकते हैं पर यह यदि सत्य हुआ तो फिर आत्मा की आवश्यकता नहीं रहेगी।

जहाँ तक पदार्थ का प्रश्न है, विशाल पिण्डों में गुरुत्व के प्रभाव से ग्रह, तारे, निहारिकाएं और

विशाल ब्लेक होल (Black hole) जैसे ढाँचे बन जाते हैं। इस प्रकार सभी बल नाभिकीय, विद्युतीय और गुरुत्व क्रमशः सूक्ष्मतम से लेकर बड़े से बड़े पिण्डों की रचना करते हैं। जैन दर्शन के अनुसार शरीर बहुस्तरीय है और प्रत्येक जीव में स्थूल भौतिक शरीर से लेकर सूक्ष्म कर्माणु शरीर के पाँच स्तर विद्यमान हैं (अध्याय 5)। विभिन्न स्कंध, जिन्हें वर्गणा कहा जाता है, इन पाँचों शरीरों (कर्माणु, तेजस, आहारक, वैक्रिय और औदारिक) की रचना कर सकते हैं। ये पाँचों शरीर पाँच प्रकार के स्कन्धों से जो उन्हीं के नाम से जाने जाते है, अर्थात कर्मण वर्गणा, तेजस वर्गणा, आहारक वर्गणा, वैक्रिय वर्गणा और औदारिक वर्गणा से बनते हैं । इन पाँचों वर्गणा के अतिरिक्त तीन वर्गणाएं अर्थात मनोवर्गणा (मन और विचारों के लिये), श्वाच्छोस्वास्र (श्वास के लिये), और भाषा वर्गणा (बोलने के लिये) महत्त्वपूर्ण हैं। जैन दर्शन के तीन शरीरों की बौद्ध दर्शन के तीन शरीर धर्म काया (चेतना), सम्भोग काया, और निर्माण काया (अनुभव या भौतिक शरीर) या हिन्दू दर्शन की अन्नमय (स्थूल भौतिक शरीर जो अन्न में से ऊर्जा लेती है), प्राणमय (श्वास के लिये प्राणशरीर) जो श्वास से ऊर्जा लेती है, मनोमय (मानसिक शरीर जो मन से शक्ति प्राप्त करता है), विज्ञानमय (प्रबुद्ध शरीर,जिसमें दर्शन स्थित है) और आनन्दमय (चैतन्य या आनन्द शरीर) जो ध्यान से ऊर्जा लेता है, से तुलना की जा सकती है। ये सभी शरीर परस्पर प्रतिक्रिया करते हैं और एक दूसरे को आलम्बन देते हैं। तीनों जैन, बौद्ध और हिन्दू दर्शन इस बात से सहमत हैं कि चैतन्य शरीर बीज या आधार है जिस पर भौतिक शरीर खड़ा है ।

जैन ब्रह्माण्ड जीव और अजीव से बना है । आत्मा और परमाणु, सूक्ष्मतम, भिन्न और विशिष्ट तत्त्व हैं, जो एक दूसरे से नहीं बन सकते पर एक दूसरे से प्रतिक्रिया करते हैं और संगठन और विघटन से, स्कंध बना कर या तोड़कर, सारे ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं। आयामरहित परमाणु के समूह बनने से और इन समूहों के क्रम से बढ़ने से ब्रह्माण्ड का गठन प्रारम्भ होता है। जैसा उल्लेख किया चुका है, ये समूह या स्कंध वर्गणा कहलाते हैं। वर्गणा कई प्रकार की होती है पर जैन दर्शन में 23 प्रमुख वर्गणाओं का वर्णन है।

1. अणु वर्गणा
2. संख्याताणु वर्गणा
3. असंख्याताणु वर्गणा
4. अनन्ताणु वर्गणा
5. आहार वर्गणा (औदारिक (स्थूल), वैक्रिय (तरल) और आहारक (अस्थाई) शरीर के लिये)
6. अग्राह्य वर्गणा

7. तेजस वर्गणा (तेजस शरीर और विद्युत-चुम्बकीय कणों और तरंगों के लिये)
8. अग्राह्य वर्गणा
9. भाषा वर्गणा
10. अग्राह्य वर्गणा
11. मनोवर्गणा
12. अग्राह्य वर्गणा
13. कर्मण वर्गणा
14. ध्रुव वर्गणा
15. सन्तर-निरंतर वर्गणा
16. ध्रुव शून्य वर्गणा
17. प्रत्येक शरीर वर्गणा (गतिहीन जीवों (जैसे पौधे) के लिये)
18. ध्रुव शून्य वर्गणा
19. बादर निगोध वर्गणा
20. ध्रुव शून्य वर्गणा
21. सूक्ष्म निगोध वर्गणा
22. ध्रुव शून्य वर्गणा
23. महास्कंध वर्गणा (सभी दृष्टिगत पदार्थों के लिये)

ग्रन्थों में यह भी लिखा गया है कि 1 से 14 तक की वर्गणाएं स्थाई, सतत और पिण्ड मात्राविहीन (massless) होती हैं और उनके चार लक्षण (स्पर्श, गंध, स्वाद और रंग) होते हैं। पिण्ड विहीन वर्गणाएं ऊर्जावान होती हैं और जीवों के अदृष्य शारीरिक गठन और अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं में सहायक होती हैं। 15 से 23 तक वर्गणाएं घनी और पिण्ड वाली होती हैं। 5 से 14 तक की वर्गणाएं निम्न वर्गणाओं के संगठन से या उच्च वर्गणाओं के विघटन से बनती हैं। 15 से 23 तक की वर्गणाओं में अन्तर-परिवर्तन कठिन है। पिण्ड और ऊर्जा के परस्पर परिवर्तनीय होने के कारण पिण्डविहीन, ऊर्जावान वर्गणाओं का भौतिक विज्ञान के संदर्भ में कुछ अर्थ नहीं निकलता। आधुनिक भौतिक विज्ञान तत्त्वाणुओं के पिण्ड को भी ऊर्जा में ही मापता है, जैसे कि स्थिर प्रोटोन का पिण्ड 938 मिलियन इलेक्ट्रोन वोल्ट होता है। अन्य वर्गणाएं पिण्डमय होती हैं जहाँ अणु विद्युत बल द्वारा संगठित होते हैं। कुछ वर्गणाओं को कदाचित उनके विघटन की दृष्टि से शून्य वर्गणा कहा जाता है। 23 में से 4 वर्गणाएं इस प्रकार की हैं। अन्तिम 23 वीं वर्गणा ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों और ढाँचों का निर्माण

करती है। इस प्रकार जैन दर्शन में आत्मा की आत्मा से, आत्मा की पदार्थ से, और पदार्थ की पदार्थ से क्रियाओं का वर्णन है।

अब हम प्रत्येक वर्गणा के बारे में विचार करेंगे। ग्रन्थों में लिखा विवरण निम्न विवरण से तर्कसंगत न लगे और शायद मेल न खाये पर यह विज्ञान से सहमत है।

परमाणु सबसे सूक्ष्मतम पदार्थ है। यह अत्यन्त सूक्ष्म, आयामरहित, अखण्ड, पिण्ड विहीन और अति ऊर्जावान है और एक प्रदेश (स्थान की निम्नतम इकाइ) के भीतर रह सकता है। असंख्य परमाणुओं के स्कंध से अणु बनता है, जिसे प्रथम अणु वर्गणा कहते हैं। इस प्रकार जैन दर्शन के अनुसार अणु में असंख्य परमाणु होते हैं। जहाँ तक हम भौतिक शास्त्र से जान पाये हैं, अणु वर्गणा नाभिकीय बलों के प्रभाव से संगठित होती है। यहाँ असंख्य परमाणुओं के दो तात्पर्य हो सकते हैं: एक तो भिन्न भिन्न तत्त्वों में परमाणुओं की संख्या भिन्न है इसलिये उनकी संख्या की गणना नहीं हो सकती और उसे असंख्य कहना ही श्रेयस्कर होगा। दूसरा तात्पर्य क्वान्टम मिकेनिक्स की कण-तरंग की द्विविधता से हो सकता है क्योंकि सूक्ष्म तत्त्वाणु कभी कण या कभी तरंग का रूप ले लेते हैं अतः परमाणुओं की संख्या की ठीक से गणना नहीं हो सकती। द्वितीय वर्गणा दो या अधिक अणुओं (atoms) का स्कंध है। इसकी तुलना हम मोलीक्यूल्स या यौगिकों से कर सकते हैं जिनमें अकार्बनिक मोलीक्यूल्स (O_2, N_2, H_2 आदि) में दो अणु से लेकर कार्बनिक मोलीक्यूल्स (प्रोटीन, अमीनो एसिड, शुगर आदि) में असंख्यात अणु होते हैं। इनका संगठन विद्युतीय बन्धन (electric bonds) द्वारा होता है। वर्गणा की तृतीय श्रेणी असंख्य अणुओं के समूहों से बनती है। इनकी तुलना हम खनिजों से कर सकते हैं जो असंख्य मोलीक्यूल्स से बनते हैं। जब असंख्य अणु संगठित होते हैं तो विशाल पिण्ड (ग्रह, उपग्रह, तारे, निहारिकाएं आदि) बनते हैं जो वर्गणा की चतुर्थ श्रेणी अनन्ताणु वर्गणा कही गई है और जो मुख्यतः गुरुत्व बल के प्रभाव से बनते हैं। ये चारों वर्गणाएं (1-4) सिवाय जीव के, पूरे ब्रह्माण्ड के निर्माण में सक्षम है और यह प्रगतिशील संगठन प्रणाली सूक्ष्मतम परमाणु से, अणु, मोलीक्यूल्स, खनिज और विशालकाय ग्रह आदि बना सकते हैं, जिसमें तीनों बल (प्रबल नाभिकीय, विद्युत-चुम्बकीय और गुरुत्व) अपना अपना दायित्व निभाते हैं। परन्तु शरीर के निर्माण में, जिसमें चेतना, भाषा, श्वाच्छोसवास आदि गुण होते हैं, भिन्न प्रकार की वर्गणा की आवश्यकता है। वर्गणा की उपरोक्त चारों श्रेणियां गठित होकर मानसिकता का विकास करने में अक्षम है। इन में मानसिक और चैतन्य गुण देने के लिये पंचम आहारक वर्गणा आवश्यक है जो कार्बनिक अणुओं से बनी है और इसके स्कंध में चैतन्य शरीर का उद्भव होता है। इस क्रिया में ग्रह्यत्व नामक गुण प्रकट करने के लिये अनन्त अणुओं की आवश्यकता है जो पदार्थ में मानसिक गुण उत्पन्न कर सके। यह चैतन्य वर्गणा वैक्रिय (शरीर का आकार और आकृति के अनुरूप) और प्राण (श्वाच्छोसवास) की क्षमता का भी विकास करती है। इसके आगे की छटी वर्गणा अग्राह्य, शून्य वर्गणा कहलाती है। सातवीं, तेजस वर्गणा, ऊर्जा और द्रव्य के संगठन से तेजस शरीर बनाती है जो पाचन शक्ति उत्पन्न कर जैविक जगत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती है। तेजस वर्गणा विद्युतीय कण या तरंगों की उत्पत्ति के लिये उत्तरदायी है।

आठवीं वर्गणा एक अन्य प्रकार की शून्य वर्गणा है। अगला गठन नौवीं भाषा वर्गणा का है जिसके बाद फिर शून्य वर्गणा आती है। तत्पश्चात इग्यारहवीं मनोवर्गणा संगठित होती है जो मन और मनोविचारों की उत्पत्ति के लिये आवश्यक है। यह वर्गणा मस्तिष्क में न्यूरोन को व्यवस्थित करने की और उनको कार्य करने की क्षमता देती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैसे जैसे स्कंधों का गठन होता है और वे एक निर्णायक संख्या या पिण्ड से बड़े हो जाते हैं तब आहारक, मनो और भाषा वर्गणा से संगठित होकर उन में मन और भाषा की शक्ति आ जाती है। इस प्रकार वर्गणा के जैन सिद्धान्त के अनुसार चरणबद्ध, क्रमश: प्रगतिशील विकास के द्वारा जीव और अजीव के विभिन्न गुण प्रकट होते हैं। तत्पश्चात बारहवीं शून्य वर्गणा आती है और फिर आत्मा का सूक्ष्म द्रव्य (कर्माणु) के साथ संगठन के लिये तेरहवीं कर्मण वर्गणा आती है। इस कर्मण वर्गणा के स्कंधों में ही आत्मा से क्रिया करने की क्षमता है। चौदह से बाईसवीं वर्गणा का वर्णन हम बाद में करेंगे। उसके पश्चात अन्तिम तेबीसवीं महास्कंध वर्गणा आती है जो विशालकाय पिण्ड बनाने के लिये उत्तरदायी है और जहाँ प्रकृति के सभी बल एक साथ प्रभाव में आते हैं। ये पिण्ड पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं।

इस योजना में चारों शून्य वर्गणाओं को समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है। विद्वानों ने इनकी भिन्न भिन्न व्याख्याएं की हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि ये वर्गणाएं सदैव ही नये स्कन्ध नहीं बनाती। हम इसको विज्ञान की दृष्टि से समझने की चेष्टा करेंगे। हम इस वर्गणा की व्याख्या स्कंध के विघटन से या उसको नष्ट करने से करते हैं। प्रथम अग्राह्य, अनुपयोगी, छटी शून्य वर्गणा को हम, भौतिक विज्ञान के अनुसार प्रतिपदार्थ (antimatter) मान सकते हैं जो पदार्थ से संयोग कर उसे विकीरण में परिवर्तित कर देता है। इसी प्रकार सातवीं वर्गणा के बाद हर दूसरी वर्गणा अर्थात् आठवीं, दसवीं और बारहवीं, अग्राह्य है, अर्थात वे तेजस, भाषा और मनो स्कंधों को नष्ट कर देती है। उनके साथ संयोग से पाचन क्रिया, भाषा और मन लुप्त हो जाते हैं। इस प्रकार ऊर्जा, चेतना, मन और वाणी वर्गणा स्वयं के साथ क्रिया कर सकती है पर इससे नये स्कन्ध उत्पन्न नहीं हो सकते। केवल जब वे द्रव्य वर्गणाओं से संयोग करेंगे तभी ग्राह्यता विकसित होती है और नये स्कन्ध बनते हैं। पन्द्रहवीं सन्तर-निरंतर वर्गणा तरंग-कण द्विविधता को प्रदर्शित करती है। सोलहवी स्थाई शून्य वर्गणा का अर्थ सभी स्कंधों का स्थाई रूप से नष्ट हो जाना हो सकता है जिस रूप में विशुद्ध आत्मा सब कर्म नष्ट होने के पश्चात होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथम से छटी वर्गणाएं पदार्थ से, सातवीं से तेरहवीं चेतना से और सतरहवें से बाइसवीं वर्गणा आत्मा से सम्बंधित है। तेबीसवीं वर्गणा ब्रह्माण्ड के सब द्रव्यों पर लागू होती है। वर्गणा की ऐसी व्याख्या जिसमें कुछ संयोगों से वह शून्य वर्गणा में परिणित हो जाती है, सम्भव है पर उपरोक्त व्याख्या जिसमें विघटन या स्कंध लुप्त हो जाये, तर्क संगत लगती है। उपरोक्त व्याख्या से एक बात तो स्पष्ट है कि मनो-स्कंध तभी बन पाते हैं जब पदार्थ कुछ निर्णायक आकार या पिण्ड प्राप्त कर ले।

आधुनिक विज्ञान अर्थात भौतिक और रासायनिक क्रियाएं पदार्थ से पदार्थ का संगठन, अर्थात् सूक्ष्मतम कणों से महत्तम योगिकों के निर्माण का ज्ञान देता है। सूक्ष्मतम तत्त्वाणु जैसे कि क्वार्क और

ग्लूओन के संयोग से प्रोटोन, न्यूट्रोन और इलेक्ट्रोन आदि का और फिर उनके संयोग से अणु की रचना नाभिकीय भौतिक शास्त्र के अन्तर्गत आती है। अणु, मोलीक्यूल्स, यौगिक, खनिज आदि की रचना रसायन शास्त्र के अन्तर्गत आती है जिनका संयोग विद्युतीय बन्धनों से, जिसमें कई भौतिक क्रियायें भी सम्मलित हैं, से होती है। विशाल पिण्डों की रचना (ग्रह आदि) मुख्यतः गुरुत्व, चुम्बकत्व आदि बलों से होती है यद्यपि और अन्य बल भी अपनी भूमिका निभाते हैं।

इन सब का वर्गणा के जैन सिद्धान्तों से सामंजस्य स्थापित करना एक चुनौती है, तथापि हम जानते हैं कि सातवीं से 22 वीं वर्गणा चेतना और आत्मा के कुछ पहलुओं से सम्बधित है, जो विज्ञान का विषय नहीं है।

10

जैन दर्शन और जीव विज्ञान

जीवन प्रकृति का चमत्कार है।

उत्पत्ति और मृत्यु की क्रियायें
पुनर्जन्म

हमने पिछले कुछ अध्यायों में देखा कि जैन ग्रन्थों में भौतिक विज्ञान, गणित, ब्रह्माण्ड विज्ञान, भूगोल, रसायन विज्ञान आदि को बहुत महत्व दिया गया है, पर जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, शरीर की रचना आदि ही जैन दर्शन का केन्द्र है, क्योंकि जैन दर्शन का ध्येय जीवों की मोक्ष प्राप्ति है। जैन दर्शन और आधुनिक जीव विज्ञान के दृष्टिकोण बहुत भिन्न हैं और कुछ बुनियादी धारणाओं के अलावा, उनमें बहुत कम समानताएं है। जैन दर्शन का उद्देश्य चेतना के विकास की पद्धति विकसित करना है इसलिये वह भौतिक और मानसिक पहलुओं को एक साथ सोचता है। इसके साथ ही यह उल्लेख करना उचित होगा की जीव से सम्बंधित कई धारणाओं की जैनों ने, आधुनिक जीव विज्ञान के बहुत पहले ही, व्याख्या की। उदाहरणार्थ कम से कम 2600 वर्षों और सम्भवतः ऋषभ देव के समय के प्रागैतिहासिक काल से ही जैनों ने वनस्पति में जीव होने का दावा किया और मानते हैं कि वह एक दूसरे से संचार कर सकते हैं। यह तथ्य आधुनिक विज्ञान ने कुछ ही दशकों पहले खोजा था।

अब तक जीव की ठीक से परिभाषा नहीं की जा सकी है। आधुनिक विज्ञान और विविध दर्शनों में यथार्थतः और पूर्ण रूप से जीव को परिभाषित नहीं किया गया है। जैन दर्शन ने जीव के छः भौतिक लक्षणः प्रजनन, वृद्धि, पाचनशक्ति, गति, बाहरी उत्तेजना की प्रतिक्रिया और पर्यावरण से अनुकूलन (जिसका अभिप्राय विकास से भी हो सकता है) और कुछ मानसिक लक्षणः चेतना, सीखने की क्षमता, स्वयं का अनुभव, अच्छे और बुरे का विवेक आदि बतलाये हैं। इनमें से कुछ भौतिक लक्षण अजीव जैसे कार्बनिक यौगिकों में भी विशेष परिस्थितियों में पाये जाते हैं। जीव और वनस्पति की विभिन्न जैन धारणाओं की विस्तृत व्याख्या इस पुस्तक की परिधि से बाहर है और हम यहाँ उन्हीं विषयों पर चर्चा करेंगे जो कर्मवाद से सम्बंधित हैं।

वास्तविक जीवन में कर्म और भाग्य कार्य-कारण के सिद्धान्त से जुड़े हुए नहीं दिखते; अच्छे कर्म करनेवाला भी बहुत दयनीय दशा में दिखाई देता है और अक्सर बुरा कर्म करनेवाला आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है। पर कर्म का सिद्धान्त कर्म और भाग्य में यह असमंजस अथवा विरोधाभास पूर्वजन्म के संचित्त कर्मो के द्वारा दूर करने में सफल रहा है। इस प्रकार कर्म का सिद्धान्त जीव के संचित

कर्म और उसकी तात्कालिक दशा में सम्बंध का पुनर्जन्म के द्वारा तर्कपूर्ण तरीके से स्पष्टीकरण करता है।

जैसा कि अध्याय 6 में उल्लेख किया जा चुका है जीव के शरीर के कई स्तर होते हैं : जैसे कार्मिक, तेजस, भौतिक आदि। शारीरिक चक्रों का भी पहले वर्णन किया जा चुका है और जैन दर्शन का प्रमुख ध्येय इन ऊर्जा चक्रों को सक्रिय करना है जिनसे कुण्डिलिनी जागृत होती है, जो मोक्ष प्राप्ति के लिये आवश्यक है। प्राणशक्ति की इस क्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका है इसलिये जैन दर्शन में प्राण शक्ति को बहुत महत्त्व दिया गया है।

जैन दर्शन के सम्बंधित पहलू इस प्रकार हैं :

1. जैन ग्रन्थों में तीन भिन्न भिन्न प्रकार के जीवों का वर्णन है : औदारिक, वैक्रयिक और आहारक, जो ब्रह्माण्ड के भिन्न भिन्न भागों में रहते हैं (जिन्हें देवलोक, भूलोक और नर्क लोक कहा गया है)। इस प्रकार भांति भांति के जीव कई क्षेत्रों में रहते हैं। जैसा कि अध्याय 8 में उल्लेख किया गया है, यदि तीन प्रकार के ब्रह्माण्ड एक साथ उत्पन्न होते है (चित्र 8.1) जिनकी ज्योमिती की वक्रता धन, शून्य और ऋण हो तो वे तीनों क्षेत्र क्रमश देवलोक, भूलोक और नर्कलोक माने जा सकते हैं।
2. जैन दर्शन में पृथ्वी पर जीव उनकी इन्द्रियों की शक्ति अर्थात् स्पर्श, स्वाद, गंध, चक्षु और श्रवण शक्ति के अनुसार श्रेणीबद्ध किये गये हैंः एकिन्द्रीय (जैसे वनस्पति), दो इन्द्रीय (जैसे शंख), त्रि-इन्द्रीय (जैसे चींटी), चार इन्द्रीय (जैसे तितली) और पंचेन्द्रीय (जैसे मनुष्य और अन्य स्तनधारी जीव), जो एक प्रकार से उनकी चेतना के स्तर पर निर्भर हैं। जहाँ तक कर्मवाद का प्रश्न है, वह सभी जीवों पर समान रूप से लागू होता है और भिन्न भिन्न जीव अपने कर्मानुसार ही भिन्न भिन्न योनियों में जन्म लेते हैं।
3. जैन दर्शन के अनुसार सभी प्रकार के जीव कहीं न कहीं, हर समय मौज़ूद रहते है। यह डारविन के विकासवाद के अनुरूप नहीं है जिसके अनुसार पृथ्वी पर एक कोशीय जीवों से बहुकोशिकीय जीव और फिर मानव तक का क्रमशः विकास 3.5 अरब वर्षों में धीरे धीरे हुआ (अध्याय-1)। दोनों धारणाएं एक दूसरे से सहमत हो सकती हैं यदि जीवन पृथ्वी पर ही सीमित नहीं है पर सारे ब्रह्माण्ड में कई स्थानों में व्याप्त है।
4. जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक जीव में आत्मा होती है और कर्मों के अनुसार उसका पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार भाग्य और इस जन्म के कर्मों में विरोधाभास का कारण पिछले जन्मों के संचित कर्मों का फल है। एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तर गमन इसी सिद्धान्त का एक परिणाम है।

पुनर्जन्म हमें अपना जीवनकाल दूसरे जन्मों तक बढ़ाने का अवसर देता है और मोक्ष प्राप्ति के

प्रयासों को जारी रखने का अवसर और कोई भी मंजिल, चाहे उसमें कितना भी समय लगे, हासिल करने की आशा देता है। पुनर्जन्म के कई उदाहरण मिलते हैं पर इनमें अधिकतर व्यक्ति-परक हैं और पुनर्जन्म के पक्के और विश्वसनीय वैज्ञानिक प्रमाण इकठ्ठे करना कठिन है। तर्क की दृष्टि से पुनर्जन्म को मानने में कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि यदि कोई एक बार जन्म ले सकता है तो जब सही परिस्थितियाँ हो तो वह पुनः जन्म ले सकता है। विज्ञान के नियम एक सी परिस्थिति में वही प्रक्रिया दुबारा होने की अनुमति देते हैं।

जैन दर्शन में जन्म की प्रक्रिया पर बहुत विचार किया गया है। लैंगिक और अलैंगिक गर्भाधान (कोख या अण्डों से) की क्रियाओं और पराग आदि द्वारा प्रजनन के अतिरिक्त जैन धारणा के अनुसार देवों और शुद्ध आत्माओं का जन्म असाधारण, अप्राकृतिक, अलैंगिक क्रियाओं द्वारा होता है, जैसे ईसा मसीह को, जो ईश-पुत्र थे, वर्जिन (कुंवारी) मेरी ने जन्म दिया। इसी प्रकार राम और उनके भाइयों का यज्ञ के द्वारा, कर्ण और पाण्डवों का सूर्यदेव द्वारा कुन्ती के गर्भाधान से, और महावीर का ऋषभदेव नामक ब्राह्मण की पत्नी देवानन्दा के गर्भ से रानी त्रिशला के गर्भ में स्थानान्तरण हुआ और बौद्ध शास्त्रों के अनुसार पद्मसम्भव कौपर पर्वत के निकट एक झील में कमल में प्रकट हुए।

आधुनिक जीव विज्ञान ने पिछले दशकों में आणविक जीव विज्ञान (मोलीक्यूलर बायोलोजी) और जेनेटिक इन्जीनियरिंग की तकनीकों द्वारा और कई प्राणियों के जीनोम अनुक्रम का पता लगाकर असीम प्रगति की है। इन सब से यह तो निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि शारीरिक और मानसिक स्थिति और स्वास्थ्य जीनोम अनुक्रम (genome sequence) पर निर्भर करता है, जिसके साथ उस प्राणी का जन्म होता है। यह धारणा जैन कर्मवाद से सहमत है जिसमें किसी प्राणी का गौत्र कर्म और नाम कर्म उसके संचित कर्मों पर निर्भर करते हैं। जैन अवधारणाओं को ध्यान में रखकर जीव विज्ञान में अनुसंधान की बहुत सम्भावनाएं है और इसी प्रकार जैन अवधारणाओं का आधुनिक प्रयोग और विश्लेषण तकनीकों का उपयोग कर पुष्टि करना। यदि जैन अवधारणाओं को ठीक से परिभाषित किया जा सके, और यदि उनकी आधुनिक आणविक जीव विज्ञान की तकनीकों का प्रयोग कर पुष्टि की जा सके तो उनका वैज्ञानिक आधार बन पायेगा। उदाहरण के तौर पर यह प्रश्न उठता है कि क्या जीनोम या डी.एन.ए. (D.N.A.) अनुक्रम कर्मण शरीर द्वारा तय किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त क्या जैन साधना (तप, मन्त्र, ध्यान और पांच महाव्रत का पालन करने से) जीनोम अनुक्रम को संशोधित कर सकती है ? परमाणु और कर्माणु का सम्बंध, कर्माणु का जीनोम पर प्रभाव, और कर्माणु का शारीरिक और मानसिक प्रभाव आदि प्रश्नों का आधुनिक प्रयोगों की तकनीकों द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। क्लोनिंग आत्मा के अस्तित्व, इसका विभिन्न शरीरों में जन्म, और कर्म के प्रभाव आदि (अध्याय 4 और 5) कई जैन अवधारणाओं का समाधान या पुष्टि कर सकता है। इस प्रकार क्लोनिंग जैन दर्शन के कर्मवाद के सिद्धान्त की अग्निपरीक्षा हो सकता है। यदि बहुत से क्लोन बनाएं जायें तो वे सभी एक से होते हैं और उनमें कुछ ही अपवाद होते हैं। तब किस प्रकार विभिन्न आत्माएं आयुष्कर्म, नामकर्म और गोत्रकर्म के अनुसार भिन्न भिन्न योनियो का चयन करती है (अध्याय 4)।

इस को आधुनिक विज्ञान के प्रकाश में कई तरह से समझा जा सकता है जो जैन कर्मवाद से सहमत हों पर इससे जैन अवधारणाओं की पुनः व्याख्या करने की और अनुसंधान करने की आवश्यकता है। इस प्रकार आत्मा और उससे चिपके हुए कर्मों के अस्तित्व की पुष्टि परोक्ष रूप से की जा सकती या उसका अनुमान लगाया जा सकता है पर इसके लिये उपयुक्त प्रश्नों और प्रयोगों को सूत्रित करने की आवश्यकता है।

पिछले दशकों में जन्म की क्रिया के बारे में काफी अनुसंधान किया जा चुका है। लैंगिक और अलैंगिक प्रजनन, परखनली शिशुओं, कृत्रिम माताएं (surrogate mothers), क्लोनिंग, जीनोम, और कृत्रिम डी.एन.ए. इसके कुछ उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि जन्म की जटिलताएं काफी हद तक समझी जा चुकी हैं। परन्तु जीव विज्ञान ने मृत्यु की क्रिया का विशेष अध्ययन नहीं किया है, सिवाय इसके कि वे मृत्यु को जीवन का अन्त मानते हैं जो शायद गलत है। पूर्वी धर्मों में जैसे जैन, बौद्ध और हिन्दू दर्शनों में मृत्यु पर काफी विचार किया गया है। मृत्यु वास्तव में एक क्रमिक और दीर्घ क्रिया है और एक क्षणिक घटना नहीं है जैसा कि जीव विज्ञान मानता है। मृत्यु जन्म के साथ आरम्भ होती है और पुनर्जन्म तक जारी रहती है। दो मृत्युओं के बीच का अन्तराल, जिसे हम जीवन कहते है, प्रबुद्धता प्राप्ति का एक अवसर भर है।

सब प्राणियों का शरीर, सूक्ष्मतक अंश तक, कई तत्त्वों का स्कंध है और यह स्कंध, मृत्यु के समय अपने विशुद्ध तात्विक स्वरूप में भंग हो जाते है। यदि हम मानव शरीर के प्रमुख तत्त्वों को समझ लें, जिनका जैन, बौद्ध और हिन्दू दर्शनों में वर्णन है, तो हमें मृत्यु की प्रक्रिया समझने में आसानी होगी। शास्त्रों में उल्लेख है कि शरीर सूक्ष्म नाड़ियों, प्राणवायु और बिंदु का एक गतिशील नेटवर्क है। शरीर में 72000 सूक्ष्म नाड़ियां है जिनमें तीन प्रमुख हैं। मूलाधार चक्र से सहस्त्रार चक्र तक जाने वाला मेरुदंड और इसके दोनों ओर अर्थात दायें और बांये दो नाड़ियां है। शरीर में सात प्रमुख चक्र हैं। (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार) जिनका अध्याय 6 में वर्णन किया गया है। दोनों ओर की प्रमुख नाडियों के, जिनमें अशुद्ध प्राणवायु है, मध्य में स्थित प्रज्ञा मेरु दण्ड के साथ मिलकर दो गुच्छे बने हुए हैं। प्रत्येक तत्त्व की 5 प्रमुख मूल वायु है जो शरीर को संचालित करती है और पाँचों इन्द्रियों के लिए 5 उपवायु हैं। श्वेत और रक्तवर्ण बिन्दु इन नाड़ियों या चक्रों में निवास करते हैं। श्वेत बिन्दु सहस्रार चक्र में, और रक्त बिन्दु अनाहत चक्र में स्थित है। हमारा भौतिक शरीर 5 स्कन्धों से बना है, जो सारे भौतिक और मानसिक अस्तित्व का आधार है। आकृति, संवेदना, अनुभूति, बुद्धि, चेतना और अहंकार का अनुभव इन स्कंधों के कारण है।

जैन तपस्वियों ने संलेखना द्वारा, जीवन के अन्तिम क्षण तक सतर्क रह कर, मृत्यु का साक्षात्कार किया है पर उनके संसमरण उपलब्ध नहीं है। जैन शास्त्रों के अनुसार शरीर का विलय स्थूलतम (ब्रह्माण्ड) से सूक्ष्मतम (आत्मा) के विलय के साथ घटता है और इस क्रिया में पाँचों शरीर (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजस और कर्मण शरीर, अध्याय 6) भी क्रमशः एक के बाद एक गल जाते हैं। इस प्रकार मृत्यु की प्रक्रिया, एक अत्यन्त जटिल और कई तत्त्वों पर परस्पर आधारित क्रिया है। इसके दो

मुख्य चरण हैः बाह्य विलय, जब इन्द्रियां और शरीर के अवयव विलीन होते हैं और अन्तर-विलय, जब स्थूल और सूक्ष्म मनोविचार और भाव विलीन होते हैं। शरीर के चारों ओर एक आभा (aura) होती है जिसका विस्तार दूर तक होता है। सर्वप्रथम आभा संकुचित होती है और उसके साथ ही ब्रह्माण्ड की अनुभूति क्षीण हो जाती है। वास्तव में, ब्रह्माण्ड विलीन नहीं होता पर केवल उसकी अनुभूति लुप्त हो जाती है और उस व्यक्ति के लिये इन्द्रियों के लुप्त होने के साथ ही ब्रह्माण्ड की अनुभूति का पूर्ण रूप से विलय हो जाता है। उदाहरण के तौर पर जब मृतप्रायः व्यक्ति ध्वनि तो सुन सकता है पर शब्दों को नहीं समझ पाता तब श्रवण चेतना काम करना बंद कर देती है। जब वह आकृति की रूपरेखा तो देख सकता है पर उसके अंश नहीं देख सकता और उसे पहचान नहीं पाता तब उसकी दृष्टि चेतना लुप्त हो जाती है। इसी प्रकार गन्ध, स्वाद और स्पर्श की क्षमता, एक के बाद एक, लुप्त हो जाती है पर यह आवश्यक नहीं कि वह इसी क्रम में हो। जब ये संवेदन पूर्णतया लुप्त हो जाते हैं तब ब्रह्माण्ड की अनुभूति भी लुप्त हो जाती है। राबर्ट थुर्मन की "टिबेटन बुक ऑफ द डेड" और सोग्याल रिंपोचे की "टिबेटन बुक ऑफ लिविंग एण्ड डाइंग" के अनुसार उसके पश्चात भौतिक शरीर के पाँचों तत्त्व पृथ्वी (हड्डियां और माँसपेशिया, गंध और उसकी ग्रंथी); जल (रक्त, शरीर के तरल पदार्थ, स्वाद की ग्रंथियां आदि); अग्नि (ऊर्जा, दृष्टि के अंग, शरीर का तापक्रम आदि); वायु (श्वास, स्पर्श का संवेदन आदि); और आकाश (शरीर के छिद्र, ध्वनि और श्रवण का संवेदन) विलीन होना शुरू हो जाते हैं। इन पुस्तकों के आधार पर संक्षेप में मृत्यु के समय शरीर के पाँचों तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) क्रमशः एक दूसरे में घुल जाते हैं। सर्व प्रथम पृथ्वी तत्त्व (हड्डिया, मांसपेशियां आदि) जल तत्त्व में विलीन होती है तब मरनेवाला व्यक्ति सब ताकत खो देता है, अपने आपको सहारा नहीं दे पाता और उसे ऐसा लगता है कि वह कोई पहाड़ के नीचे या जमीन के अन्दर दब रहा है। गालों का धंसना, दाँत पर काले धब्बे उभरना, कान की लटकन पीछे की ओर मुडना, और कराहना आदि इसके लक्षण हैं। ऐसी अवस्था में मन तंद्रालु और भ्रांतचित्त हो जाता है और मृगतृष्णा जैसे भ्रम उत्पन्न होते हैं। फिर जल तत्त्व अग्नि में विलीन होना शुरू होता है। मरने वाला व्यक्ति अपने शरीर के तरल पदार्थों पर नियंत्रण खो देता है और आँख, नाक आदि से रिसाव शुरू हो जाता है। जीभ, मुँह और होट सूख जाते हैं और चिपचिपे हो जाते हैं। मरने वाले व्यक्ति को ऐसा लगता है कि वह समुद्र या नदी में डूबा जा रहा है। दृष्टि धुंधली हो जाती है और धुएं के गुब्बार प्रकट होते हैं। इसके बाद अग्नि तत्त्व वायु तत्त्व में विलीन होना आरंभ होता है। मुँह और नाक सूख जाते हैं और हाथों और पैरों से ताप दिल की ओर जाने लगता है। सर के ऊपर से उष्मा निकलती हुई लगती है, सांस ठंडी पड़ जाती है और न तो वह व्यक्ति कोई पेय और न ही भोजन पचा पाता है। याददाश्त कम होने लगती है और वह व्यक्ति उनको भी नहीं पहचान पाता जिन्हें वह अच्छी तरह जानता है। मन, ध्वनि और दृष्टि भ्रमित हो जाती है। उसको ऐसा लगता है कि वह आग में जल रहा है और सारी दुनिया में प्रलय हो रहा है। जुगनु और लाल चिंगारियों का मतिभ्रम हो जाता है। फिर वायु तत्त्व चेतना में विलीन हो जाता है। सांस लेना भी मुश्किल हो जाता है। श्वास खींचने की प्रक्रिया

छोटी हो जाती है और छोड़ने की प्रक्रिया लम्बी। बुद्धि भ्रमित हो जाती है और मन व्यग्र। इस स्थिति में वह व्यक्ति अचेतन दशा (कोमा) की कगार पर खड़ा होता है। मरने वाले व्यक्ति के लिए पूरा विश्व एक बवंडर की चपेट में जा रहा लगता है। उसे एक ज्वाला या लाली दिखाई देती है। केवल दिल में थोड़ी उष्णता बची रहती है। चेतना वायु पर आरुढ़ हो जाती है इसलिये उस वायु को शरीर त्याग कर कोई छिद्र में से बाहर जाना पड़ता है। इसके लिये सर के ऊपर ब्रह्म रंध्र सबसे उत्तम है, जिससे वह उत्तम योनि में पुनर्जन्म लेता है, जहाँ सम्बोधि सम्भव है।

जब भौतिक या औदारिक शरीर और वैक्रिय शरीर ढह जाता है तब चिकित्सा शास्त्र के अनुसार नैदानिक मृत्यु मान ली जाती है और व्यक्ति को मृत घोषित कर दिया जाता है। पर इसके पश्चात आन्तरिक मृत्यु का अनुक्रम, आहारक, चेतन, तेजस और कर्मण शरीर का अन्त शुरू होता है और गर्भाधान के क्रम के विपरीत क्रिया आरंभ होती है।

शास्त्रों के अनुसार पिता (शिव या पुरुष, male) के शुक्राणु और माता (शक्ति या प्रकृति, female) के डिंब के योग के समय जब हमारी चेतना संचित कर्मों द्वारा प्रेरित होकर उनमें प्रवेश करती है, तब गर्भाधान की प्रक्रिया आरम्भ होती है। गर्भ के विकास पर, पिता का बिन्दु (शिव) जो एक श्वेत और आनन्दित बीज होता है सहस्त्रार चक्र में और माता का बिन्दु (शक्ति), जो लाल और उष्ण होता है, स्वाधिष्ठान चक्र में स्थित हो जाते हैं। मृत्यु के समय सहस्त्रार में से पिता का बिन्दु नीचे उतर कर, और माता का बिन्दु स्वाधिष्ठान चक्र से ऊपर हृदय की ओर जाते हैं और मन विलीन होना शुरू हो जाता है। सब से पहले क्रोध और इच्छा की स्मृतियाँ जो मन में संचित होती हैं विस्मृत होती हैं और पिता और माता के बिन्दु के योग से एक प्रकार का पूर्ण अंधकार छा जाता है। अज्ञानता और भ्रान्तियां आदि सभी मनोविकार विलीन हो जाते हैं। इस स्थिति में चेतना या जिसे तिब्बतीय महायान बौद्ध "भू प्रकाश" या "मातृ प्रकाश" कहते हैं, उदय होता है। इस प्रकाश का अर्थ सत्य स्वरूप है। यह प्रचण्ड निर्मल प्रकाश "आँखों से दिखने वाला "प्रकाश" नहीं है और अवर्णनीय है, केवल ध्यान में ही इसका अनुभव हो सकता है। यह प्रकाश प्रकृति का स्वरूप (अर्थात त्रिपदी द्वारा वर्णित उत्पत्ति, ध्रौव्य और विनाश) जिसका अध्याय 5 में उल्लेख किया गया था, अनेकान्तवाद, कर्मवाद, (अध्याय 3 और 4) और वे शाश्वत नियम हैं जो जगत को संचालित करते हैं। ये नियम परम कीर्तिवान और स्वयं प्रकाशित हैं। सच में, इस स्थिति में व्यक्ति को सारे ब्रह्माण्ड का, उसके भूत, वर्तमान और भविष्य का दर्शन हो जाता है। उसकी उत्पत्ति, व्यय, सारे पर्याय और उनके लक्षण और उन सब को नियंत्रित करते हुए कर्म के नियम एक साथ अनुभव में आते हैं। सभी धारणाओं, अनुभूतियों और भ्रान्तियों के विलीन होने के कारण मन विशुद्ध अवस्था में होता है और मन के विलीन होने का क्षण ब्रह्माण्ड का सच्चा स्वरूप जानने का अवसर है। इसके पश्चात मन का कोई अस्तित्व नहीं रहता। ऐसा कहा जाता है कि मृत्यु के समय मन पूरे जीवन की समीक्षा करता है और सारा जीवन एक फिल्म की तरह मन में चलता है। उस समय मन अच्छी और बुरी प्रत्येक घटना का विशद विवरण देख सकता है।

तत्त्वों के विलीन होने की इस प्रक्रिया में चेतना का केन्द्र बदलता रहता है। पृथ्वी तत्त्व के विलय के समय चेतना अनाहत चक्र में, जल तत्त्व के विलय के समय मणिपुर चक्र में, अग्नि तत्त्व के विलय के समय आज्ञा चक्र में और वायु तत्त्व के विलय के समय सहस्त्रार चक्र में स्थिर होती है। भू प्रकाश अत्यन्त प्रचंण्ड होता है और तब तक रहता है जब तक चेतना उसमें विराम करती है परंतु अधिकतर व्यक्ति उसे पहचान नहीं पाते और अचेत हो जाते हैं । यह स्थिति अधिक से अधिक साढ़े तीन दिन तक रहती है और फिर आखिरकार आत्मा शरीर का त्याग कर देती है। परंतु यह भी जीवन का अंत नहीं है। इस अवस्था में, जिसे आत्मा का स्वरूप या बौद्ध धर्मता का पड़ाव (**bardo**) कहते हैं, शिशु-प्रकाश (**Child luminosity**) का उद्भव होता है। यह मन का सच्चा स्वरूप अर्थात सर्वज्ञता अथवा केवलज्ञान की स्थिति है। वास्तव में मातृ प्रकाश (शाश्वत नियम) और शिशु प्रकाश (आत्मा का स्वरूप) एक ही है और उनका योग प्रबुद्धता है। इस प्रकार प्रबुद्धता की ऊर्जा मुक्त होती है और दृष्टा (ज्ञाता) और दृश्य (ज्ञेय) दोनों एक हो जाते हैं। इस स्थिति में कोई द्वैत नहीं रहता, केवल ज्ञान बचता है। यदि आत्मा अपने इस स्वरूप को नहीं जान पाती तो चेतना का विलय जारी रहता है। अगले चरण में आकाश (**Space**) का प्रकाश में, प्रकाश का योग में, योग का प्रज्ञा में, और प्रज्ञा का अनायास ही अस्तित्व में विलय हो जाता है। क्रमानुसार विलय की यह क्रिया तीव्र प्रकाश और घनघोर ध्वनि के साथ चलती रहती है और कर्मण शरीर को त्यागकर प्रबुद्धता प्राप्त करने का एक अन्तिम अवसर आता है। यदि व्यक्ति को आत्म-स्वरूप का अनुभव हो जाता है तो वह एक नव जात शिशु की तरह, एक अबोध अवस्था में होता है जिसमें कोई धारणा, भय, अनुभूति या अच्छी या बुरी स्मृति नहीं होती। यदि यह ज्ञान नहीं होता तो आत्मा अन्ततः कर्मण शरीर के साथ शरीर त्याग देती है और फिर उसका पुनर्जन्म होता है। पुनर्जन्म की प्रक्रिया मृत्यु की क्रिया के विलकुल विपरीत है। सबसे पहले वायु (प्राण) प्रकट होता है और फिर मन उत्पन्न होता है।

यह ध्यान में रखना चाहिये कि नये मानसिक शरीर में पिछले जीवन और स्मृति का आकर्षण रहता है और उसे अवधि ज्ञान होता है। इसीलिये वह अपने मृत शरीर, अपनी सम्पत्ति, मित्र और सम्बंधियों के चारों ओर मंडराता रहता है और मृत शरीर में प्रवेश करने की चेष्टा करता है और अपनी सम्पत्ति को, जिससे उसे लगाव है, पाने का प्रयत्न करता रहता है। ऐसा कहा जाता है कि यह स्थिति (**bardo**) पिछले जीवन के संस्कारों के साथ 21 दिन तक चलती है। भौतिक शरीर के सहारे के बिना यह मन सतत रूप से मंडराता रहता है जब तक इसको कर्म के अनुसार उपयुक्त गर्भ नहीं मिलता। जब उसे उपयुक्त माता पिता मिल जाते हैं जहाँ वो संचित कर्मानुसार अगला जीवन बिता सके, वह पुनर्जन्म लेता है। तत्पश्चात यह क्रमशः अग्नि, जल और भू तत्त्वों से योग कर भौतिक शरीर का निर्माण करता है। अब नये जीवन की शुरूआत उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार पुराना जीवन भूप्रकाश अर्थात प्रकृति के नियमों के ज्ञान के अनुसार समाप्त हुआ था।

इन मृत्यु और जन्म की प्रक्रियाओं पर आधुनिक जीवन विज्ञान ने कुछ विचार नहीं किया है। जीव विज्ञान के अनुसार पिता के शुक्राणु और माता के डिम्ब के मिलते ही गर्भाधान हो जाता है और भौतिक शरीर बन जाता है। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार मन का उद्भव बाद में होता है और वातावरण से प्रक्रिया का ही व्यक्ति के विकास में महत्व है। प्रत्येक व्यक्ति के गुण और संस्कार भिन्न होने का कारण जीनोम (Genome) या DNA का अनुक्रम है पर DNA क्यों भिन्न होते हैं, इस पर विज्ञान की कोई धारणा नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मृत्यु, शारीरिक लक्षणों, मानसिक क्षमताओं (क्रोध, मोह, अज्ञान आदि), और इंद्रियों के विलय की एक लम्बी प्रक्रिया है, जो केवल पुनर्जन्म के साथ समाप्त होती है। ये क्रियाएं केवल मनुष्यों में ही नहीं बल्कि सभी जीवों में होती हैं। चिकित्सा विज्ञान की धारणाओं से परे भी मृत्यु में बहुत कुछ रहस्य है। नैदानिक या भौतिक शरीर की मृत्यु, जब दिल की धड़कन, श्वास और मस्तिष्क क्रियायें बन्द हो जायें, मृत्यु के पूरे क्रम में केवल एक अवस्था है और इस बहु-स्तरीय मृत्यु की क्रिया में अनुसंधान की बहुत संभावनाएं है। जीव विज्ञान के आधुनिक अति संवेदनशील उपकरणों से इसकी पुष्टि और शास्त्रों की पुनःव्याख्या कर आधुनिक दृष्टि से इनका महत्व समझना बाकी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन जीव शास्त्र का आधार आधुनिक जीव विज्ञान की क्रियाओं से व्यापक है यद्यपि इसकी कई धारणाएं अप्रांसगिक और असंगत लग सकती हैं। ऐसी व्यक्तिगत महत्व की क्रियायें समझने के लिये दोनों विज्ञान और धर्म को साथ लेकर एकीकृत दृष्टिकोण बनाना वांछनीय है।

11

जैन दर्शन में शान्ति

सब जीवों का मंगल जैन दर्शन का मूल मंत्र है। इसलिये यदि हम जैन दर्शन में शांति की अवधारणा का उल्लेख न करें तो यह पुस्तक अधूरी रह जायेगी। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा का आधारभूत गुण शांति है और जैसा अध्याय-2 में वर्णन किया गया है, यह अनन्त सुख प्राप्ति के लिये आवश्यक है। शाश्वत शान्ति आत्मा की मौलिक स्थिति और अन्तिम लक्ष्य भी है। शान्ति मन का आन्तरिक लक्षण और व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र, विश्व और निस्सन्देह पूरे जगत का बाहरी लक्षण है। मन की आन्तरिक शान्ति और विश्व की बाहरी शान्ति अलग अलग चीजें हैं, एक दूसरे से स्वतंत्र हैं, पर व्यवहारिक दृष्टि से वास्तव में उनमें गहरा अन्तर सम्बंध भी है। कोई व्यक्ति बिना आन्तरिक शान्ति के भी बाहर से शान्त लग सकता है पर जिसे आन्तरिक शान्ति मिल गई हो वह बाहर से अवश्य शान्त होगा।

शांन्ति की जैन अवधारणा अन्य दर्शनों से भिन्न है।

1. शान्ति आत्मा का सनातन गुण है। कोई भी व्यक्ति स्वयं को जीत कर अर्थात अपने भावों को नियंत्रित कर शाश्वत शांति प्राप्त कर सकता है। जब कोई व्यक्ति सभी अवगुणों (क्रोध, इर्षा, प्रतियोगिता, मोह, घृणा आदि) से मुक्त हो जाता हैं, तो अशान्ति अनायास ही लुप्त हो जाती है।
2. स्वयं का मंगल दूसरों के मंगल पर निर्भर करता है। इसीलिए जैनदर्शन में अहिंसा का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है और इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया हैं। जैन प्रार्थनाओं में ब्रह्माण्ड के सभी जीवों की मंगल कामना पर अधिकतम महत्व दिया गया है।
3. दूसरों के विचारों का आदर करना, चाहे वे विरोधाभासी ही हों, शांति का भावार्थ है। इसीलिये अनेकान्तवाद के सिद्धान्त को (अध्याय 3) प्रतिपादित किया गया है।
4. अपने स्वार्थों के त्याग के बिना शांति नहीं मिल सकती है। इसीलिए तप, साधना, मितव्ययिता से रहना, अपरिग्रह और आस्तेय का पालन आवश्यक है।

कुछ अन्य दर्शनों में, विशेष कर पश्चिमी दृष्टिकोण में, शांति का अर्थ दूसरों की सुरक्षा की परवाह किये बिना, अपने लिये सुरक्षित परिस्थितियां बनाना है। इसकी तुलना में जैन धारणा है कि अपनी सुरक्षा तभी हो सकती है जब विश्व में सब सुरक्षित हों। इसलिए अपनी सुरक्षा की तुलना में

औरों की सुरक्षा को अधिक महत्व दिया गया है। जब कोई व्यक्ति स्वयं को जीत लेता है, उसको आन्तरिक शांति उपलब्ध हो जाती है। शांति के लिये विश्व विजय करना आवश्यक नहीं है।

बौद्ध और जैन दर्शनों, दोनों का, शांति के बारे में एक ही दृष्टिकोण है। विश्व का शासन करने के लिये शक्तिशाली हथियारों की और सर्वशक्तिशाली होना आवश्यक नहीं है। वास्तविक रूप से सर्वश्रेष्ठ शक्ति, बन्दूक की नोक पर नहीं, पर तब प्राप्त होती है जब अन्य लोग आपके विचारों और दृष्टिकोण को अपनाएं और उनका अनुसरण करें। बौद्ध धर्म का भारत में उद्भव हुआ पर एक समय उसका आधे से अधिक विश्व ने, जिसमें चीन और तिब्बत उत्तर में, जापान, मलेशिया, कोरिया, और इन्डोनेशिया ने पूर्व में, अफगानिस्तान ने पश्चिम में और श्रीलंका ने दक्षिण में, विचार और क्रिया से, बिना दबाव या जबरदस्ती के उसका अनुसरण किया। पूर्वी विचारधारा में यही सर्वशक्तिशाली का लक्षण है।

अहिंसा और क्षमा, शांति की प्राथमिक मांग है। अहिंसा का पालन उस तह तक करना चाहिये जब किसी भी जीव को मन, वचन और कर्म से कष्ट नहीं पहुँचे और यदि किसी जीव को जाने-अनजाने में दुःख पहुँचे तो उससे अन्तर मन से क्षमा याचना करनी चाहिये। विश्व में अधिकतर लोग किसी भी रूप में हिंसा को पसन्द नहीं करते और इस दृष्टि से विश्व में सभी लोग जैन सिद्धान्त का कुछ हद तक अनुसरण करते हैं। जैन दर्शन किसी भी रूप में मन, वचन, या कर्म से हिंसा की अनुमति नहीं देता और न ही किसी भी कारण से हिंसा को आश्रय देता है। अपनी सुरक्षा या अपने बचाव के लिये भी हिंसा का सहारा लेना जैन दर्शन की दृष्टि में अपराध है। अहिंसा परम उत्तम धर्म माना गया है और भौतिक और मानसिक स्तर पर उसका पालन अनिवार्य है। भौतिक स्तर पर अहिंसा पालन केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं, पर क्षुद्रतम जीवों की रक्षा से प्रारम्भ होता है । इसलिये शाकाहार अहिंसा का प्रथम चरण है और जैन सिद्धान्तों और दर्शन का आधार है। मानसिक स्तर पर क्षमायाचना को अन्यन्त महत्व दिया गया है। क्षमायाचना की भी विस्तृत पद्धति है। सबसे पहले हम को उपवास और अन्य तपों द्वारा शरीर की शुद्धि करनी चाहिये फिर प्रतिक्रमण करके मन की शुद्धि करनी चाहिये, फिर अध्याय 6 में उल्लिखित पद्धति से वैश्विक क्षमा याचना करनी चाहिये। यह प्रति दिन या प्रति वर्ष की जा सकती है। जैनों ने प्रति वर्ष क्षमा देने और क्षमायाचना के लिये एक दिन तय किया है जिसे सम्वत्सरी कहते हैं। यह निश्चयतः कुटुम्ब, समाज और विश्व में शांति और तादातम्य स्थापित करता है। ऐसी आशा है कि जैन पद्धतियां एक शांतिपूर्ण विश्व की स्थापना करेगी और सब के लिये मंगलमय होंगी।

परिशिष्ट - 1

जैन भूगोल, ब्रह्माण्ड विज्ञान और आधुनिक विज्ञान की कुछ असंगतियां

पिछली चार शताब्दियों में, जब से गेलीलियो ने अपनी दूरबीन से खगोलीय पिण्डों को देखा और न्यूटन ने गति के नियम प्रतिपादित किये, विज्ञान ने अनुसंधान की तकनीकों और थ्योरीटिकल मोडलिंग में काफी प्रगति की है। जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है, जैन लोकवाद को अपने दर्शन का एक आवश्यक अंग मानते हैं और यह दावा करते हैं कि सत्य ब्रह्माण्ड में ही गुंथा हुआ है। इसलिये हम वैज्ञानिक अध्ययन की अवहेलना नहीं कर सकते। यह विचारणीय है कि जैन दर्शन और विज्ञान दोनों ही सत्य की खोज में लगे हैं और कम से कम भौतिक पहलुओं में दोनों में सामंजस्य होना ही चाहिये। दर्शन और विज्ञान दोनों को ही उनकी सीमाओं के संदर्भ में देखना चाहिये। विज्ञान अपूर्ण हो सकता है पर वह सदैव संशोधन के लिये तैयार रहता है और तथ्यों पर आधारित होने के कारण असत्य नहीं हो सकता। निसंदेह विज्ञान बुद्धि और इन्द्रियों की क्षमता के अनुरूप सीमित है। इसकी तुलना में जैन दर्शन में ऐसी कोई सीमा नहीं है क्योंकि यह तीर्थंकरों द्वारा दिया गया इन्द्रियातीत ज्ञान है। दुर्भाग्यवश सर्वज्ञों द्वारा दिये गए ज्ञान का कोई अक्षरशः रिकार्ड उपलब्ध नहीं हैं, इस ज्ञान का कई शताब्दियों के बाद संकलन किया गया था और उनकी टीकाएं जोड़ दी गई थी। यदि हम मान भी लें कि आरम्भ में वे सर्वज्ञों द्वारा दिये गये सत्य वचन थे, तो भी समय के साथ वे भाषा, संकलनकर्ताओं और टीकाकारों के ज्ञानानुसार विकृत होते गये और उनमें कई असंगतियों का समावेश हो गया।

जैन ग्रन्थों और आधुनिक विज्ञान में मुख्य असंगतियां निम्न लिखित विषयों से सम्बंधित हैं:

1. भूगोल : दूरसंवेदन तकनीक से हमें भूगोल और ग्रहों के बारे में स्पष्ट और निश्चित ज्ञान है।

2. ब्रह्माण्ड विज्ञान : इसमें ग्रह विज्ञान भी शामिल है।

1. चपटाकार पृथ्वी की अवधारणा

जम्बुद्वीप पण्णति में चपटी पृथ्वी का वर्णन है जिसमें दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं। यह सिद्धान्त उस समय पश्चिम और पूर्वी देशों में प्रचलित था और यह विशेषरूप से केवल जैन अवधारणा नहीं है। जैन विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में दो सूर्य और दो चन्द्रमा का सामंजस्य बिठाने के कई प्रयास किये हैं पर सबसे युक्ति सम्मत तर्क इस प्रकार है। बहुत पहले ग्रहों की रचना की एक थ्योरी थी कि हमारा

ग्रहमण्डल दो तारों के (जिसमें अपना सूर्य एक था) बहुत पास आने से हुई जिसके कारण दोनों तारों ने एक दूसरे का कुछ द्रव्य एक सिगरेट की शक्ल में खींच लिया जो ग्रहों के रूप में संगठित हो गए। दूसरा तारा फिर अपने पथ पर दूर चला गया और उसे अब ढूंढ पाना संभव नहीं है। यह थ्योरी अब प्रचलित नहीं है और सोलर नेबुला की थ्योरी से विस्थापित कर दी गई है जिसमे एक घना, ठंडा, धुरी पर घूमता हुआ आणविक बादल (Moleculer cloud) संकुचित होकर सूर्य और ग्रहों में परिणित हो गया। दो चन्द्रमा की थ्योरी इस प्रकार समझायी जाती है कि पृथ्वी कभी कभी अस्थाई रूप से क्षुद्र ग्रहों या पिण्डों को, जब वे उसके पास से गुजरते हैं, अपने गुरुत्वाकर्षण के कारण कक्षा में बंधक बना लेती है। इसकी काफी संभावना है और ऐसा कई बार हो चुका है हाँलाकि अभी पृथ्वी का एक ही उपग्रह है। इन अस्थाई उपग्रहों को कदाचित् ही पृथ्वी के उपग्रह माना जा सकता है। करोड़ों मिट्टी के कण भी पृथ्वी का चक्कर लगा रहे हैं पर यह भी उसके प्राकृतिक उपग्रह नहीं माने जाते।

सूर्य और चन्द्र प्रज्ञप्ति में उल्लेखित 6 से 18 घंटों का दिन या रात ध्रुवीय से विषवतीय क्षेत्रों में दिन रात की पूरी सीमा नहीं दर्शाता (जो छह माह तक लम्बा होता है) और यह दिन-रात का मान कदाचित जम्बु दीप, जिसे भारत माना जाता है, के सीमित क्षेत्रों से अनुभव का परिणाम है।

2. सूर्य, चन्द्र और अन्य ग्रहों की दूरी : ग्रंन्थों में सूर्य और चन्द्रमा की दूरी 800 योजन बतलाई गई है। वास्तव में सूर्य पृथ्वी से चन्द्रमा की अपेक्षा 400 गुणा बड़ा और 400 गुणा अधिक दूरी पर है।

3. ब्रह्माण्ड की आकृति : जैन दर्शन में ब्रह्माण्ड की विशेष आकृति (चित्र 8.1) बतलाई गई है। लोक की यह बहुकोणीय आकृति अनन्त अलोक में स्थित बतलाई जाती है। भौतिक विज्ञान के अनुसार बहुकोणीय आकृतियां प्राकृतिक और स्थाई नहीं होती; गोलाकार, अण्डाकार और चक्राकार आकृतियां स्थायी होती हैं। दूसरा, भिन्न भिन्न गुणों वाले दो पिण्डों या माध्यमों के बीच अर्थात लोक और अलोक के बीच, कोई इन्टरफेस होना आवश्यक है जो जैन दर्शन नहीं मानता। कोई भी क्षेत्र अचानक एकदम से दूसरी प्रकृति के क्षेत्र में नहीं बदल सकता जैसा कि सभी कि खगोलीय पिण्डों में देखा जा चुका है।

4. जम्बूद्वीप की आकृति : दूरसंवेदक यंत्रों या अन्तरिक्ष से सेटेलाइट द्वारा लिये गये चित्रों सें पृथ्वी पर द्वीपों, महाद्वीपों और समुद्रों की आकृति अच्छी तरह मालूम कर ली गई है। जैन ग्रन्थों के अनुसार सभी द्वीप चक्राकार हैं और प्रत्येक के चारों ओर लवण समुद्र है, प्रत्येक बाहरी द्वीप भीतरी द्वीप से माप में दो गुणा है। यह निश्चित रूप से गलत है। इससे हमें क्वान्टम मिकेनिक्स के आणविक मोडल की ओर ध्यान जाता है जहाँ प्रत्येक कक्षा एक दूसरे के पूर्ण गुणांक (integral multiple) होते हैं ($n = 1, 2, 3...$)। डॉ. कछारा ने चपटाकार जम्बूद्वीप को आकाशगंगा मान कर जैन विचारों

और खोगलशास्त्र में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है जिसमें मेरु पर्वत गेलेक्टिक न्यूक्लीयस माना जायेगा पर फिर आकाशगंगा (Milkyway galaxy) की स्पाइरल भुजाएं चक्राकार माननी पड़ेगी।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जो आधुनिक विज्ञान के अनुरूप नहीं है। यह लिस्ट बहुत लम्बी है और इन सब का वर्णन करने के लिये एक अन्य पुस्तक की आवश्यकता होगी। इसलिये हमने यहाँ कुछ ही उदाहरण इस तात्पर्य से दिये हैं कि ग्रंथों की सभी धारणाओं की आलोचनात्मक समीक्षा की जानी चाहिये और आवश्यकतानुसार उन्हें संशोधित करना चाहिये। इनमें कई कठिनाइयों का उल्लेख अन्य विद्वानों ने, विशेष कर बी.आर. सिंघवी ने अपनी पुस्तक "जैन धर्म की असंगत बातें" में किया है।

जब संकलित ग्रन्थों में इतनी अधिक त्रुटियां प्रवेश कर गई हैं तो सभी ग्रन्थों की विश्वसनीयता ही सन्देहास्पद हो जाती है। इस संदर्भ में यही कहना उचित होगा कि ग्रन्थों में कितनी ही अमूल्य धारणाएं हैं जो ब्रह्माण्ड के बारे में गहन ज्ञान और चिंतन का प्रतीक है। कुछ अवधारणाएं तात्कालिक वैज्ञानिक सोच के भी आगे हो सकती हैं और उनका अध्ययन कई विषयों पर नया प्रकाश डाल सकता है। गणनाओं की जटिलता और उच्च कोटि के आकलन से प्रभावित हुए बिना, हर अंक और गणना की समीक्षा और वैज्ञानिक आंकड़ों से तुलना करने की आवश्यकता है और फिर विज्ञान और जैनदर्शन साथ साथ आगे बढ़ सकते हैं।

पुनश्च:

जैसे हम इस पुस्तक की समाप्ति पर आते हैं तो कई नए प्रश्न उठ सकते हैं। क्या जैन एक दर्शन भर है या वास्तव में सर्वज्ञता प्राप्ति का पथ है ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह एक उत्तम दर्शन है, अच्छे आचरण का सूत्र है, व्यक्ति और समाज और यथार्थ में पूरी मानवता के लिये लाभप्रद है और उसके अनुसरण से, इसके अनुयायियों को, जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, शांति और सुख की प्राप्ति हो सकती है। जैनधर्म के अनुयायी आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से भारत में ही नहीं, अपितु पूरे विश्व में, एक समृद्ध और उच्च स्तरीय समुदाय माने जाते हैं और यह जैनदर्शन की विशिष्टता का भौतिक प्रमाण माना जा सकता है। स्वास्थ्य और मनोस्थिति भी जैन साधनाओं से प्रभावित होती हैं इसके कई प्रमाण हैं। पर क्या जैन दर्शन यही सब कुछ है या इससे बढ़कर एक जीवित सत्य है। दर्शन इस पुस्तक का विषय नहीं है। हमारा लक्ष्य यह जानने तक सीमित है कि क्या महाव्रतों के पालन से, तप, साधना, संयम और ध्यान से, प्रबुद्धता या सर्वज्ञता की प्राप्ति हो सकती है। सर्वज्ञता आत्मा के अस्तित्व और मोक्ष में पूर्ण आस्था से सम्बंधित है। अनेक धारणाएं और धर्म इनमें विश्वास नहीं रखते। कई लोग आत्मा का अस्तित्व न होने का दावा करेंगे। जैसी कि आधुनिक विज्ञान की मान्यता है, ब्रह्माण्ड में केवल पदार्थ है और उनके विशेष रूप से गठबंधन से कुछ स्कंध जीवन्त हो जाते हैं। मृत्यु के उपरान्त ये पदार्थ विघठित हो जाते हैं और आत्मा या चेतना जैसा कुछ भी नहीं है जो पुनर्जन्म लेता है। फिर कर्ता के सम्बंध में भी बड़ा प्रश्न है। क्या आत्मा ही कर्ता और भोक्ता है ? यह कर्म और भाग्य के सम्बंध पर निर्भर है। चाहे पुनर्जन्म में ही क्यों न हो, क्या कारण और कार्य का क्रमबद्ध सम्बंध है ? अथवा जैसा हम जीवन के अनुभव में अक्सर देखते हैं, कर्म और भाग्य में कोई सम्बंध दिखाई नहीं देता। क्या पुनर्जन्म मान लेने से यह सम्बंध स्थापित हो सकता है। भाग्यवाद के भी कई रूप हैं (जो होना होगा वही होगा, हम कितना ही प्रयास क्यों न करें), जैसे नियतिवाद, प्रारब्धवाद और परिणामवाद और आत्मा का कर्ता होना भी जैन धर्म के क्रमबद्धपयार्य के प्रतिकूल है। क्रमबद्धपर्याय के अनुसार सभी घटनाएँ पूर्वनियोजित और पूर्वनिर्धारित होती हैं और उनका पूर्वानुमान किया जा सकता है। पूर्वानुमान ही आत्मा को कर्तापन के अधिकार से वंचित कर देता है। कर्माणु जो पुद्‌गल हैं, भाव का आत्मा से बंध करते हैं और अभी तक विज्ञान द्वारा उनकी खोज नहीं हुई है और न ही लेश्या की खोज हुई है जिनके माध्यम से कर्माणुओं का आत्मा से योग होता है। क्या ब्रह्माण्ड में केवल छः ही द्रव्य (अध्याय 7) और छः ही सत्य हैं (अध्याय 2) और क्या सात तत्त्व जो कर्माणुओं से आत्मा की प्रतिक्रया से सम्बधित हैं, वास्तव में होते हैं ? ऐसे कई प्रश्न हैं जिनका प्रत्येक मुमुक्ष के मन में सर्वज्ञता प्राप्ति के कठिन और लम्बे पर प्रेरणादायक जैन पथ पर अग्रसर होने के पहले उठना स्वाभाविक है।

यह सच है कि जैन आचार्यों ने आत्मवाद, अनेकान्तवाद, कर्मवाद, क्रियावाद और लोकवाद के सिद्धान्त पूर्णरूप से तर्क संगत, स्वसंगत और परिशुद्ध, उच्च कोटि की गणनाओं के साथ विकसित किये हैं।

ये धारणाएं मानसिक रूप से भी आकर्षक हैं। अपने उत्साह में आचार्यो, विद्वानों और टीकाकारों ने जैन अवधारणाओं को जैन धर्म की प्रशंसा और लाभ की दृष्टि से प्रस्तुत किया। जैसा कि ऐतिहासिक घटनाओं और तात्कालिक तथ्यों के जैन और बौद्ध ग्रन्थों में विवरण के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है इनमें बहुत अतिशयोक्तियां हैं। यह वर्णन स्वप्रशंसा से ओत प्रोत है, यहां तक कि वे कई बार एक दूसरे धर्म के विरोधी लगते हैं। इन वर्णनों से लेखकों और अनुवादकों की दुर्बलता साफ झलकती है, जिन्होंने अपने धर्म की अतिशय प्रशंसा और उत्तमता के प्रदर्शन के लिये अतिशयोक्तियों का प्रयोग किया। ये त्रुटिपूर्ण अवधारणाएं लोकवाद के कई पहलुओं में भी सामने आती हैं (परिशिष्ट 1)। इससे कई वर्णन त्रुटिपूर्ण हो गये हैं और उनकी विश्वसनीयता का हनन हुआ है। अब यदि कुछ पहलू वैज्ञानिक प्रयोगों और तकनीकों से सिद्ध किये जा सकें तो जैन ग्रन्थों में वर्णित धारणाएँ सत्य है या नहीं, यह तय किया जा सकता है। इसके लिये इस दिशा में एकाग्र प्रयास की आवश्यकता है। वास्तव में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य जैन साधना से प्रभावित होता है यह कुछ हद तक वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है। पर क्या उनमें आत्मा की आध्यात्मिक स्थिति भी प्रभावित होती है ? इसके लिये आध्यात्मिक स्थितियों को वैज्ञानिक दृष्टि से परिभाषित करना पड़ेगा और प्रयोगात्मक तथ्य एकत्रित करने पड़ेंगे, जो अब भौतिक और चिकित्सा शास्त्र की तकनीकों से सम्भव है।

हम अब पुनः उसी प्रश्न पर आते हैं कि क्या जैन धर्म दर्शन है या तथ्य? दर्शन जिसके आचरण से जीवन शान्तिपूर्ण हो जाता है या एक सत्य तथ्य, जो सर्वज्ञता को प्राप्त करने का पथ है। यह तर्क से सिद्ध नहीं किया जा सकता और केवल प्रत्यक्ष अनुभव से सिद्ध हो सकता है।इस दुविधा का एक ही हल हैः अनुभूति। आशा है कि कुछ साधक इस पथ का अनुसरण कर सम्बोधि प्राप्त कर इसे सत्य सिद्ध करेंगे। आवश्यकता यह है कि पूर्ण विश्वास और निष्ठा के साथ, निस्सेन्देह, निशंक हो कर हम इस पथ पर चलें। इससे जीवन सार्थक होगा, जीवन को एक लक्ष्य मिलेगा और प्रबुद्धता प्राप्त होगी।

जैन दर्शन, जैसा इस पुस्तक में उल्लेख किया गया है, यह प्रतिपादित करता है कि "स्वंय" ब्रह्माण्ड में नितान्त अकेला है, और उसके अपने कर्मों के सिवाय, ऐसी कोई भी शक्ति, सर्वशक्तिमान ईश्वर भी नहीं, जो उसकी सहायता कर सके। यह पथ स्वयं तय करना पड़ता है। फिर सर्वज्ञों को प्रार्थना करने का क्या कोई औचित्य है ? इस का उत्तर स्पष्ट ही है, क्योंकि वे निश्चित ही एक प्रकार से सहायता कर सकते है - सही पथ प्रदर्शन करके । इसलिये इस पुस्तक को समाप्त करते हुए हम नमन करते हैं अरिहतों को जिन्होंने सब सन्देह मिटा कर हमको मोक्ष मार्ग का सम्यक ज्ञान दिया; सिद्धों को,

जिन्होंने स्वयं सिद्ध हो कर सम्यक दर्शन का मार्ग प्रशस्त किया, आचार्यों को, जिन्होंने स्वयं साधना कर सम्यक चारित्र की पद्धति सिखाई और उपाध्यायों को, जिन्होंने सम्यक ज्ञान संचित कर हम तक पहुँचाया। विश्व के सब साधुओं को जिन्होंने उदाहरण बन कर हमें सही राह पर चलना सिखाया। इस प्रकार उनका अनुकरण कर, मैं भी सम्यक दर्शन, सम्यक चारित्र और सम्यक ज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ। बिना इनके, मैं मोक्ष का जटिल और रहस्यमय मार्ग कैसे जान सकता था?

संदर्भ साहित्य

भरिल्ल हुकम चंद (2008) 47 शक्तियां, पंडित टोडरमल ट्रस्ट, बापुनगर, जयपुर।

कुन्द कुन्द, समयसार (चक्रवर्ती, अ., अनुवादक), भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली।

जैन अनिलकुमार (2002) जीवन क्या है, विद्या प्रकाशन मंदिर, नई दिल्ली।

जैन लक्ष्मी चन्द्र (सम्पादक) (1963) गणित सार संग्रह (महावीराचार्य लिखित) जैन संस्कृत संरक्षक संघ, शोलाप ुर।

सिंघवी, बी. आर. (1943) जैन धर्म की असंगत बातें।

श्रीमद् राज चन्द्र (2010) आत्मसिद्धि, श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगासी।

English References

Aczel , A. (2001) Entanglement: the greatest mystery in physics, Four walls eight windows publishers, New York.

Barbour, J. and Pfister, H.(eds) (1995), Mach's principle: From Newton's bucket to quantum gravity, Birkhauser, Boston, ISBN 3-7643-3823-7.

Chanchreek, K.L. and Jain Mahesh K., Encyclopeadia of Jain religion, Vedanta books, Vedanta@vedantabooks.com, Pitampura New Delhi, ISBN 81-8865884-7.

Gell-man, Murray, The eight fold way: Theory of strong interaction symmetry, www.osti.gov.

Goldstein, S., Lebowitz, J.L., Quantum mechanics *in* The Physical review: The first 100 years (H. Henristroke, eds).

Greenstein, G. and Zajonc, A.,(1997) The Quantum challenge : The modern research on foundations of quantum mechanics, Jones and Bartlett, USA.

Gribbin, In search of Schrodinger's cat, Corgi Books. John 1993,

Ouspensky, P. D. (1911) The Tertium Organum, (Gurdjieff, Georg), translated from Russian in 1922.

Heller, Eric J., http:// en.wikipedia.org

Herman K. (1999) *Karma* The mechanism.

Hoyle, F. , Burbidge, G. and Narlikar, J.V. (2000), A different approach to cosmology, Cambridge University Press, ISBN 0-521-66223-0.

Jain, Jagadish Prasad 'Sadhak' (2005) Fundamentals of Jainism, Radiant Publishers.

Jain, G.L., (1991) Cosmology: Old and New, Bharatiya jnanpith, New Delhi.

Kachhara N. L. (2011) Jain Metaphysics and Science: A Comparison, Prakrit Bharati Academy, Jaipur.

Kanaknandi Acharya, Jain facts beyond modern knowledge, www.jainkanaknandi.org, School of Jainology,

Kothari D.S.(1985) The Complementarity Principle and Eastern philosophy, Neils Bohr Centenary volume (A.P. French and P.J. Kennedy, eds) Harvard University Press, Cambridge, USA 325-331.

Matilal B.K. The Central Philosophy of Jainism (Anekntavada) L.D. Series 79, (D. Malvania and N.J.Shah (Gen. Eds) L.D. Institute of Indology, Ahmedabad.

Mookerjee, S. (1994) The Jaina Philosophy of Non-Absolutism, Motilal Banarsidass, Delhi.

Muni, Mahendra Kumar (2010), Enigma of the Universe, Jain Vishva Bharati University, Ladnun.

Padamarajiah Y. J. (1963) A Comparative study of the Jaina Theory of Reality and Knowledge, Motilal Banarsidass, Delhi.

Rinpoche, S. 1994, The Tibetan book of living and dying, Harper Collins.

Rothman T. and Sudarshan George, Doubts and reality.

Sancheti A. and Bhandari M. M., First Steps To Jainism Part 1 and part 2.

Sethia, T., Ahimsa, Anekanta and Jainism, Motilal Banarasidass, Delhi.

Shah, N. B., Jainism: Conquerors of the World, Sussex Academic Press.

Von Glasenapp, H., (1999) Jainism: An Indian religion of salvation, Motilal Banarasidass, New Delhi.

Tatia Nath Mal, (1994) Tattvartha Sutra: That which is, Motilal Banarasidass, Delhi.

Thurman, R. A. F. (Translator), 1994, Tibetan book of the dead, written by Padma Sambhava and discovered by Karma Lingpa, Aquarian/Thorsons, Harper Collins.

आभार :

इस पुस्तक में प्रस्तुत सामग्री कई स्रोतों से ली गई है, जिनमें कुछ पुस्तकों का संदर्भ सूची में उल्लेख किया गया है। इन सब लेखकों का मैं आभारी हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आचार्य श्री विजय नन्दी घोष सूरी जी के सम्पर्क में आया जिन्होंने मुझे इस अध्ययन की प्रेरणा दी और पाण्डु लिपि को सम्पादित करने का कष्ट किया। उत्साहवर्धक विचार विमर्श के लिये मैं डॉ. जितेन्द्र बी. शाह और डॉ. सुधीर शाह का आभारी हूँ जिन्होंने लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति संस्थान में जैनदर्शन और विज्ञान मंच पर कई भाषण और चर्चाएं आयोजित की। गंभीर समीक्षा और कई नए विचारों के लिए मैं डॉ. नारायणलाल कछारा और पाण्डुलिपि में धैर्यपूर्वक संशोधन करने के लिए प्रोफेसर श्रीपाल मेहता का आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक को दो भागों में विभाजित किया गया है; प्रथम भाग में आत्मवाद, कर्मवाद, क्रियावाद और अनेकान्तवाद का वर्णन है और दूसरे भाग में लोकवाद का। इस प्रकार पहला भाग जैन दर्शन के बुनियादी सिद्धान्तों की चर्चा करता है और दूसरा भाग जैन विचारधारा की विज्ञान के भिन्न भिन्न शाखाओं से तुलना करता है। जैन दर्शन की सार्वजनिक उपयोगिता (अध्याय 1) के पक्ष में तर्क प्रस्तुत करने के पश्चात जैन दर्शन के बुनियादी विषयों जैसे कि आत्मवाद (अध्याय 2), अनेकान्तवाद (बहुमुखत्व, अध्याय 3) और कर्मवाद (अध्याय 4) का संक्षेप में वर्णन किया गया है। अध्याय 6 में मोक्ष साधना के पथ की चर्चा है जिससे कोई भी साधक चेतना के उच्चतर स्तर (गुणस्थान, अध्याय 5) पर पहुँच सकता है। पुस्तक का दूसरा भाग आधुनिक भौतिक शास्त्र (अध्याय 7), ब्रह्माण्ड विज्ञान (अध्याय 8), संयोजन रसायन विज्ञान (अध्याय 9) और जीव विज्ञान (अध्याय 10) की जैन विचार धारा से तुलना करता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या जैन धर्म एक दर्शन भर है या वास्तव में सर्वज्ञता प्राप्ति का पथ है ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह एक उत्तम दर्शन है, अच्छे आचरण का सूत्र है, व्यक्ति और समाज और यथार्थ में पूरी मानवता के लिये लाभप्रद है और उसके अनुसरण से, इसके अनुयायियों को, जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, शांति और सुख की प्राप्ति हो सकती है। पर क्या जैन दर्शन यही सब कुछ है या इससे बढ़कर एक जीवंत सत्य है? विज्ञान से तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा इन प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं और यह पुस्तक उसी दिशा में एक प्रयास है।

नमोकार मंत्र

मैं केवल ज्ञानियों को (अरिहंतो और सिद्धों को) नमन करता हूँ जिन्होंने विशुद्ध केवल ज्ञान प्राप्त कर हमारा पथ प्रदर्शित किया। मैं जैन आचार्यो और उपाध्यायों को नमन करता हूँ जिन्होंने जैन धर्म की ज्योति सर्वज्ञों से मुझ तक पहुँचाई, जिस के बिना मैं अज्ञानता में जीवन व्यतीत करता, और मैं विचारकों, दर्शन के विद्धानों और वैज्ञानिकों को नमन करता हूँ जिन्होंने सिद्धांतों और प्रयोगों से प्रकृति के रहस्य उजागर किये। मैं जगत के सभी जीवों को नमन करता हूँ क्योकिं वे मुझे जीवन का आधार देते हैं ताकि में प्रबुद्ध मार्ग जान कर उसका अनुकरण कर सकूं।

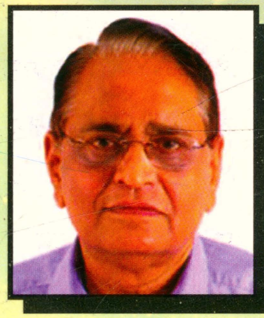

डॉ. नरेन्द्र भंडारी

(nnbhandari@ yahoo.com); WEB [www.nbhandari.com; jainscholars.com]

डॉ. नरेन्द्र भंडारी ग्रह वैज्ञानिक हैं। उन्होंने टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फन्डामेंटल रिसर्च, मुम्बई में अनुसंधान कर भौतिक विज्ञान में पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त की। फिर उन्होंने युनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया, सेन डियेगो, अमेरिका, में अनुसंधान किया और फिजिकल रिसर्च लेबोरेट्री, अहमदाबाद में विशिष्ट प्रोफेसर के पद पर कार्य रत रहे। उन्होंने अमेरिकन अपोलो मिशन और रशियन ल्यूना मिशन द्वारा चन्द्रमा से लायी गयी चट्टानों का अध्ययन किया और भारत के प्रथम चन्द्रमिशन चन्द्रयान-1 के वैज्ञानिक लक्ष्यों को निर्धारित करने और उपकरणों का चयन करने में उनकी प्रमुख भूमिका रही। उनका वैज्ञानिक अनुसंधान ब्रह्माण्डीय किरणों की चन्द्रमा, उल्काओं और पृथ्वी से क्रिया से सम्बंधित है। उन्होंने प्राकृतिक और कृत्रिम रेडियो धर्मिता को नापने के लिए नई तकनीकें विकसित की और उनका उपयोग पृथ्वी के वायुमण्डल, हिमपर्वत और पृथ्वी पर विशाल उल्कापात के प्रभाव को समझने के लिए किया।

उनकी असाधारण उपलब्धियों लिये उन्हें ग्रहीय व अन्तरिक्ष विज्ञान के लिये विक्रम साराभाई अवार्ड, नासा ने सर्टिफिकेट ऑफ स्पेश्यल रिकगनीशन और भारत सरकार ने नेशनल मिनरल अवार्ड प्रदान किये। वे इन्डियन नेशनल विज्ञान एकेडमी, इन्डियन एकेडमी ऑफ साईन्सेज, नेशनल एकेडमी ऑफ साइन्सेस व गुजरात साइंस एकेडमी के फेलो हैं। उन्होंने कई पुस्तकों का प्रकाशन और सम्पादन किया है, जिनमें "मिस्टीरियस मून और इन्डियाज चन्द्रयान मिशन" उल्लेखनीय है जो अंग्रेजी, गुजराती, मराठी और हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं।

उनकी जैन और बौद्ध दर्शन में काफी रुचि है और इन विषयों पर कई लेख प्रकाशित किये हैं। यह पुस्तक प्रबुद्धता के जैन पथ पर नई अन्तर दृष्टि देती है।